

काले फूल का पौधा

जब षहर का धुआँ राज को बादल बनने लगा, और उनकी उदासी ने सड़क की बत्तियों, मन्दिरों के घंटे, आरती के षंख, गली-मुहल्लों की आत्मायें फीकी पड़ने लगी, तब एकाएक उसने अपने कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द कर लीं।

धुएँ के ऐसे बादलों से उसका दम घुटने लगता था।

पलंग पर पड़ी-पड़ी वह कुछ देर तक सोचती रही-बल्कि याद करती रही, ऐसी याद, जो कभी पीछा नहीं छोड़ती, और किसी तरह वह काबू में ही नहीं आती।

उससे छुटकारा पाने के लिए वह उन्हीं को लिखती जा रही थी। अब कुछ ही पृष्ठ षेश थे।

यह बनारस है, वह लखनऊ था। जिस क्षेत्र में वह घर था, गदौलिया की वह एक साफ-सुथरी गली थी। घर पक्का था, बिजली, नल दोनो लगे थे। पंखे थे, पर रेडियो न था।

वह गली पष्चिम से पूरब की ओर फूटी थी, और मुड़ती-और मुड़ती-घुमती जैसे अनन्त की ओर चली गई थी। दोनों ओर अनेक पक्की इमारतें थी, पर सब घर थे, ऐसे घर, जिनमें आँगन होते हैं, अन्तःपुर बने रहते हैं। उनमें इतना ही भाग खुला रहता है, जिससे प्रकाष आयें।

वह जिस कमरे में बैठी लिख रही थी, वह छत का कमरा था-बिल्कुल जीने के ऊपर छत पर तीन कमरे और थे, पर खाली पड़े थे। वे केवल जाड़े में बसाये जाते, और गर्मी में सुखाये जाते थे।

पृष्ठ सब भर गये, पर लिखनेवाली का मन तिल भर न खाली हुआ।

पलंग से नीचे थी, खडी हुई। तब उसे एक अजीब-सी थकान मालूम हुई।

घड़ी में आठ बज गये थे।

‘सरोज अब तक न आई।

उसने दौयी खिड़की खोल ली, पर्दे को एक ओर समेट कर रहा तकने लगी।

दृष्टि धीरे-धीरे षून्य में टँग गई, वह देखने लगी, जैसे तेज बुखार में काई देखने लगता उड़ते-उड़ते अर्थ हीन चित्र, मिटती-बनती अस्पष्ट झांकियाँ और अधूरे-अपूर्ण लोग।

अवष, हारी-सी वह पलंग पर आ बैठी, नीचे माँ के पास गई, चौके में जा बैठी और फिर, ऊपर अपने कमरे में आने लगी।

जब कमरे में आयी, उसे लगा, वह कमरा लखनऊ के लाल बाग में है, कोई उसे कंधे का सहारा दिये हुए दो मंजिले के फ्लैट से सम्हल-सम्हल कर जीने से नीचे उतार रहा है। घूम कर उसने अपने को आइने में देखा। पूरा मुख रक्ताभ था, और उसकी आँखों में छवि बरस रही थी। उसे पता नहीं लेकिन उसके पाँव कमरे में अस्थिर होने लगे और सहज रूप से उसके ओठों पर किसी गुनगुनाहट ने अपना रंग बरसा दिया।

और ज बवह से गई, तब पता नहीं क्यो, उसके स्वस्थ मुख की सरल आभा पर पीली-पीली रेखाओं में उदासी फैलने लगी, जैसे, गोरी तरुण धरती पर हारसिंगार के फूल झर गये हो।

सरोज के आने की प्रतीक्षा में खिड़की खुली रह गई। कमरे में प्रकाश था, और ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था।

निश्चित समय से एक घंटा बाद, सरोज उस कमरे में आई और लज्जा से मुस्करा कर रह गई। आत्माग्लानि से वह सोई हुई गीता को निहारती रही, फिर उसने सहसा देखा—पंखे की हवा में न जाने कहाँ से कागज के बहुत छोटे—छोटे टुकड़े इधर—उधर उड़ रहे थे।

सरोज की दृष्टि पायताने की ओर मुड़ी और वह झट आगे बढ़ कर वही बैठ गयी। टुकड़े—टुकड़े किये हुये कागज के छोटे से ढेर को उसने उँगली से छुआ—छुते ही सब बिखर गये। उसने पंखे को बन्द किया और फर्षे पर बिखरे हुये कागज के टुकड़ों को वह अपनी मुट्ठी में सहेजने लगी।

जब मुट्ठी भर गई, फिर उसने दो—चार टुकड़ों पर देखा, किसी पर वाक्यांश, किसी पर पूरे षब्द और किसी पर अधूरे वचन और किसी पर कुछ नहीं। एकाएक उसने एक टुकड़े पर पढ़ा—‘मैं मर गयी।’

सरोज मुस्करा दी, फिर उसने कुछ टुकड़ों को जोड़ना आरम्भ किया, लेकिन उसे कहीं ‘मैं मर गई’ के आगे—पीछे का जोड़ न मिल सका।

पंखा फिर चलने लगा। खुली हुई खिड़की पर पर्दा खींच कर उसने धीरे से प्रकाश बुझा दिया और चुपचाप कमरे से बाहर चली गयी।

अन्धकार की शक्ति प्रकाश में खो जाती हो। लेकिन अन्धाकार में डूबकर जब कोई बेखबर हो जाता है, फिर संयम से दबाया हुआ मन और संस्कारों से अनुषासित उसका समूचा व्यक्ति अपने में एक शक्ति में एक शक्ति सँजोने लगता है और वह धीरे—धीरे बंधन—मुक्त होकर निद्रा और अन्धकार की शक्ति को चुनौती दे देता है।

गीता देखने लगी—जिस कमरे में वह सोई है, उसका दरवाजा भीतर से बन्द है। कमरे की सब षीषे की खिड़कियाँ भलीभाँति बन्द है। बाहर से कमरे में आने का कहीं से, किसी भी तरह का रास्ता नहीं है।

भीतर अपने—आप में गीता बेखबर सो रही है—बाहर से पूर्णतः असम्पृक्त, निस्संग। कुछ क्षण बाद सामने की खिड़की पर किसी की छाया पड़ती है, छाया एकाएक खो जाती है। फिक एक बलिष्ठ हाथ बाहर खिड़की के षीषे पर, नीचे से ऊपर फैलने लगता है। बीच में आ कर हाथ की गति रूक—सी जाती है। उसकी उँगलियाँ फैलकर तनती है और उनसे वह षीषे पर दस्तक देने लगता है। लेकिन बाहर की आवाज भीतर नहीं जाती। सहसा सब अँगुलियाँ आपस में भिचकर मुट्ठी बंध जाती है। और आवेष से वह मुट्ठी षीषे पर टकराती है। षीषा टूट जाता है और मतबूती से बन्द खिड़की में एक सूराख हो जाता है।

खिड़की के बाहर, उसी सूराख से कोई बच्चा झाँकने लगता है।

गीता डर से चीख उठी, और क्षण भर में वह पसीने से तर हो गई। कमरे में प्रकाश किया और फूलती हुई साँसों को वह संयम से दबाने लगी।

‘मुआ कैसा सपना था।’

भवत्रस्त हो वह कमरे से बाहर दौड़ी—कुछ देर खुली छत पर घूमती रही, फिर तेज से नीचे उतर आयी। ऑगन में स्थिर खड़ी—खड़ी वह स्वप्न को सोचती हुई और उसकी अपूर्णता को अब अपनी जाग्रत अवस्था की बुद्धि से पूर्ण करती हुई उसे देखने लगी। लेकिन उसका मन एक क्षण से अधिक उस सम्पूर्णता को न देख सका। वह त्रस्त हो उठा और गीता का कठ, जिह्वा, अधर, नाक, कान, और आँख—समस्त अंगो पर कडुवाहट फैल गई और उसे मिचली—सी आने लगी।

उसने कई बार थूका। ऑगन में घूमती फिरी। उसी समय माताजी के कमरे में प्रकाश हुआ और उसी की गति के साथ ही साथ आवाज आयी—“क्या है गित्ती।”

गीता से कुछ न बोला गया। वह चुपचाप माँ के कमरे में बढ़ आई और सुराही से पानी लेकर मुँह साफ करने लगी।

“मंगल ने तेरे कमरे में पानी नहीं रखा था ?”

“ था तो ! ”

लगातार कई कुल्ले करने के बाद भी गीता के गले का कसैलापन न गया, बार—बार थूकती रही।

“जी मचला रहा है क्या ? ” माता जी ने घबड़ाहट से पूछा ।

“ नहीं, गला सूख रहा था। ”

“ तो पानी क्यों नहीं पीती, कुल्ला करने से क्या होगा? ”

थकी हुई गीता माता जी के बिस्तरे पर लेट गई और आँचल से अपना मुँह ढक लिया।

“ यह कहो कि मेरे साथ तुझे सुतास लगी थी। ” माताजी ने मुस्करा कर कहा और इलाइची के दानों को मुँह में डाल दिया। गीता मुस्करा दी। बढ़कर उसने माता जी को अपनी बाहों में भर लिया और उसकी तरह वह लेटी रही।

“ तेरा बचपन न गया! ” माताजी वात्सल्य कर से उसके सर को सहलाती हुई बुदबुदने लगी, “षादी हो गई, पति के साथ भी इतने दिन रह आई और अब एम0ए0 की परीक्षा देने जा रही है। ”

“ तो क्या हुआ ? ” गीता ने सर उठाया।

“ क्या करूँ इसे ? ”

“ क्यों छोड़ूँजब तक तू है मैं क्यों छोड़ूँ, कैसे छोड़ूँ ? ”

षक्ति से गीता, माताजी के अंक में समा गई और वहीं से हँसती रही।

“ यही है तैरी पैतानी ! ” माताजी ने कृत्रिम झुझलाहट से कहा—“गली, मोहल्ले में कोई सुने तो क्या कहेगा ? इतनी रात को कहीं हँसा—बोला जाता है ? ”

गीता ने षिषुवत् अपने को माताजी के अंक में छिपा लिया और थोड़ी ही देर बाद उसके अंग ढीले पड़ने लगे, और वह अंक की गरिमा में डूबकर निःस्पन्द हो गई।

गीता सो गई, और माँ जागती रही। साथ के कमरे से गीता के पापा की खॉसी उभरने लगी। पहले स्वर धीमा था , परन्तु धीरे—धीरे खॉसी का सूत्र बढ़ता हुआ वेगपूर्ण हो गया। माँ गीता को छोड़ कमरे को और भागी।

गीता की भरी हुई षिथिल चम्पई बाहें अब भी उसी तरह फैली थीं।

सहसा वह फिर चौकी और उसकी बाहों की प्रसृति गोल-सी हो गई। क्षण भर बाद वे बाहें फिर फैली, लेकिन कँपकर रह गई।

गीता जग पड़ी। साथ के कमरे में प्रकाश था और वहाँ से पापा और माता जी आवाज सुनाई पड़ रही थी? गीता षान्त हो गई। माता जी कमरे में आई, और चुपचाप पलंग पर लेट गई।

“अरे तू जग गई।”

गीता चुप थी।

“तेरे पापा को खॉसी का दौरा आ गया था।”

वह फिर भी कुछ न बोली। सहज भाव से माता जी के सीने से समट गई और नीद के बोझ से धीरे-धीरे उसकी पलकें मुद गई।

सवेरे सात बजते-बजते सरोज आई। उस समय माताजी पूजा कर रही थी। कृष्ण-राम की मूर्तियों की आरती उतारती हुई वह अपनी बिनती मे तन्मय थी। गीता खड़ी-खड़ी षंख बजा रही थी।

सरोज बरामदे में रूकी हुई देख रही थी-अर्ध्य, आरती, पुष्प, षंख और सब के ऊपर माता जी को तन्मयता।

गीता की दृष्टि सरोज पर पड़ी। सरोज आगे बढी। गीता उसे अपने कमरे में ले गई।

“जिया, रात तू नही आई ? मैं बहुत देर तक राह देखती रही! ”

“देखो, बहाना बनाने की लिए झूठ न बोलो।”

सरोज कुछ बोली नही, उसने पायताने से कागज के एक टुकड़े को निकाल कर गीता की आँखों के सामने कर दिया। गीता लजा गई। दोनो पलंग पर बैठ गई।

“ मैं। जब यहाँ आई, तू बेखबर सो चुकी थी, ” यह कहते-कहते सरोज नें कागज के सारे टुकड़ो को निकाला और उन्हे गीता की हथेली में भर दिया।

“यह क्या था, जिसे तू ने फाड़ डाला ?

मेरे एक दिन की बात थी। वह दिन आज से तीन महीने का पुराना था। उस दिन को मैंने कल षब्दों में बॉध कर सोचा था। उसे ही सुनाने के लिए मैंने कल तुम्हें बुलाया था।”

“तो फाड़ क्यों डाला?”

“तू आई जो नही?”

“बावली कहीं की, फिर नहीं आती क्या? यह कहो कि वह किसी को सुनाने लायक न था।”

“नही, तुम्हें ही नो सुनाने के लिए लिखा था।”

सरोज चुप थी।

गीता ने चंचलता से पूछा, “पहले यह बताओं, रात यहाँ आने में देर क्यों हो गई ? ”

“कल उनका फिर एक बहुत लम्बा-चौड़ा पत्र आया था, विवष होकर मैं उसका उत्तर लिखने लगी।”

“सच, उनका पत्र आया थ! और तुम उन्हें जवाब भी दे रही हो.....बडी अच्छी हो तुम जिया ! ”

गीता प्रसन्नता से गद्गद् हो रही थी। सरोज गम्भीर थी।

“अच्छा यह तो बताओ कि क्या-क्या लिखा था?”

गीता लजाती हुई संकोच से भर रही थी। जैसे वह बताना चाहती थी, लेकिन बता न पा रही थी। उसके ओठों में गति होकर रह जाती और कभी-टुकड़ों को उसने खिड़की से बाहर उडा दिया।

“उस टुकड़े को भी लाओ! ” गीता मॉगने लगी।

“क्या हो गया है तुझे, डरपोक कहीं की! ” सरोज ने अपनी आँखों में भाव लाते हुए कहा, “अपनी चीज लिखकर स्वयं नहीं फाड़ते! और फाड़ भी दी तो उसे रास्ते में नहीं बिखेरते..... कोई उनहे इक्कटा करके जोड़ने लगे तो! ”

सरोज कौतूहल से भर गई और गीता षिषुवत निशप्रभ हो आई। वह कमरे से बाहर दौड़ी।

बाहर जमीन पर बिखरे हुए काजग के एक-एक टुकड़े को गीता सँजों रही थी। सरोज खिड़की के पास खड़ी होकर उसके बचपने पर हैरान थी। गीता सोच रही थी कि सच, अगर इन टुकड़ों को काई पा जाता और इन्हें जोड़-जोड़ कर पढ़ने लगता तो कितनी बुरी बात होती। मुफ्त में चारों और नाम बिकता, गली-मुहल्लें में षंकायें उठतीं, बातें चलतीं और नये-नये सूत्र फैलते।

मुटठी कसे हुए गीता वापस लौटी, सीधी रसोई घर में गई और दहकते हुए चूल्हें में सब टुकड़ों को डाल दिया।

आष्वस्त भाव से गीता कमरे में लौटी और हँस पडी, परन्तु सरोज को हँसी न आई।

उसने विस्मय से पूछा, “आखिर क्या था उसमें?”

“था तो कुछ नहीं।”

दोनो चुप हो गई। गीता ने सरोज के हाथ से उसकी किताब ले ली और आनायास उसके पृष्ठों को उलटने लगी। उन्ही पृष्ठों में उसे सरोज का लिखा हुआ पत्र दिख पडा।

“जिया ! यह पत्र मुझे सुना दो।”

“क्यो ?”

“तब मै। भी अपनी बात बता दूँगी।”

“तेरी मंषा पर है-लेकिन मै तो इसे तुझे सुनाने ही के लिए लाई हूँ।”

भाव में आकर सरोज अपना खत पढ़ने लगी-राजेष जी, नमस्ते! तुम क्यो सदा मेरे प्रति अपने सम्पूर्ण आत्मसमर्पण की बात चलाते हो ?

क्या मेरे पक्ष से अभी यह जानने के लिए तो नहीं, कि तुम्हारे प्रति मेरा समर्पण किस स्तर का है ! मुझे गलत न समझो, या समझोगे भी तो क्या, मै अपने दिल की बात कहना चाहती हूँ, जो मै अपने चारो और अनुभव करती हूँ, कि आज के मध्य-वर्ग का बुद्धिजीवी स्त्री-पुरुष किसी पर आस्था और चाह रखते हुए भी उसे अपना सम्पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं दे सकता ; यह उसकी हार नहीं, विवषता है; क्योंकि उसके पास सम्पूर्ण ऐसी कोई अनुभूति ही नहीं होती। वह अपने

जन्म से ही सम्पूर्णता की कामना करते-करते बीच ही में न जाने कितनी बार टूट जाता है। इस तरह वह अधूरा ही नहीं बल्कि छोटे-छोटे टुकड़ों में उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है। और वे छोटे-छोटे टुकड़े इतने निरीह-निर्बल होते हैं कि जीवन की छोटी-सी बात, छोटी-सी कभी उन्हे सदैव सुलगाती रहती है। उन्ही सुलगने की स्थितियों में पति-पत्नी एक-दूसरे से मिलते हैं, और दोनो एक दूसरेके क्षणिक मिलन और आत्मसमर्पण समझ बैठते हैं। वस्तुतः वह दोनों का प्रकृति के प्रति आत्मसमर्पण है, एक-दूसरे के प्रति नहीं। क्योंकि दो टूटे हुए आपस में मिलते हैं-अपने में जोड़ना लगाकर। और वे जोड़ बनावही होते हैं, जिनमें न जाने कितने इस तरह के सूराख रह जाते हैं, जहाँ से वे बूँद-बूँद टपकते रहते हैं। यह विवषता है। इस तरह आज के पति-पत्नी एक-दूसरे से मिलते नहीं, जुड़ते हैं, कभी अनधी प्रकृति से, कभी विवाह के मंत्रों और मंडप की अग्नि से, ओर कभी यों ही, अपनी भयानक दासता से।

गीता ने सहसा सराज के हाथ से खत छीन लिख।

“यह खत मैं न दूगी तुम्हें ! ”

सरोज कतार दृष्टि से देखने लगी।

“मैं इसे अपने पास रखूँगी।”

“क्यों ? ”

“मैं नहीं चाहती कि तुम इतना तीख खत उनके पास भेजो।”

“सत्य तीखा होता ही है-मैं क्या करूँ। ” सरोज गम्भीर थी।

“वे तुम्हारे पति हैं! ”

“थे, यह कहो! ”

गीता चुप थी।

सरोज टहलती हुई कहने लगी, “मैं जुड़ना नहीं चाहती। ऐसे जुड़े रहने से सदा के लिए टूट कर अलग हो जाना अच्छा समझती हूँ, क्योंकि टूटने से एक ऐसी पैनी-तीखी धार बनती है जिससे कि टूटने वाला सदा अपने को सचेत, जागरूक रखता है। ”

यह कहते-कहते सरोज के चेहरे पर खून बरस गया। वह बेचैनी से कमरे में टहलने लगी।

“हटाओ इन विशक्त बातों को! ” सरोज मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई गीता के पास बैठ गई, “अब तुम अपनी सुनाओ। ”

बरवष गीता उदास हो गई। उसने गिरी हुई वारणी से कहा, “ मैं तुमसे बहुत कमजोर हूँ जिया!—इतनी कमजोर कि अब मैं तुम्हे सामने रखकर अपने को तौलती हूँ तो मैं अपने में कुछ नहीं पाती। जो कुछ पाती हूँ वह है अकारण लज्जा, भीरुता, हीनता, अस्पष्टता और सबसे ऊपर एक अटूट बंधन—संस्कारों का बंधन, जिससे मेरी आवाज बँधी है, और मेरी गति भी। मैं मन से चाहती हूँ कि मैं जो कुछ सोचती हूँ, सत्य समझती हूँ, उसे तुम्हारी तरह स्पष्ट रूप से कह दूँ। लेकिन मैं हार जाती हूँ। न जाने क्या भीतर से मुझे बाँध लेता है, और मैं असहाय रह जाती हूँ। ”

गीता एकाएक चुप हो गई!

“तो इससे क्या ? ” सरोज ने कहा।

“क्यो नही, मै हिम्मत कर अपने वैवाहिक जीवन के एक दिन को तुम्हें सुनाना चाहती थी, लेकिन न सुना सकी। संस्कारों ने मुझे परत कर दिया, और अन्त में मैने उसे फाड़ डाला ! ”

“लेकिन उसकी बात तो बता दो। ”

गीता कुछ बोली नही । उसने सरोज के हाथ से उस टुकड़े को ले लिया और हथेली में मल कर उसे घूल कर दिया।

धूल आँधी के पंख पर उड़ती है, आँधी सन्नाटे की गोद में। गीता की चेतना का यही पथ था।

नीचे आँगन से पापा, माताजी और मंगल की सम्मिलित आवजा आने लगी। बीरू सीढियों से दौड़ता हुआ ऊपर कमरे में आया, और फूलती हुई साँसों में कहने लगा—“जिया, जीजा आगये, जीजा! ”

“क्या ? ” गीता के स्वर में कातरता थी।

“लखनऊ से जीजा आ गये! ”

और बीरू नीचे भाग गया। गीता लजाकर ठगी—सी रह गई। सरोज मुस्करा दी, “कितना मानते है मुझे! चार दिन भी उन्हें अकेले चैन हनी मिलता! ठसी को मिले हुए पति—पत्नी कहते है । ”

“ओर जुड़े ? ” गीता ने षरमा कर पूछा।

“हम लोग थे ! ” सराजे ने बिल्कुल सहज भाव से कहा और वह कमरे से बाहर जाने लगी। चली गई।

गीता कमरे में निष्पेष्ट खड़ी थी। बहुत तेजी से उसकी आँखों में रंग उभर रहे थे, और उनमें अनन्त छोटी—छोटी रेखाएँ —जिनके केन्द्र—बिन्दू भी अलग—अलग थे—सरोज गीता.....गीता का पति देवन.....गीता की डायरीसरोज का पत्र।

जीने पर आहट हुई। गीता तेजी से कमरे से बाहर आई। सामने दृष्टि पड़ी। देवन अतुल प्यार से बाँह फैलाये हुए, जैसे गीता पर टूट रहा था। गीता ने माथे पर अपना आँचल सम्भाला ओर पूजा भाव से वह नत षिर हो गई। देवन के चरणों को स्पर्ष किया फिर वह देवन के अंक से लग गई। उसी तरह अंक में बँधी हुई वह अपने कमरे में आई। देवन उस बीच, न जाने कितने षब्दों में अपना प्यार उड़ेलता रहा । गीता के ओठों पर लाज भरी मुस्कुराहट थी। न जाने क्यों पलक झुकी जा रही थी। बड़ी देर तक उससे कुछ न बोला गया। उसे कहीं से भी न लगा कि उसके घर कोई मेहमान आया है, उसकी पूजा होनी चाहिए, उसे षिष्टाचारों में डुबोना चाहिए। देवन के अंक से सटी उसे लग रहा था, जैसे अ बवह अधूरी से पूरी हो और पूरी होकर स्वभावतः वह आत्मविस्मृत हो गई।

“तुम बिन मुझसे रहा नही जाता गीता। ”

गीता को लिए हुए देवन पलंग पर बैठने लगा। सहसा वह प्रकृतिस्थ हुई। देवन को बिठाकर स्वयं खड़ी रही। फिर उसने देवन को अपनी पूरी नजर से देखा।

पूछा, “पिता और माताजी से मिल लिया? ”

“हाँ, क्यों ?”

“चलिए, नीचे ही चला जाय! ”

“क्यों ? “देवन ने उसके दोनो हाथों को प्यार से थाम लिया।

“वैसे ही ! ”

देवन बहुत प्रसन्न था वह गीता की लाजभरी उलझन पर बना ध्यान दिये हँसता रहा।

“पहली बार आप यहाँ आये है.....।”

गीता के मुख का समूचा और वर्ण चम्पई हो गया, देवन के हाथ में उसकी दोनो कलाईयों इस तरह ढीली पड़ गयी, जैसे उस दिन इसी आँगन के मंडप में सुहाग के समय ढीली पड़ गयी थी।

“आपका सामान कहाँ है ?” गीता ने सर उठाया।

“नीचे रख दिया गया होगा ! ”

“तो नीचे चलिये न, माताजी से कुषल मंगल की बातें तो कर लीजिए। ”

गीता को साथ लिये देवन हँसता हुआ जीने से नीचे उतरने लगा। जीना समाप्त होते-होते गीता पीछे हो गई और देवन को आगे बढ़ा दिया।

जब वह आँगन में कुर्सी पर बैठ गया, तो गीता बरामदे की ओर मुड़ी। माता जी स्वयं नाश्ता तैयार कर रही थी। पापाजी नाश्ते की छोटी मेज पर नया कपड़ा सँवार रहे थे। मंगल इधर-उधर दौड़ रहा था। बीररू जीजा का सामान बड़े कमरे में रखवा रहा था। गीता सावधानी से माथे पर अपन आँचल सम्हाले गम्भीरता से अंगीठी के पास खड़ी थी।

“लेकिन मैं चाय ज्यादा पसनद करूंगा ! ”

गीता ने देवन की बात सुनी। वह इसे भली भाँति जानती भी थी, लेकिन वह लाज-वष चुप खड़ी थी। माताजी ने चाय भी बनाई। वह खड़ी देखती रही। सब दूर से अनुभवन करती रही—देवन नाश्ते के प्लेट से खाने का बहुत थोड़ा-थोड़ा सामान उठाता रहा, तब उसे सब नाश्ते मीठे लग रहे थे। चाय की घूँट पी, तब उसे चाय ठंडी लग रही थी। उस कमी को वह अपनी सिगरेट जलाकर पूरा करता रहा, लेकिन सामने माता और पिताजी बैठे थे।

गीता ने हिम्मत की। फिर से पानी खौलाया। केतली को गर्म किय और उसमें खोलता हुए पानी डालकर एई चम्मप डाल दी। और स्वयं उसे नाश्ते को मेज पर रख आई।

नई चाय पीकर, उसने सबसे आँख बचाकर गीता को देखना चाहा।

गीता पावे के पीछे अंगीठी के पास चली गई थी।

देवन कहने लगा, “मेरा कोई काम ही नहीं चल रहा है। दफ्तर देखात हूँ तो घर उजड़ने लगता है ; और घर देखता हूँ, तो दफ्तर का सत्यानाष हो जाता है। मुझे विष्वास थ कि मैं कुछ दिन अकेले रह लूँगा, लेकिन बिना गीता के मेरा कुछ हो ही नहीं पा रहा है। ”

गीता ने दृष्टि बचाकर देवन को देखा। दोनो ओठों पर मुस्कराये। गीता ऊपर भागी।

देवन अपने बात पूरी करने लगा, “मैं चाहता आवष्य था कि गीता यहाँ कुछ दिन और रहती लेकिन मैं.....।”

माताजी ने बीच में ही टोका, "एम०ए० के इस आखिरी साल को पूरा करने के कलए वह धुन बाँधे रहती है।"

माता जी पापा जी ओर देखने लगी।

पापा ने कहा, " छोड़ो भी इन बातों को! देवन, अभी तो तुम पहली बार यहाँ आयें हो। पहले हमें इसकी मर्यादा निवाहने दो, गितती की विदा-विदाई का तो कोई प्रश्न ही नहीं, तुम जैसा चाहो ! "

देवन चुप रहा। बहुत षौघ्रता से वह अपनी चाय समाप्त करने लगा। बार-बार उसकी दृष्टि ऊपर छत की और उठती और षून्य से टकराकर रह जाती।

नाप्ते के उपरानत वह क्षण भर के लिए माता और पिता जी के पास न रुका। ऊपर भागा। जीने को पार करते-करते उसने अपनी सिगरेट जला ली और गीता के सामने जा पहुँचा।

पंखे के नीचे सिगरेट का धुआँ बहुत तेजी से पूरे कमरे में फैल जाता। उसमें आवर्त्तन न होता और थक कर वह खिड़की से बाहर षून्य में मिल जाता। उसी धुएँ के आवर्त्तन और षून्य के नीचे गीता-देवन खड़े थे। देवन भाव से कह रहा था, "तुम मेरी मलका, हो, तुम से अलग रहकर मै एक क्षण भ नहीं रह सकता।"

"तुम पूजा हो!" गीता ने जैसे अपनी अनुभूति को निःष्वास में पिरोकर कहा। उसकी आँखों में अनुराग बरस पड़ा। धीरे से अपने माथे को उसने देवन के वक्ष पर टिका दिया। देवन ने अपनी षेश सिगरेट एक लम्बी, षक्ति पूर्ण कस में समाप्त कर उसके पूरे धुएँ को कमरे में बिखेर दिया। वह उसकी स्थूलता का स्पर्ष करने लगा, और उसका अणु-अणु चीत्कार ने लगा, कि गीता, गीता नहीं है, एक मनोरम पार्थविक स्वप्न है, परिवृत्ति है, जो उसकी बाहो में है।

गीता सचेत हुई? लजाकर अलग हट गई देवन ने दूसरी सिगरेट जलाई।

"चलिये नीचे, आप कपड़े बदल डालिये।"

"देवन गीता को देखन मुस्कराता रहा।

"बोलिये न ! आपकी अटैची यहाँ उठा लाऊँ ! "

"और क्या, मै तुम्हारे पास आया हूँ नीचे के पास नहीं।"

गीता कमरे से जीने पर उतर गई। देवन पलंग पर बैठकर सिगरेट फँकने लगा। इस बार उसने सिगरेट के बचे हुए टुकड़े को खिड़की से बाहर नहीं फँका, बल्कि उसे फर्ष पर पटक दिया। लेकिन वह फिर भी नहीं बुझा। देवन उठा, दाँये पैर के जूते के नीचे उसे कुचलता हुआ घूम गया। कमरे की दीवारों से कुल पाँच तस्वारे लटक रही थी—महात्मा बुद्ध, कृष्ण, गाँधी, षिव-पार्वती और स्वामी दयानन्द। सामने की आलमारी में केवल बीच की जगह छोडकर सब किताबे सजी हुई थी। षायद उस जगह भी कोई चित्र था, परन्तु वह पीले रेखमी कपडे से ढका हुआ था। देवन को जिज्ञासा हुई। वह आलमारी की ओर बढ़ा, आवरण को हटा ही रहा था कि अटैची लिए हुए कमरे में गीता प्रविष्ट हुई।

"देवन अपना चित्र नहीं देखते ! "

गीता मुस्कराती रही।

“मेरे ! ”

“लेकिन मैं तो तुम्हें देवी नहीं मानता ! ”

“मैं चाहती भी नहीं।”

गीता हँस दी। उसके व्यक्तित्व का सहज अनुराग जैसे उस बातावरण को अपने में ढक लेने के लिए सहसा बिखर गया।

देवन ने कपड़े बदले। गीता इतनी देर में नीचे जाकर वापिस लौट आई। वह दूसरी सिगरेट जला रहा था।

“बहुत सिगरेट पीने लगे ! ” गीता के पास बैठते हुए कहा।

“बुरी चीज है न ! ”

“अच्छी है.....क्योंकि इसे तुम पीते हो ! ”

दिन में गीता को सोने की आदत नहीं थी। जब कभी वह दुपहरी में सोने को होती भी थी, उसे सर दर्द हो जाता था।

तीसरे पहर गीता अपना बन्द दरवाजा खोलकर कमरे से बाहर हुई, उसके शरीर में भारीपन था, और सर में मीटा-मीटा दर्द।

वह जीने से नीचे आई। मुँह धोने के लिए स्नाना के कमरे में गई। हाथ-मुँह धोकर जब वह लौटने लगी, उसके पाँव अनायास दरवाजे पर रूक गये। वह भूली-सी ऑगन में लौट गई, नल खोला और पाँव धोने लगी। तौलिया लिया, उससे हाथ-पाँव पोछती-पोछती वह फिर स्नान के कमरे में चली गई। सर भिगोया और धीरे-धीरे पूरे शरीर को पानी से तर कर लिया।

नये सिर से सब कपड़े बदल कर गीता ऑगन में आई। तुलसी के बिरवे के पास गई, और उसकी चार पत्तियाँ तोड़कर उसने मुँह में डाल ली।

स्टोव पर चाय का पानी चढाकर वह ऑगन की धूप में आ खड़ी हुई। बाल सुखाने के लिए वह खोले खड़ी रही। गले से पाँव तक उसके सारे कपड़े ताजे दूध जैसे सफेद थे। उसकी गोरी देह इतनी इकहरी और सानुपातिक रेखाओं से ढली हुई थी, जैसे कपूर की बनी हुई कोई मूर्ति हो, और उस पर इन्द्रबेला के फूल ढके हो।

अच्छी तरह सर के बाल सूख भी न पाये कि उसका शरीर धूप की किरणों में धीरे-धीरे गुलाबी होकर मुरझाने लगा। वह कुछ सोच न रही थी, केवल धूप में खड़ी थी। और खड़ी ही थी। स्टोव की लौ पर खोलता हुआ पानी गिरा, गीता भाग कर पहुँची, और स्टोव बुझा दिया।

ट्रे में चाय और नाश्ता सजाकर जैसे ही वह उठने जा रही थी, बाहर से माता जी आ पहुँची। गीता सहज संकोच से भर गई।

माता जी ने छूटते ही टोका, “सर खोले पति के सामने नहीं जाना चाहिए।” गीता ने सर ढक लिया। कुछ बोली नहीं। प्रसन्ता से उसने माँ की ओर देखा।

“ला, चाय मैं दे आती हूँ, तब तक तू जल्दी से बालों को बाँध ले, मांग भरकर सुहाग के दो-एक गहने तो पहन!.....पति ईश्वर हैं उसके सामने ऐसे नहीं रहते।

यह कहकर माता जी ने ट्रे उठा ली। गीता रोकना चाहती थी, लेकिन भीरूतावश उससे कुछ न बोला गया।

जीने से उल्टे पांव माताजी ट्रे लिये हुए लौट आयी। गीता ने जल्दी से बालों में कंधी की, उज्ज्वल सीमंत में सिंदूर भरा और सर को आंचल से ढकती हुई वह माता जी के सामने खड़ी हुई।

आंचल से माँ के दोनो चरणों को अपने माथें लिया, और उनके हाथ से ट्रे लेकर वह जीने की ओर बढ़ गई।

देवन बेखबर सो रहा था। गीता पास खड़ी-खड़ी क्षण भर सोचती रही। उसने धीरे से एक बार पुकारा, फिर झुककर उसके बिखरे बालों को ठीक करती हुई वह जागने लगी।

वह जगा तो, लेकिन आँख मूंदे बेतरह अंगड़ायाँ लेता रहा। और जब उसने आँख खोली, आनत गीता का मुँह उसके सामने था। वह षिषुवत् मुस्करा रही थी और उसकी स्वच्छ आंखे मनुहार कर रही थी। देवन ने हाथ बढ़कार उसके गले को कस लिया, और उसे पलंग पर ला गिराया। देवन ने उसे सिर से पैर तक देखा। उसे लगा, जैसे कोई सफेद बत्तख उसकी आँखों में धीरे-धीरे दूर तक तैरती चली जा रही है।

“चाय ठंडी हो जायेगी!” गीता ने सर ढकते हुए कहा।

“हम ठंडी ही पीयेगें।”

“क्या फायदा?”

“नही पियेंगें।” देवन ने कहा।

फिर दोनो हँस आये। पलंग से उठने के लिए गीता देवन से आग्रह करती, तब देवन उसे गुदगुदा कर थका देता। चाय पीने के लिए ज बवह मनुहार करती जब देवन उसे लजा देता। चाय अपनी जगह पर ठंडी हो गई। कमरे के बाहर खुली छत की आधी धूप धीरे-धीरे खिसक कर दूर चली गई।

देवन सो रहा था। गीता पलंग से उठकर बेंत के एक स्टूल पर बैठी थी। पीठ और सर को दीवार के सहारे टिका लिया था। मन अषान्त था। सर फिर से भारी हो रहा था।

इसी बीच, नीचे से एक बार षारदा की आवाज उसके कानो में पड़ी थी। दूसरी बार बिमल की। गीता कई बार बन्द कमरे से बाहर निकलकर जीने तक गई थी, लेकिन उसके पाँव नीचे उतरने से न जाने क्यां रूक-रूक गये थे। ठंडी चाय से भरी केतली, उदास प्याले और बासी नाप्ते जैसे षारदा, बिमल और उनकी ही तरह मुहल्ले की न जाने कितनी सखियों की वाणी बन रहे थे और गीता लाज-संकोच से झुकी सोचती आ रही थी।

उस षाम को बनारस के सब सिनेमा-घरो में सामाजिक चित्र लगे थे। गीता के पिता और माता जी दोनो ने पता लगाया था, किसी में भी कोई पौराणिक या षिक्षाप्रद चित्र न था।

इसलियें गीता देवन के साथ न जा सकी। उसे साथ देने के लिए पिताजी स्वयं सिनेमा देखने गये।

माता जी को पूजा का समय हो रहा था। गीता दूढ रही थी बीरन घर में न था। मंगल भी इधर-उधर दूढ आया, लेकिन बीरन न मिला। गीता हैरान थी, उसी समय बीरन के रोने की आवजा सुनाई दी।

गली में बढ़कर गीता ने उसे प्यार से सँभाल लिया। आँगन में आते-आते उसने बता दिया कि उसकी चाँद-तारेवाली लड़ाकू पंतक भिल्लूपर मुहल्ले की एक पंतक से काट खा गयी।

गीता ने उसे आठ आने पैसे दिये।

कहा, "बीरू एक बात मान जाओगे?"

"क्या?"

"पहले वादा करो कि मान जाओगे?"

"हाँ, मान जाऊँगा!"

गीता ने बीरू के नन्हे-नन्हे कंधो पर हाथ रखते हुए कहा, "माताजी पूजा करने जा रही है, अभी वह भगवान की आरती लेगी, आज तुम षंक बजा देना!"

"तुम क्यों नहीं?"

"वैसे ही, समझो कि मेरी तबीयत ठीक नहीं।"

"मैं क्यों समझू क्या हो गया?"

गीता ले बीरन के दोनो हाथ पकड़ लिये, "बकवास मत करे बीरू! मन जाओ मेरे राजा भइयें!"

बीरू मान गया। आरती के समय गीता आँगन से डोलकर जीने पर जा खड़ी हुई। धीमे-धीमे षंख बजता रहा। आरती घंटी गूँजती रही। माता जी तन्मय-स्वर संगीत बिखेरते रहे- 'जय जगदीष हरे!' "

जीने र खड़ी गीता सोच रही थी- हिन्दू पत्नी का ईश्वर तो उसका पति है, बचपन से आज तक माता जी ने मुझे यही सिखाया है। फिर यह पत्थर का दूसरा ईश्वर क्यों? हो सकता है, पिता जी का ही प्रतिरूप हो। लेकिन पिता जी तो मूर्ति-विरोधी है.....।

एक क्षण में गीता भावमय हो गई। तेजी से दौड़कर वह अपने कमरे में गई। देवन के चित्र के सामने झुक गई। एकान्त निश्ठा के स्वर उसके बन्द ओठो को रंग गये- देवन, मेरा देवता!

रात का भोजन देर में समाप्त हुआ। फिर भी देवन, पिता और माताजी के साथ उनके कमरे में बैठकर गीता की विदाई, उसकी एम0ए0 की शिक्षा और अपनी घर-गृहस्थी के प्रश्नों की आपस में चर्चा करता रहा।

बातें समाप्त कर जब वह ऊपर गया, गीता तब तक सो चुकी थी। ऊपर धीरे-धीरे पंखा चल रहा था। दीवार की रोषनी बुझी जी। कुछ दूर हटकर सरहाने छोटी से मेज पर नीली धीमी रोषनी सिमटी थी। उसकी प्रतिछाया से षान्त कमरे में चारो ओर हल्का सा प्रकाष फैला था। उस हल्के प्रकाष में देवन ने देखा, दीवारों से लटकते हुए उन पाँचों चित्रों को उलट दिया गया है। केवल सामने की आलमारी में देवन का चित्र ताजे पुशुपों से सजाकर रखा है।

देवन को हँसी आ गई। वह अकेले फूटकर हँस पड़ा। पर गीता फिर भी न जगी।

दूसरे दिन षाम को गीता की विदाई हो रही थी। आँगन में गीता के तीन बक्स और होल्डाल निकाले गये। अपेक्षाकृत बड़े बक्स की ओर संकेत करके देवन ने पूछा, "इसमें क्या है?"

"मेरी पुस्तके है!"

यह कहकर गीता षिषु-चितवन से देवन को तकने लगी। वह कुछ क्षणों तक मौन-सोचता रहा।

धीरे से बोला, "दषहरे ही तक तो तुम्हें लखनऊ रहना हैं, जल्दी ही तो तुम्हें यहाँ लौटना हैं, फिर क्या करोगी इस बक्स को ले जाकर?"

गीता कुछ बोली नहीं। उसके मुख के भाव से ऐसा लगा, जैसे वह मौनरूप से कह रही हो, देवन जैसा तुम चाहो!

और वह हँस पड़ी वह तब भी मुस्कराती रही, जब मंगल उस बक्स को हटाकर ऊपर के कमरे में ले जा रहा था।

ऑगन मे पिता और माताजी चुप, उदास खड़े थे? पास षारदा, बिमल और सरोज खडी थी। बीरन भी खड़ा था। देवन सिंगरेट पी रहा था। गीता पाटली पल्ले की पीली बनारसी साडी पहने थी। रह-रहकर वह सावधानी से सर को ढकती रहती थी। लेकिन कनपटी के पास की सधन घुघराली अलको पर वह बार-बार हाथ फेरती हुई भी उन्हे अपने वंष में न कर पा रही थी। लगता था, कि ऑगन की सारी हवा गीता की उन्ही पगली अलको के लिए वह रही है। ऐसे समय पर वह अपनी अलकों पर अक्सर झुझला उठती थी कि मेरी ये कैसी अलकें है, सदा उड़ती-बहती रहती है। न उन्हे पिन किया जा सकता था, न चोटी।

दिन डूबते-डूबते बनारस से गाड़ी छूटी। दोनो सेकेंड क्लास में बैठे थे। देवन जब गीता को ब्याह कर उसी गाड़ी से पहली बार लखनऊ के लिए रवाना हुआ था, तब वे दोनो फर्स्ट क्लास में बैकर गये थे।

देवन को तब उस क्लास में भी बडी ऊमस और बेचैनी थी। वह अधीर हो रहा था। उस समय भी गीता को उसे बार-बार सँभालना पडा था। वह अधिकार कितना मादक था।

आज इस क्लास में देवन को ऊमस और बेचैनी न थी। भीतर से वह चंचल हो रहा था, सिज पर प्राप्ति सुख का मीठा-मीठा बोझ था।

डूबते हुए सूरज की अरुणिमा भागती हुई ट्रेन की खिडकियों को जैसे पकड़कर उसे बेध देती थी। और उसकी कोमल किरणें कभी देवन पर पड़ती, कभी गीता पर।

गीता बार-बार मुस्करा कर लॉच से सर झुका लेती थी। तबि उसकी अलके और भी भूरी लगने लगती थी और रेषम की तरह उसकी आँखों तक बिखर-बिखर जाती थी। हवा में डोलने लगती थी। देवन की दृष्टि उन्ही रेषमी तारो मे उलझी थी।

लखनऊ स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची, देवन सो रहा था। गीता को घबडाहट हो रही थी। यह उसके लिए कोई नई बात न थी, वह सदा गाड़ी पर चढने और उतरने के समय घबडा जाया करती थी। देवन को जगाया। दो कुली आये, और सामान उतारने लगे।

प्लेटफार्म-ब्रिज पार करते-करते ओम मिला-जो अपनी पत्नी, चित्रा के संग उनके स्वागत के लिए आया था।

कार नई थी। देवन चित्रा से बात करते-करते कार की पिछली सीट पर बैठ गया। गीता संकोच मे डूबी हुई बाहर खडी थी। फिर उसे आगे बैठना पडा। कार जब षहर की ओर मुडी, ओम ने गीता से मुस्करा कर पूछा "कैसा सफर रहा भाभी?"

उसी समय उसने सुना, पिछली सीट से देवन चित्र से पूछ रहा था, "कैसे मिजाज है भाभी?"

गीता भीरू थी। चित्र वाचाल। गीता का भोला मन सोच रहा था, कैसे लोग हैं, सब एक दूसरे की पत्नी को भाभी कहते हैं। पत्नी और भाभी के परे यहू रिश्ते क्या नहीं हैं? मनुष्य परस्पर रिसते में बँधा है, और रिश्ते मर्यादा से निष्चित हैं।

हजरतगंज के सीने से सरकती हुई ओम की कार बाल्मीकि मार्ग पर मुड़ी और 'डी हेविन' के सामने रूक गई।

उस लम्बी इमारत के पाँच भाग थे, जो ए0बी0सी0डी0इ0 के नाम से बँटे थे। अर्थात् समूची दो मंजिलों की इमारत में स्वर्ग बँध कर रखा गया था और उस स्वर्ग के पाँच लोक थे और उन पाँच लोक में अनेक योनि के वासी थे।

'डी हेविन' के निचले भाग में दो परिवार थे। बाई ओर एक पंजाबी परिवार था। दाई ओर एक लेडी डाक्टर थी। दोनो फ्लैट्स के बीचों-बीच ऊपर जाने के लिए दरवाजे थे। जो अपने-अपने भागो में खुलते थे।

दायी ओर एक बंगाली परिवार था। बायी ओर का फ्लैट्स देवन और गीता का था।

जीने से गीता जब ऊपर चढ़ने लगी, न जाने क्यों उसके बाये पैर में कँपकपी होने लगी। उसे लगा, जैसे वह जीने ही पर गिर जायगी। उसने बढ़कर पीछे से देवन की कमीज पकड़ ली। देवन ने सम्हालकर उसे आगे कर लिया। कमरे में पहुँची तो उसे मतली—सी आने को हुई। बाथ रूम में भागी और तेजी से कैं करने लगी।

देवन उस दिन दफ्तर न गया। गीता सरहाने बैठा रहा। आया को भी उसने रोक लिया। डाक्टर ने बताया था कि गीता को कम से कम दो दिनों तक आराम मिलना चाहिए। भोजन के नमा पर उसे ताजे फल और दूध देने को बताया गया था।

उस दिन गीता, षेस दिन ओर पूरी रात सोती रही। दूसरे दिन उसकी तबीयत ठीक हो गई। उसके सूखे मुख पर फिर तेज बरस पडा। रेखाये मुस्करा पडी। लेकिन देवन ने उसे पलंग से उठने न दिया। डाक्टर की राय के अनुसार उसे अब भी उसी तर चौबीस घंटे आराम करने थे।

आया को सौपकर देवन अपने दफ्तर चल गया। वहाँ से उसने दो बार चपरासी भेजे। गीता की तबीयात पूर्णतः ठीक थी। लंच के समय वह स्वयं आया। गीता उस समय सो रही थी। देवन ने उसे जगने न दिया। वह बडी देर तक उसके सरहाने खडा रहा। उसकी मुँदी पलके, चुप खामोष सोयी हुई सी उसकी रेखमी अलकें, बन्द पतले होठ, गंभीर लम्बी नाक—इन सब रूप बिन्दुओं पर एक अजीब आकर्शक उदासी बरस रही थी।

एक क्षण के लिए उसने सोचा। उसके अभिन्न मित्र ओम का कहना था। गीता गोरी है, उसके मुख की गढन कोई बहुत अच्छी नहीं है। साधारण आँखे सीधे सादे ओठ नाक लेकिन पता नहीं, कौन ऐसी अदुष्य सुशमा इसके परे हैं, जो बरबस मन को मोह लेनी है। उसके मुँह को अनजाने छू देने की तबीयत हो जाती है।

देवन थोडा झुक कर अपनी दृष्टि में उस षोभा को बाँधने लगा। वह अदृष्य छवि इस गोरे मुख की सहज गंभीरता तो नहीं है, जो इसकी अल्हड़ हँसी और बचपने स्वभाव के पार्श्व में छिपी

रहती है। वह सम्मोहन इस साधारण मुख की उदासी तो नहीं है। जो सहज लेकिन अर्थहीन ढंग से इस पर रंगी रहती है।

वह मुस्करा पडा। दूर हट कर उसने सिगरेट जलायी और पैर दबाकर वह जीने की और बढ़ गया।

वह नीचे सड़क पर पहुँचा ही होगा कि गीता जग गयी। मुस्कराई और आया को पुकारा।

“साहब आये थे ?”

“ आप को कैसे मालूम जी ! ”

“ आये थे न ! ”

“ जी ! लेकिन आप जग रही थी क्या ?”

“ सो रही थी , “उठ बैठी और अलको पर हाथ फेरती हुई कहने लगी, “नीट में मुझे एकाएक लगा, वे नीचे से ऊपर आये, जीने के दरवाजे से उन्होंने षर्त रखी—गीता, अमर तुम अपनी आँखे मुँदे रहो तो मैं तुम्हारे पास आ जाऊँ अगर नहीं मूँदोगी तो मैं वापस चला जाऊँगा। मैंने आँखे मूद ली। वह दवे पाँव आये । मुझे मुसम्मी का रस पिलाया और मेरे सर, मुख पर हाथ फेर कर चले गये ! ”

यह कहकर गीता ने अलस मन से तकिये को उठाकर उसे पर अपना सर पटक दिया।

“आये थे न ? ” गीता ने सर उठाया।

“जी, अभी—अभी आये थे— और अभी गये है! ”

“मुझे देखकर चले गये ! जगाया नहीं ! ”

“ जी, वह आपके सरहाने कुछ देर तक खड़े रहे; फिर दबे पाँव वासर चले गये! ”

चर बजे।

गीता ने फल खायू। आया रसोई घर में साहब के लिए चाय की तैयारी में लगी थी। कमरे से निकल कर गीता बाहर आई, खुले में टहलती रही।

सडत्रक को निहार, फिर रसोई घर की और बढ़ गई।

आया से पूछा, “ तुम्हारा पति है न आया ! ”

“ है तो साहब, लेकिन दाढीजार मर गया है ! ”

गीता कॉप सी गई।

आया ने कहाँ, “साहब, आज तीन साल हुए, वह यहाँ से कानपुर चला गया, वहाँ उसने दूसरी कर ली। उससे अब तीन बच्चे भी है।”

“ और तुम्हारे ?”

“मेरे भी चार है—एक लडकी, तीन लडके। लडकी का नाम गोविन्दी है—दस साल की है। माडेल हाउस में सिकरेटरी के यहाँ खाना बनाती है।”

यह कहते—कहते वह चुप हो गई। गीता निष्पेश्ट दीवार के सहारे खडी थी।

आया फिर कहने लगी, “ बडा लडका आठ साल का है—किषुन नाम है, मझला लडका पाँचा साल का है, मुन्नू नाम है। छोटे नाम हरिइवा है।”

कुछ देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा, "किष्णुन और मुन्नू के बची दो बच्चे और हुए थें, एक-एक महीना के होकर....."

आया आँचल से आँसू पोछने लगी। गीता वहाँ से हट गई। माथा पसीने से भीग रहा था। बैठने के कमरे में गई। देवन के चित्र को उठाया, आँचल से पोछा और बड़ी देर तक षून्य दृष्टि से उसे निहारती रही।

बरामदे के बाहरी दोनों पावों पर चम्मेली रखे थे। गीता के मन में अनायास एक भाव उठा। एक लोटा पानी लेकर वह आई और सूखी मिट्टी से भरे हुए एक गमले में सब पानी डाल गई। जली हुई मिट्टी में क्षणभर सनसनाहट हुई, फिर मिट्टी की प्यास ने उसे भी पी गई। इसके बाद उसने तीन लोटे पानी और डाले। तब उसने देखा, आवाज करती हुई मिट्टी पक रही थी। उस पर पानी के छोटे बड़े अनेक बुलबुले पैदा हो रहे थे; और स्वयं मिटते जा रहे थे। जैसे दिनों के भूखे प्यासे पेट में सहसा अन्न-पानी पड जाये और सूखी अँतडियों में जीवन आँधी की भाँति उफन पडे।

गीता अपलक देखती हुई खडी थी। यह गमला समाज है, इसकी प्यासी मिट्टी औरत है, इसमें डाला हुआ पानी पुरुश है। इसकी सनसनाहट इसका पकना कुदरत है, और इसके मिटते बनते बुलबुले इस समूची गति के संतान "तुलसी का पेड यहाँ कही मिलेगा आया?"

"क्या होगा रानी बहू?"

"मै उसे गमले में लगाऊंगी, उससे घर पवित्र रहता है।"

"यहाँ तो उसका मिलना मुष्किल है, लेकिन देखूंगी!"

जीने पर कई बार झाँककर वह पलँग पर जा लेटी। थोड़ी ही देर बाद देवन आया। हँसता हुआ सामने खडा रह गया। गीता ने उसे पलँग पर बिठा लिया।

आँखों में छलकते हुए भाव के बीच उसने कहा, "ऐसे नहीं आते!"

"कैसे?"

"एक ही साथ स्वप्न में, और सत्य में भी!.....दोपहर को आये थे न!" देवन क्षण भर चुप रहा, फिर बोला, "लखनऊ है बनारस-काषी नहीं, यहाँ काव्य की भाशा न बोला करो, कोई नहीं समझेगा!"

"तुम तो समझोगे न!"

"मै समझ लूँगा.....लेकिन.....!"

गीता ने उसकी वाणी को जैसे हराते हुए कहा, "बस, तुम्ही सब कुछ मेरे हो, तुमसे परे जो कुछ है- वह मेरा नहीं है, वह हम नहीं है-वह संसार है।"

गीता थकी हुई हँसी और अलस मुद्रा से देवन के कंधें से झुल गई।

दोनो चाय पी ही रहे थे कि नीचे से ओम की गाड़ी का हार्न सुनाई पडा। देवन और गीता आमने-सामने बैकर चाय पी रहे थे। सहसा गीता उठी, और आकर देवन के पास बैठ गई।

ओम के साथ चित्रा भी थी। षरीर पर नीले फूले बाली 'चिकन' साड़ी का पहनावा था। फूलो से सर का जूडा बँधा था।

दोनो पास चले आये। सामने की कुर्सियो पर बैठे। गीता के सामने ओम था।

गीता की कलाई पकड़ते हुए उसने कहा,

“अब तो सब ठीक है न ! ” सबकी दृष्टि गीता पर जीम, पर वह बोली नहीं। उसका मुख आरक्त हो आया।

ओम बोला, “ देवन, तुम चित्रा चाय पियो, तबि मै गीता को डा0 बोस के यहाँ दिखला लाऊँ ! ”

देवन स्वीकृति में हॉ करने ही जा रहा था कि गीता ने विरोध में सर हिलाया, देवन की ओर देखती हुई बोली, “ मै तो कल से ही बिल्कूल ठीक हूँ—कोई जरूरत ही नहीं ! ”

“तो आओ सब लोग टहल ही आये ! ”

टोम ने चित्रा को देखा, चित्रा की दृष्टि देवन पर उठी, देवन ने गीता को निहारा। गीता मेज पर रखे हुए एक प्याले को देख रही थी!

“चलोगी गीता ! ” देवन ने पूछा।

“जैसा कहो ! ” एक टक उसे देखने लगी।

“मेरी इच्छा बताओ ! ”

“मेरी इच्छा तुम हो, तुम जाओगे तो हम जायेगे ! ”

उसकी स्वच्छ —मूक आँखों से अतल गहराई थी । वह कितना भी अपने मनोभावों को छिपाती, उसकी दृष्टि की तरलता में सब सॉफ उभर आता था —जैसे निरभ्र आकाश के एक—एक तारे।

ओम और चित्रा के साथ वे दोनों घूमने न जा सके। उनके चले जाने के बाद वे दोनों बहुत देर तक उसी मेज के सहारे बैठे रहे। कुछ देर तक वे खुली छत पर घूमे। फ्लैट से नीचे उतर कर सड़क पर भी डोलते रहे, लेकिन दोनों बड़े थके—से लग रहे थे।

ऊपर आये, बैठने के कमरे में गये।

ऊपर बीचो बीच बड़ी तेज रोषनी हो रही थी। गीता ने उसे बुझा कर सामने, दीवार की हल्की नीली रोषनी कर दी। देवन के साथ सोफे पर बैठ गई।

छेवन ने गीता के बाये हाथ को अपनी गोद में लाकर दबा लिया। दोनों ने भावपूर्ण आँखों से एक दूसरे को देखा।

“एक बात पूछूँ ?”

“पूछो ! ” गीता और सटकर बैठी।

“ मै देखता हूँ कि तुम चित्रा के सामने घबडा जाती हो, यह भी देखता हूँ कि तुम ओम को देखते ही हीन—सी हो उठती हो। ”

गीता सर झुकाए मूक थी।

देवन उसकी नर्म हथेली पर अपनी अंगुलियाँ फेरता रहा, “एम0ए0 में पडती हो, लखनऊ में तुम्हारा घर है, तुम्हारा मै; अचछी से अच्छी सोसायटी और सर्किल में आने—जाने वाला हूँ। ओम और चित्रा मेरे अभिन्न है। हमें भी उन्हे यही अधिकार देना होगा। ”

गीता की भरी हुई दृष्टि ऊपर उठी, लेकिन देवन की दृष्टि से मिलते ही वह सूनी उदास हो गयी।

देवन कहता रहा, "मुझे तुम पर गर्व है गीता । लेकिन यह गर्व मेरे इस फ्लैट की दीवारों में सीमित है। मैं इसे असीम रूप देना चाहता हूँ। बनारस छोटी जगह है। पिछड़े ख्यालात के लोग हैं वहाँ । लखनऊ बड़ी जगह है। यहाँ की दुनियाँ बहुत आगे चल गई है।"

यह कहते-कहते उसने गीता के दाये हाथ को भी अपनी गोद में ले लिया और दोनों बहुत ही समीप से एक दूसरे को देखने लगे।

"मैं चाहता हूँ तुम दौड़ कर इस दुनिया का साथ ले लो। " सहास षहर के उस भाग की बिजली बुझ गयी । चारों ओर से आवाजें उठने लगी।

आया ने मोमबत्तियाँ जलायी। एक-एक सब कमरे में रख दिया। गीता उसी तरह सोफे पर पडी रही। देवन सड़क पर आया। घूमता हुआ रेटलज रोड की नुक्कड़ पर पहुँचा । कहीं से उसे हजरतगंज की ओर देखा। चारों ओर अन्धाकार था। सीटियाँ बज रही थी। कारें दौड़ रही थी। घूमकर देखने-दिखाने वाले अन्धाकर में जैसे खो गये थे। विद्युत शक्ति से इतनी आगे बढ़ी हुई दुनियाँ एक ही क्षण में जैसे असंख्य वर्षों पीछे चली गयी हो —अन्धकार युग में।

देखते ही देखते गंज की रेषनी लौट आयी। पीछे से दौड़ कर एक ही क्षण में दुनियाँ फिर उतने ही आगे आ गयी। वही आ पहुँची, जहाँ से लौट कर पीछे गयी थी।

लेकिन रेटलज रोड पर बिजली न आयी। 'हेविन' में अन्धकार था। मोमबत्ती की रोषनी में देवन और गीता आमने-सामने बैठे हुए रात का भोजन कर रहे थे। गीत सब भूल कर प्रसन्न हो चली थी। उदास मुख पर उसके स्वयं का आलोक लौट आया था।

वह अलकों का सभालती हुई मुस्करा पडी, "लेकिन 'डी०-हेविन' में तो प्रकाश है! "

"यहाँ तुम जो हो ! "देवन मुसकराया।

"नहीं, हम हैं ।"और हंसकर गीता ने मीठी प्लेट से एक भरे चम्मच को देवन के ओठों पर रख दिया।

सोने के समय तक भी बिजली न आयी। कमरे में मोमबत्ती पिघल-पिघल कर जल रही थी। ऊपर का पंखा स्थिर था। गीता पंखा झल रही थी, देवन सो रहा था।

और गीता के मन में भी जैसे कुछ पिघलता हुआ बह रहा था और उनीदी आँखों में उसकी लहरे छलकती जा रही थी। उसके तप्त माथे पर कोई अपना हाथ रख कर सो रहा था, लेकिन उसकी मूक वाणी कह रही थी—मुझे तुम पर गर्व है गीता! लेकिन यह गर्व मेरे इस फ्लैट की दीवारों में सीमित है। मैं इसे असीम रूप देना चाहता हूँ। बनारस छोटी जगह है — बहुत पिछड़े ख्यालात के लोग हैं वहाँ। लखनऊ बड़ी जगह हैं यहाँ की दुनिया बहुत आगे चली गयी है। मैं चाहता हूँ तुम दौड़ कर इस दुनिया का साथ ले लो।

पसीने से तर उसके माथे पर रखा हुआ हाथ फिसल जाता है। गीता के मन ने देखा, वह गिरा हुआ हाथ सो रहा है और वही भी पसीने से तर है। उसने अपने आँचल से उसे पोछ दिया और वह तेजी से पंखा झालने लगी। हाथ सूख गया लेकिन गीता का माथा और भी तर हो आया। जैसे गीता बड़ी हुई दुनिया का साथ लेने के लिए बहुत तेजी से दौड़ी हो—बेतहाश भागी हो, और थक्कर गिर गयी है।

वह उसी भौंति पंख झलती रही। देवन सोता रहा। थोड़ी देर में मोमबत्ती गल कर बुझ गई। कमरे में अन्धकार छा गया और अकारण उसे डर लगने लगा।

रात के पिछले पहर देवन की आँखे खुली। गीता के दयो हाथ में पंखा चल रहा था।

“तुम सोयी नहीं ! ”

“सो तो रही थी! ”

“ फिर यह पंखा कैसे चल रहा था?”

“इस तरह सो लेने की मेरी आदत है, ” गीता ने कोमलता से कहा।

“बनारस के घर में, मेरे बचपन में बिजली न थी। मैं बारह साल तक माता जी के पास सोती रही। माताजी रात भर सोती भी थी और उनका हाथ पंखा भी झलता था। यह आदत मैं माताजी से पा गई! ”

देवन हँस पडा। कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, “ इस तरह बनारस मे तुमने माताजी की सारी अच्छी बुरी आदत सीख ली होगी।”

“बिजली न हो और गर्मी लगे तो हाथ से पंखा कर लेना बुरी आदत है ?”

“और क्या, ये हाथ इस तरह थक जायेगे, तो मुझे कस कर बाँधेगे कैसे?”

“इस तरह ! ”

गीता ने उसे अपनी बाहुओ में कस लिया और अस्फुट स्वर से कहती रही, “ ये हाथ कभी नहीं थकेगे। देवन, क्योकि इन्हे तूने पकडा है, और ये तुझे समर्पित है।”

कई बार इसे दुहरा कर जब गीता चुप हुई तब उसकी मूक स्त्री षर्मा कर अपने—आप से कह उठी, मैं माँ होऊँगी। मेरी गोद में कोई सोयेगा। जिस राज को 'हेविन' में अन्धकार होगा, तब ये हाथ उसे पंखा झलेगें और हम सब सोते रहेगे।

..2

उस दिन आया न जाने कहाँ से तुलसी का एक मुझाया हुआ बिरवा ले आयी। गीता ने उसे गमले में लगाया। और वह आत्म-संतोष से भर गयी। उस लगा कि उसके घर का कोना-कोना पवित्र हो गया।

आया से उसने पूछा, "यहाँ पास-पड़ोस की औरतें एक-दूसरे के यहाँ बिल्कुल नहीं आती जाती है?"

आया ने गीता को सूनी दृष्टि से देखा। उस से कुछ उत्तर न दिया गया। गीता बोली, "फ़िली बार जब मैं यहाँ पहले-पहले आयी, लगातार दो महीने रही और इस बात को सोचती रही और आज भी सोचती हूँ कि.....।"

आया बीच ही में बोल उठी, और पास आ खड़ी हुई, "रानी बहू यहाँ का और कायदा है। यहाँ औरते पहली साहब लोगो से मिलती-जुलती है; फिर वे साहब के घर आती है। और उनकी बहू से मिलती है। पास-पड़ोस की भी वही दशा है। देखा नहीं साहब, बगल में आप से सटा ही हुआ बंगाली बाबू का फ्लैट हैं तीन सयानी लडकियाँ है— दिन भर कालेज में पडती है, शाम को गंज घूमती है, वहाँ उनके साथी मिल जाते हैं। उनके घर जाती है—कभी पूजा होती है तो कभी डरामा, कभी नाच, कभी कुछ। पता नहीं रात को कब लौटती है! बंगाली बाबू की औरत रोज बाल धोती है, सुखाती है, घंटो चोटी करती है, बाजार जाती है, और थक कर सो रहती है। इन फ्लैटो की यही जिन्दगी है साहब, न खुदा से नाता इनका पार लगायें विधाता।"

गीता हँसती रही। आया बडबाडती रही, "इस सब फ्लैटो में पो है साहब, कोई सीधे से एक नौकर नहीं रख सकता। पेट काटकर तो रोज साडियाँ खरीदी जाती है। कोई सगा सम्बन्धी आ जाय तो दूसरे दिन इत्ता-सा मुह बन जाये! हॉ एक बाज है इन फ्लैटो में बडी सफाई से लोग रहते है, बडे करीने है। समय-समय के कपडे, समय-समय के अलग-अलग कमरे। छोटे-छोटे बच्चे हाथ पैर तोडकर बैठे रहते है—मजाल क्या है कि कोई चीज इधर से उधर हो जाये।

लौटकर आया अपने काम में लग गयी। गीता धूमती हुई जीने के दरवाजे पर खडी हो गयी। और अकारण वह जीने की सीढियाँ गिनने लगी। ऊपर से नीचे तक कुल सोहल सीढियाँ। वह चुपचाप ऊपर खडी रही। सहसा उसने देख, एक चार वर्ष का स्वस्थ बच्चा नीचे से धीरे-धीरे चढकर जीने पर आता है ओर चौथी सीढी पर आकर बैठ जाता है। उसे दूढती हुई प्रायः आठ वर्ष की एक लडकी आती है, और बच्चे को पकडने के लिए जीने पर बढती है। बच्चा तेजी से दो सीढिया और पार कर लेता है। लेकिन लडकी उसे पकड लेती है। बच्चा उससे विरोध करता हुआ रोकर मचल जाता है। गीता नीचे उतर आयी, उसने बच्चे को सम्हाल लिया।

लडकी जिज्ञासा से गीता को देखने लगी ?

गीता ने स्नेह से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ऊशा ।"

"बेबी तुम्हारा नाम ?" गीता ने बच्चे के स्खे सर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"छलद ।" बच्चे ने तुतलाकर कहा, बच्ची ने उसे सम्हाल दिया, "जी नहीं, षरद इसका नाम है, मेरी छोटी बहन कुमकुम, इसे सुरूँ कहती है।"

“कहाँ रहती हो ?”

“नये हैदराबाद — गोमती के उस पार, ” ऊशा बताने लगी, “ नीचे लेडी डाक्टर के पास मेरी मम्मी आयी है—अभी वह नाखुष होने लगेगी। ”

उशा ने सुरू को बरबस अपनी गोद में उठा लिया । गीता ऊपर मुडी। संयोगवश जीन के ऊपर बंगाली पत्नी से इसकी भेट हो गई। नमस्ते के लिए सहज ढंग से उसे हाथ उठे।

“ अब तो आप रहेगी न ! ” बंगाली बहू ने पूछा।

“जी , आप कही जा रही है क्या ?” बात करने के लिए गीता ने पूछा।

“जी मार्केट जा रही हूँ।”

टकेलेपन से उब कर गीता अपने कमरे में लौटी। उस उसका बनारस याद आया। उसके घर की सकरी गली याद आयी। उसकी माँ ,बीरू, पापा याद आये। षारदा, विमल, सरोज की याद आयी।

छेवन आफिस से आया। बहुत प्रसन्न था। आते ही उसने उमंग से कहा, “चलो, काफी हाउस चलेगे, जल्दी से तैयार हो जाओ ! ” गीता को सम्मोहन हो गया । उसने उस साडी का सूट पहना जिसमे सजकर उसने किसी संध्या को देवन के गले में सुहाग का हार पहनाया था।

काफी पीकर दोनो हजरतगंज के फुट पाथो और बरामदो में घूमते रहे ‘मेकअप’ से बिधी हुई औरतो की सापेक्षता में जब देवन गीता को देखता, वह आत्म गौरव से भर जाता, और सोचता, गीता यहाँ पीछे नहीं है। वह कही भी पीछे नहीं रह सकती। वह इतनी कोमल टहनी है कि उसे चाहे जिधर भी वह आसानी से मोड सकता है।

देवन ने कहा, “ कल इतवार है, हम दिन का भोजन यही करेगे—या ‘कपूर मे या क्वालिटी’ में ! ”

गीता कुछ बोली नहीं। उसके मुख पर निर्मल षान्ति और प्रसन्नता थी, क्योंकि उस पर कही से भी, न ऊपर से पोती हुई सफेदी थी, न लाली, न ऐसा कुछ था, जिससे किसी को अन्यथा भ्रम हो जाय।

एक बजे का समय था। देवन गीता के साथ कपूर होटल के एकांत में बैठा था । दोनो आमने—सामने थे। बीच में प्लेटस थी।

देवन कह रहा था, “ यहाँ का कायदा है, हर सप्ताह में कम से कम एक दिन का भोजन ऐसी जगह हो । इसमें नयापन तो है ही, इसके साथ ही साथ जीवन का स्तर बढ़ता है। जीवन स्तर में विकास के अर्थ है, जीवन की उत्तरोत्तर प्रगति! ”

गीता को पिता जी की बात याद आ रही थी, “जैसा भोजन, वैसा ही रक्त जैसा रक्त वैसा विचार और जैसा विचार वैसे कर्म ।” उसने अपने मन के इन उठते हुए भावों को सहसा काट दिया—हो सकता है। कि ये सिद्धांत पुराने होकर अर्थ हीन हो चुके हो। उसने हँसेत हुए कहा, “ऐसी प्लेटस मैं तुम्हारे लिए अपने घर सजा सकती हूँ।”

देवन ने कुछ उत्तर न दिया। उसका ध्यान कही और बँट गया था। गीता आग्रह करती रही।

देवन ने उत्तर न दिया, “यही तो लखनऊ और बनारस का अन्तर है।”

गीता का मन कही से छू गया लेकिन इस प्रभाव को उसने अपने मुख पर न आने दिया। भोजन के बाद देवन ने काफी पी, सिगरेट सुलगाता रहा। गीता प्रसन्न मन से उसके सामने बैठी रही।

ढाई बजते-बजते दोनो वहाँ से उठे। घर आये। आया अपने घर चली गई थी। गीता का मन थक चला था। देवन का मन अब भी हल्का था।

“कही और नहीं चलोगी ? ” देवन ने विनय से पूछा।

“जहाँ चाहो ।”

गीता ने देवन के दोनो हाथ पकड लिये।

“चलो मैटनी षो देखेगे।”

तस्वीर देखकर दोनो फिर साढे छः बजे लोटे। गीता का मन अब तक बेहद थक चला था। आते ही वह स्नान करने लगी।

कपडे बदल कर जैसे ही वह कमरे में आई। नीचे सडक से ओम के कार की हार्न सुनाई दी। दूसरे ही क्षण जीने से देवन को पुकरारती हुई उसकी आवाज भी आई। देवन नीचे गया। गीता चमेली के लता के पास गई।

नीचे से देवन की आवाज आई, “मेरा पर्स फैंक देना।”

दौडकर गीता ने पर्स उठाया। पर्स खाली था। जल्दी से उसने अपना बक्स खोला। इसबार चलते समय माता जी ने उसे जो रूपये दिये थे, वह एक लिफाफे में रखे थे। अब तक उसने उन नोटो को गिना तक न था। सम्भवतः दस-दस के पाँच नोट थे। सबको उसने उसी तरह देवन के पर्स में सजा दिया और जीने से उतरकर वह सडक पर गई।

“मैं अभी आता हूँ! ”

“आप भी चलिये न ! ” ओम ने कहा।

बिना कुछ बोले गीता जीने की ओर बढ़ गई। कार चली गई, फिर उसे ‘धन्यवाद न कहने की याद आई।

आया ने पूछा, “रानी बहू ! दोपहर का खना अच्छा मिल गया था ?”

गीता चुप थी। वह तुलसी के गमले में पानी देने लगी। फिर न जाने क्या उसके मन में उठा, वह गुंथें हुए आटे का एक दीपक बनाने लगी।

आज चारो ओर बिजली का प्रकाष था। लेकिन उसने ऑगन का बल्ब बुझा ही रखा। आटे के दीपक में उसने घी भरा, स्वच्छ रूई की दो बत्तियाँ डाली और दीपक को जलाकर उसने तुलसी के हरे बिरवे के पास रख दिया।

हाथ जोडे वह मंत्रमुग्ध बैठी रही। उसने आँखे मूद ली, लेकिन उसके कंठ से कुछ फूटा नहीं — न प्रार्थना का कोई स्वर, न याचना की कोई बोल। वह निःस्पन्द — मोन बैठी रही—बैठी रही। उस क्रिया—हीनता में भी उसे जैसे कोई अकथनीय सन्तोश मिल रहा था।

दस बजे। साहब नहीं आये। आया के जाने का समय हो गया। लेकिन वह गीता को अकेली छोडकर अभी जाने को न थी।

गीता के पास बैठी-बैठी वह कहने लगी, "रानी बहू! मेरी लौडिया गोविन्दी बता रही थी कि माडले हाउस में, उसके साहब के बंगले के बिल्कूल पीछे कोई कसमीरी साहब था। उसकी बड़ी लडकी पिछले दो साल से तपेदिक की मरीज थी। बैटी के पीछे साहब ने पानी की तरह रूपया फूका। लेकिन न जाने कैसे— क्यो बीच ही में दइउ ने बिजली गिराई। परसों रात को मरीज बैटी ने अपने बाप को पिस्तोल से दाग दिया।"

"दाग दिया ! " गीता चौक पडी और दूसरे ही क्षण वह हतप्रभ हो गई।

"यह सच है ?"

"जी हाँ, बिल्कूल।"

"लेकिन लडकी ने नही दागा होगा, वह क्यो दागती?"

"साहब, लडकी ने खुद कबूल किया है, और उसकी बहनो ने उसे रंगे हाथ पकडा।"

गीता अपने को वहाँ से हटाने लगी ; पूरी षक्ति से, जैसे वह भाग निकलने को हुई। उठ कर देखा, तुलसी के पास का दीपक मन्द पड रहा था, उसने और घी डाल दिया।

ग्यारह बजते-बजते देवन आया। वह थका सा था। उदास भी। गीता उसे प्रसन्न करने लगी।

देवन ने पूछा, "पर्स में कितना रख दिया था ?"

"पता नही,क्यो ?"

गीता मुस्कराती रही। देवन पूछता रहा।

"माताजी ने दिये थे! गीता हँस दी।

"पचास थे, सब उठ गये ! "

"तो क्या हो गया, उठ जाने दो! "

गीता ने उसके बिखरे बालो में अपनी अंगुलियाँ डाल दी। स्नेह से उसके कंधे पर हाथ फेरती रही।

घडी की एक दुकान मे गई। उसने अपने लिए एक घडी पसन्द कर ली । रूपये उसी मे चले गयी ! "

"चलो जाने दो!

गीता उसे साथ लिये हुए खाने की मेज पर गई। भोजन के बाद उसने देवन को तुलसी के पास जलते हुए दीपक को दिखाया।

"तुलसी की पूजा की है ?"

"नही सिर्फ दीपक जलाया है ; मेरी पूजा तो तुम हो ! "

थका हुआ देवन पलंग पर जा लेटा। गीता पायताने बैठ रही। वह एक टक देवन को देखती, उसके ओठ खुलने को होते, लेकिन वह बहुत तेजी से अपनी दृष्टि फेर लेती, ऊपर देखती फिर उसे शून्य में टिका देती। और उसके मुख-भाव से यह स्पष्ट हो जाता, जैसे कोई आवाज उसके भीतर से बाहर आने के लिए तडप रही हैं, और उसे वह अपनी पूरी षक्ति से दबा रही है।

तीन बार उसने ऐसा किया। आवाज दबती गई। उसे दबाकर वह जैसे पीती गई। लेकिन चौथी बार वह आवाज दब कर भीतर न गई, क्योंकि भीतर कुछ और भर आया था, वहाँ स्थान न था। वह आवाज तब उसकी आँखों में फैलकर बरस गई।

सहसा देवन के चोड़े वक्ष पर गीता ने अपने मुख को छिपा लिया और निःशब्द रोने लगी। देवन हैरान रह गया।

भरे कंठ से गीता बोली, "तुम से एक बात कह रही हूँ देवन !.....कहना नहीं चाहती थी, पर विवश हूँ !"

"हाँ, हाँ कहो न! इसीलिए रो पड़ी !

"नहीं, रो इसलिए पड़ी कि मैं तुमसे कह रही हूँ।"

कुछ क्षणों तक गीता चुप रही।

फिर बोली, "ओम तुम्हारा साथी है, लेकिन मैं उससे डरती हूँ। इस लिए नहीं कि वह पुरुश है; बल्कि इसलिए कि वह तुमसे अधिकार प्राप्त है !"

"साफ कहा !" देवन ने घबडा कर कहा।

"कह दूँ!" गीता सर उठाकर उसकी आँखों में देखने लगी।

पिछली बार जब मैं आयी थी। ओम ने हमें दावत दी थी। रात को जब हम लोग उससे विदा ले रहे थे, तुम चित्रा से बात करते-करते आगे बढ़ गये थे। ओम ने सहसा मेरे हाथ को पकड़ लिया, और उस पर अपने ओठ रख दिये थे।"

देवन हँस पडा। गीता निस्तेज थी।

वह गीता के कंधे को थपथपाते हुए बोला, "ये तो आज के सामाजिक व्यवहार है। तुम्हें पता नहीं, तभी तो मैं कहता हूँ, तुम्हें अभी बहुत आगे बढ़ना है?"

गीता बहुत क्षणों तक चुप रही। लेकिन उसके ओठ कंप रहे थे। वह संयत स्वर से फिर बोली, "अच्छा इसे छोड़ो, एक दिन जब तुम, मुझे ओम के बंगले पर छोड़कर, वही से सीधे दफ्तर चले गये थे वह मुझे अपनी कार पर बिठा कर यहाँ छोड़ने आया था। उसने मुझे पीछे न बैठने दिया, अपने पास बिठाया। रास्ते में बार-बार मेरे कंधे पर हाथ रखता रहा।"

देवन बीच ही में बोल उठा, "क्या बच्चों की तरह छोटी-छोटी बातों पर दुःखी होती हो, क्या हो गया इससे?"

"इससे कुछ नहीं हुआ?" गीता ने रूँधे कंठ से कहा। कुछ देर चुप रही, फिर बोली, "तभी मैं सचेती थी कि ओम की क्यो इतनी हिम्मत है, तो तुम्हारी मित्रता और उसकी व्यवस्था ने प्रेरणा दे रखी है।"

देवन गीता के बचपने पर फिर हँस बडा, "बड़ी भावुक हो तुम, अच्छा अब सो जाओ !"

"पिछली बार तुम्हारी वर्षागॉठ पर वह रात के खाने पर बुलाया गया था। तुम अपने किसी साथी को छोड़ने नीचे चले गये थे। मैं इस कमरे में खडी-खडी अपने कपडे बदल रही थी। वह चोरो की तरह आया और पीछे से मेरा दामन पकड़ लिया। मैं क्रोध में पागल हो उठी थी। कुछ क्षण बाद तुम बाहर से आये थे। वह सब पर पर्दा डालने के लिए हँसने लगा था। तुम ने भी कहा था, "परिहास को इतनी गंभीरता से लेती है!"

गीता सिसक पड़ी, "वह परिहास नहीं था देवन, पाप की भूमिका थी। तुम्हारी मित्रता और तुम्हारे बहुत आगे बढ़े हुए समाज का विश था।"

देवन आतंकित हो गया। उठ बैठा, दृष्टि सूनी होने लगी।

गीता काँपते स्वर से कह बैठी, "उसने कई बार मुझे कहा था तुम में मेरा भी हिस्सा है।"

देवन का मुख आरक्त हो गया। गीता फूट कर रो पड़ी ओर उसके सीने में मुख छिपाये, उसे अपनी बाहुओं में जकड़े रही।

टूटते स्वर में गीता ने कहा, " इस बढी हुई दुनिया को पकड़ने के लिए तुम मुझे मत दौडाना ; नहीं तो हम रास्ते ही में टूट जायेंगे देवन। "

कुछ क्षणो बाद देवन उठा। पखे की गति उसने तेज कर दी । पंलग पर आकर बोला, " अब तुम अपनी चिन्ता मुझ पर छोड कर सो जाओ गीता। मुझे यह नहीं पता था। सुबह होने दो! "

गीता कहने लगी, "मुझे उसकी साया से घृणा है। उस दिन जब तुमने कार पर मुझे उसके पास बिठा दिया था। स्टेपन से यहाँ पहुँचने तक मेरा कंठ पित्त से भर गया था, उसी से मैं आते ही बीमार हो गयी थी.....बोलो देवन मैं क्या करूँ ! मैं बहुत पिछडी हूँ क्या ?"

करुणा से वह देवन को देखने लगी। और उसने जब यह देखा कि देवन अषान्त हो रहा है, वह अपने को बदलने लगी। वह प्रयत्न करने लगी कि देवन सो जाय, ओर देवन चाहने लगा कि गीता सो जाय।

गीता का मन बरस चुका था। उसके आकाष की आँधी बह चुकी थी। इसलिए धीरे-धीरे उसकी षान्त आँखें मुदने लगी थी। लेकिन वह आँधी देवन के आकाष में फैल रही थी और प्रयत्न से मुदी हुई उसकी आँखो में वह गति अबाध थी।

गीता सो गई ; जैसे न जाने कितनी देर तक का रोया हुआ कोई षिषु माँ के पार्श्व से लग कर चुप हो । देवन आँख मँदे, आने अषान्त भावो में जैसे पलंग से उठता, बहुत तेजी से जीने को पार करता हुआ सडक पर जाता, रेक्सा करता और ओम के मकान के पास उतरता । लेकिन वही उसके पाँव रूक जाते। उसके आवेष के पंख गिर जाते और वह लौट आता। घर वापस आकर गीता को देखते ही वह फिर आवेष से लौट जाता। उस मकान में घुस जाता, सामने चित्रा मिलती, और वह फिर हार जाता।

मन के भावो मं, बारह बजे रात से वह दो बजे तक इसी तरह दौडता फिरता रहा। रात के अपार सन्नाटे में वह एक बार ओम के भी सामने गया, लेकिन वह कुछ पूछ ने सका। पूरी षक्ति बटोर कर वह अन्तिम बार गया। ओम से अत्यन्त दीन वाणी में उसने कहा— यह बुरी बात है ओम ! वह मुस्कराया, हँसा, कहने लगा—अब बुरी क्यो है। ओम ने उत्तर दिया—चित्रा भी मेरी पत्नी है और उसके भी विचार विचार है।

देवन नत षिर खडा रहा । ओम ने स्नेह से उसके कंधे पर हाथ फेरते हुए कहा—किस माया में पड गये यार मेरे! जीवन आनन्द के लिए है, द्वन्द्व के लिए नहीं। यह कर ओम वहाँ से गायब हो गया। सामने चित्र आयी—समर्पण लिए हुए । उसके दाये हाथ को देवन ने कई बार चूमा,

उसके खुले कंधे पर वह हाथ फेरता रहा । दामन स्पर्ष करता रहा । उसे लिए हुए वह 'जू' देखने गया, सिनेमा में बैठा रहा । गोमती के किनारे-किनारे बडी रात तक घूमता रहा ।

एक सन्ध्या, अनेक में घूमती गयी ।

अनेक सन्ध्या, रातो मे बीतती गई । वह किस्ती है छोटी सी । दोनो जल में है । ऊपर चन्द्रमा है ।

उसे ध्यान आया । गोमती के पुल के पास आती हुई किस्ती । बिजली के तार उनके ऊपर से आर-पार खिचे थे । और जल में तार की परछाइयाँ इस तरह टेढी-मेढी होकर साँप बन रही थी ।

“मै साँप पालना चाहता हूँ ।”

“मै उन्हे स्पर्ष करूँगी ! ”

3

गीता

षकुन जिया के मुख पर चेचक के कही-कही बड़े ही खूबसूरत निषान थे। यह मेरी पहली सुधि और मेरे षिषु मन की पहली अनुभूति थी। दौडकर मैंने षीषे में अपने मुख को झाँका। मेरे मुख पर तो एक भी न था। मैं छू गयी रोती हुई माता जी के पास पहुँची, हठ करने लगी कि मेरे भी मुख पर जिया की तरह गोल-गोल निषान बनवा दे। पहले तो माता जी हँसी थी, लेकिन जब वह मेरी जिद से पक गई, तब उन्होंने मुझे एक कमरे में बन्द कर दिया था। यही मेरे बचपन का वह आदि चित्र है, जिसे मैं अपनी पहली चेतना में बाँध कर चली हूँ। तब मैं चार वर्ष की थी और षकुन जिया मुझसे पाँच साल बड़ी थी।

एक दिन माता जी अपने बालो में तेल डालकर कंघी कर रही थी। मैं पास बैठ थी। जब वह बाल बाँध चुकी फिर उन्होंने माँग में सिन्दूर भरा और माथे पर सुहाग की बिन्दी लगायी। उतनी देन में मैं भी अपने मुँह को धोकर माताजी के पास आयी, बोली-‘मेरे भी बाल बाँध दो’। दो लाल फीतो से उन्होंने मेरी चुटिया कर दी। मैं बोली, मेरी भी माँग भर दो’। माता जी ने समझाया कि जब तेरी षादी हो जायेगी, जब तेरी माँग भरी जायेगी, अभी नहीं। मैं रो पडी कि अभी मेरी षादी करो। माताजी बड़ी देर में मुझे बहलाती रही लेकिन मेरी जिद बढ़ती रही। हार कर उन्होंने मेरे माथे पर एक लाल बिन्दी लगी दी। मुझे सन्तोश न हुआ। दोपहरी हुई। वह पडोस में किसी के घर गयी। मैं उनके कमरे में गयी। सिन्दूर दान खोला, षीषा लिया और अपनी माँग में सिन्दूर भरने लगी। षकुन जिया को दिखाने के लिए मैं उसने पास गई। देखते ही उसने मेरे गाल पर एक चॉटा मारा। मैं रोयी नहीं, बोली ‘जिया तुम भी भर लो, माताजी नहीं है। उसने मुझे भीचते हुए डाँटा, ‘तेरा भेजा तो नहीं खराब हो गया है। मैं फिर भी न रोयी, डरी भी नहीं, क्योंकि माताजी भी तो करती थी।

षकुन माता जी को बुला लायी। मुझे देखते ही वह अपना सर थाम कर बैठ गयी। जिया चाहती थी, लेकिन मैं पिटी नहीं। स्नेह से पकड कर माता जी मुझे अपने कमे में ले गयी। और सर में तेल डाल कर मेरे सिन्दूर को मिला दिया।

तब मैं पाँच वर्ष की हुई मुहलले में चौधरी की लडकी सुभद्रा का विवाह होने वाला था। विवाह के दो दिन रह गये थे। रात को रोज गीत होते थे। माताजी के साथ मैं भी जाती थी। रात को लोट कर जब मैं माताजी के पास सोने लगी, तब मैंने पूछा ‘सुभद्रा के घर सब लोग गाते हैं, सुभद्रा क्यों नहीं गाती?’

‘उसी की तो षादी है, ‘माताजी, ने बताया, ‘जिसकी षादी होती है, वह नहीं गाती!, मैंने टोका, उसे खुषी नहीं होती क्या ? उसे तो सिन्दूर लगाने को मिलता है। अच्छे-अच्छे कपडे पहनने को मिलते हैं।’ उसे लोक-लाज निभानी पडती है’—माताजी ने बताया। मैंने पूछा, ‘लोक लाज क्या ? यही उसके दूल्हे का नाम है?’

‘पागल है तू ! सो जा !’

मैं रूठ कर पिता जी के पलंग पर चली गयी। उन्होंने दुलार से मुझे अपने पास सुला लिया। प्यार करते हुए कहने लगे, 'पहले मेरी गित्ती की षादी होगी, तब षकुन की होगी।'

मैंने तुनकते हुए कहा, "मैं नहीं करूँगी, हाँ!"

"अरे क्यों! तब तो तुझे सिन्दूर लगाने को मिलेगा।"

"लेकिन जो अपनी षादी में गाने को नहीं मिलता!"

"मिलता क्यों नहीं।"

घर ही पर माताजी मुझे हिन्दी पढाने लग्यी। मैं अच्छी तर लिखना पढना दोनो सीख गयी। तब षकुन जिया 'गर्ल्स हाई स्कूल' मे पढती थी। मेरा नाम 'आर्य कन्या पाठशाला' लिखवाया गया था।

तब मैं आठ वर्ष की हो रही थी। षकुन जिया के साथ-साथ मैं सडक पर बढ रही थी। प्रातः काल था; चलते-चलते एकाएक जिया घूम कर खडी हो गयी। मैं भी घूमी। जिया न जाने कहाँ क्या देख रही थी। मेरी दृष्टि अपनी और जिया की परछाइयों पर गडी थी और मैं मन जिया की परछाई से अपनी परछाई की लम्बाई की तुलना कर रही थी। मेरी परछाई उससे बहुत छोटी थी।

जिया फिर आगे बढी, लेकिन मैं वही तुनकती खडी रही। जिया ने मुझे बार-बार पुकारा, मनाया लेकिन मैं गुमसुम वही जमी रही।

मैं आगे न बढी, लौटकर घर चली आयी। माँ से लिपटती हुई रोने लगी कि मेरी परछाई छोटी और जिया की उतनी लम्बी क्यों है?

दूसरे वर्ष मेरा भी नाम षकुन जिया के स्कूल में लिखवा दिया गया। हम लोग बैलगाडी में आने जाने लगे। हम दोनो के अलावा उस गाडी में दस लडकियाँ और बैठती थी। उम्र मे सब से छोटी मैं ही थी, वसेरा लेती हुई चिडियो की तरह सब आपन मे चहचहाती रहती थी। निरुपाय मैं सब का मुँह ही देखती रह जाती।

गाडी के पीछे-पीछे एक दिन दो लडके चले आ रह थे। एक लडकियो पर नजर गडाये हुए मुस्करा रहा था। एक न जाने क्या गा रहा था। सब लडकियाँ चुपचाप थी। सब की दृष्टि नीचे झुकी थी। पता नहीं उन्हे क्या मार गया था। मैं लडको को अपलक देख रही थी। षकुन जिया ने कई बार डाटा कि मैं उघर न देखूँ, पर मैं देखती रही।

गाडी पर दो चिटिठियाँ उाल कर वे पस की गली में मुड गये। मैंने दोनो चिटिठियाँ उठा ली एक पर लिख था—'मेरी हृदय रानी षकुन्तला, दर्जा दस' और दूसरे पर लिखा था—'कान्ती रीन कक्षा नौ'

कन्ती का पत्र मैंने उसकी गोद मे डाल दिया, षकुन जिया ने दूसरे पत्र को मुझ से छीन लिया और उसे फाड कर टुकडे-टुकडे कर दिया। कान्ती के पत्र को क्षण भर में कई लडकियों ने पढ लिया। वह रो पडी।

षकुन जिया दर्जा दस न पास हो सकी। किसी को भी इसका दुःख न हुआ। केवल मुझे हुआ। अकेले मुझे स्कूल जाना पडता था।

मैं आठवी कक्षा में पढ रही थी। राजवंशी मेरे पड़ोस का एक लडका नौवी कक्षा में था। हम दोनो एक दूसरे के घर आते जाते थे।

जाडे के दिनो में कोई छुटटी का दिन था। मैं उसके घर गयी। वंशी दत पर पतंग उडा रहा था। मैं उपर चली गयी। पास खडी-खडी देखती रही, वह दूसरे मुहल्ले की एक चॉद-तारे पतंग से अपनी पतंग लडा रहा था। एकाएक उसकी पतंग कट गयी। लेकिन न वह हारा न उदास हुआ। मेरे पास आ खडा हुआ। सूनी-सूनी दृष्टि से कीी वह बेमतलब मेरी आँखो में देखता, कभी दृष्टि नीचे झुकाकर दूर हट जाता और अपना सर खुजलाने लगता, अगुलियो से अपने संवारे हुए बालो को बिखेरने लगता।

मैंने उस से पूछा— 'क्या है वंशी ?' कई बार मैंने उससे पूछा। लेकिन वह बेमतलब अपने-आप में परेषान होता रहा। वह कुछकहना चाहता था, लेकिन कह नहीं पा रही था।

अन्त में उसके मुँह से फूटा, 'मैं तुम से प्रेम करता हँ। और यह कहते हुए उसका मुख अरक्त हो गया। मैं कुछ समझी नहीं। न मुझमें कोई प्रतिक्रिया ही हुई। मैं सहज दृष्टि से उसकी व्याकुलता देखती रही। उसने सर-झुकाकर फिर जैसे प्रार्थना स्वर में कहा, 'तुम नहीं करोगी गीता ?'.....

मैं बोली, 'मैं इस खेल को नहीं जानती, मुझे स्कूल में भी कभी नहीं खेलाया गया।'

बडी देर तक वंशी चुप-निःस्पन्द खडा रहा, फिर पराजय के स्वर में बोला, 'तब नहीं करोगी।'

"करूँगी क्यों नहीं। पहले माताजी से पूछ आऊँ।"

यह कह कर मैं तेजी से नीचे गयी और अपने घर भागी। मेरे पूछने पर माता जी ने मुझ से कुछ न कहा। वह पिता जी के पास गयी और देनो बडी देर तक आपस में न जाने क्या निर्णय करते रहे।

उस षाम से वंशी और मेरे घर का आना-जाना बन्द हो गया। मैंने मन ही मन में अनुभव लगाया कि वंशी जरूर कोई बहुत बुरा खेल खेलना चाहता था।

परीक्षा के दिन थे। एक दिन किसी ने मेरे नाम भी गाडी में एक पत्र डाला। मैंने कई बार अपने उस पत्र को पढा था। और घर आकर मैंने उस पत्र को पापा जी को दे दिया।

उसी बीच ऐसी ही घटना दो बार और हुई। सुबह का स्कूल था और उसी दिन मेरी बारहवीं वर्षगांठ थी। मैं घर रोक ली गयी।

अपनी पूजा में माता जी ने मुझे साथ बिठाया। मेरे माथे पर चन्दन रोरी का तिलक लगाकर उन्होंने रामायण की एक बिल्कूल नयी पोथी दी। अतीव भक्ति से कहा था। 'बेटी ! हम अपने आपको एक सीमा में बाँधकर चलते हैं, वही सीमा हमें अनन्त षान्ति देती है। मैं वैष्णव हूँ, पूजा, विष्वास और आस्था यही मेरी षक्ति है और यही तुम्हारे षरण है।'

षाम को पिता जी ने अपने कुछ आत्मीय जनो को चाय पर बुलाया था। मेरी कुछ सहेलियाँ भी आयी थी। चाय पर बातों ही बातों में पिता जी ने कहा, "मैंने स्कूल में गीता को पढाने का इरादा छोड दिया है। षिक्षा के इस वातावरण से कोई लाभ नहीं। आर्य कन्या की

वास्तविक पाठशाला उसका घर है। जहाँ उसके चरित्र विकास में स्वस्थ संस्कारों को योग मिले।”

उस शाम को जब सब लोग चले गये, रात हुई षकुन जिया चौके मे गयी, माँ की पूजा समाप्त हुई, तब मैं चुपके से माँ के अन्धेरे कमरे में गयी। और रोने लगी। बहुत देर तक रोयी।

रात भर मुझे नीद न आयी। अन्त में मेरे वर्ष मैं हाई स्कूल की परीक्षा में बैठी। द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। उसी वर्ष षकुन जिया की शादी हुई। वह पति के घर दिल्ली चली गयी।

मैं घर में बहुत प्रसन्न थी। पापा ने मुझे अध्ययन की सारी सुविधायें दे रखी थी। मैं माता जी की पूजा में सहयोग देती, भोजन, बनाती, पापाजी की सेवा करती — जाने कहाँ से मुझमें अपार बल और कार्य की प्रेरणा भरती जा रही थी। मैं अपनी एफ0ए0 परीक्षा के लिए तैयारी करती थी, फिर भी घर में मुझे गृहस्थी के कार्य आँटते थे।

उसी घर के परिवेश, उसी पिता और माताजी के एकांत स्नेह के वातावरण, वैष्णव निश्ठा तथा आर्य सत्य के संस्कार —अपने घर आँगन की परिक्रमा में, घर गृहस्थी के चरणों पर बढ़ती हुई मैंने एक दिन बी0ए0 की परीक्षा पास कर ली।

पापा जी को मुझ पर गर्व था। उन्हे घर बाहर कही भी मेरी प्रशंसा करते हुए संकोच न होता था — ‘गीता आदर्ष लडकी है। सचमुच आर्य कन्या है।’ माता जी की मैं मुँह बोला लाडली था। मेरी ही नीद वह सोती जागती थी। जहाँ कही भी जाती, किसी से मिलती जुलती यह बिना मुँह से निकाले न मानती — जैसे वैष्णव कन्या होनी चाहिए— मेरी गीता उसी तरह है।”

ये बातें मुझे पर अपना प्रभाव डालती गयी। मैं अपनी अच्छाइयों और जीवन के आदर्षों के प्रति सर्वथा जागरूक रहने लगी। मुझे जीवन के सत् व्यापारों से एक तीव्र मोह होने लगा। स्वाध्ययन और उसकी आषातीत सफलताये धीर—धीरे मेरे भविश्य के प्रति अनोखे स्वप्न जाल बुनती गयी— आर्दष पत्नी की, सतीत्व की, गृहणी और मातृत्व की।

इन संस्कारों की एक अदृभद थाली मेरे व्यक्तित्व को भी मिली । मुझ में मौन — भावुकता आयी। हृदय समवेद्य हो गया। अन्तर से भीरु होती गयी। और सब की सामूहिकता से मुझमें अज्ञात ढग से हीन ग्रथियाँ भरती गयी।

मेरे चारों ओर तृप्ति थी, सुन्दर भाव थे, सम्पूर्णता थी, अनेक सत् आदर्ष थे। मैं सर्वथा स्नेह में पली मैंने लाड प्यार के ही गीत सुने । किसी तरह का भी मेरे घर में कोई संघर्ष न था । एक और षंख ध्वनि और आरती की लय थी — भक्ति की षुचिता थी। दूसरी और आर्य धर्म की गरिमा थी और घर में सबसे बडी संगति थी — दो विरोधी विष्वासों का स्वस्थ समन्वय।

जीवन ने मुझे तपाया नहीं। अभावों ने मेरी परीक्षा न ली। सांसारिकता से मे असम्पृक्त रही, घर की मान्यताओं ने मुझे असत पक्ष से निरसंग रख। विरोधी प्रतिकूल स्थितियों के बीच से मुझे स्वय अपना रास्ता न ढूढना पडा । मैं जैसे ही चलने को हुई, एक परम्परागत, आर्दष राजपथ पर मैं मोड दी गयी।

मेरा रूप आदर्षों से अनुषासित होकर मूर्त हुआ — इसे वह विकास न मिल सका जो अत्यन्त सहज और सम्पूर्ण होता है। जिसके विकास क्रम में ऊची—नीची खाइयाँ पडती है। अनेक असत विरोध पथ मिलते हैं। जिन्हे ार करने की प्रक्रिया में पैर अनेको वार डगमगा जाते हैं,

व्यक्ति का स्वयं भटक जाता है। उस भटक भूल और डगमगाहट में व्यक्ति अपे बाहर भीतर को संतुलित करता है। उसकी आत्मा जगती है। और एक दिन उसकी इकाई अपने आप में अपूर्व होती है। वह परम्परा को पीटकर नहीं रह जाता, बल्कि उसके विकास क्रम में एक नृतन क्रान्तिकारी पृष्ठ जोड़ता है।

आज मैं अपनी स्वयं की पूर्णता में इस रिक्ता का अनुभव करती हूँ। लगता है मैं कही भी निरपेक्ष नहीं हूँ। मैं अपने में जब अपने घर में जब अपने स्वयं को ढूँढती हूँ, तो उसे कही नहीं पाती ; चारों ओर पाती हूँ आर्दष सत् भावुकता, परम्परा की स्त्री — जो असंख्य वर्षों से उसी तरह से चली आ रही है — कही भी अपने में नया पृष्ठ नहीं जोड़ पाती। मैं अपने स्वयं में अन्य को पाती हूँ — माता जी को उनके वैश्व विष्वासो को, पिता जी को — उनके आर्य सत्यों को, एफ०ए० बी०ए० के अध्ययन क्रम में आये हुए अनेक चरित्रों इतिवृत्तों और दर्शनो को। पता नहीं कितने बोझ के नीचे मेरा मैं दब गया।

हाँ, तो मैं कह रही थी कि घर में ही रहकर मैंने बी०ए० पास कर लिया। सच कहती हूँ मुझे इन परीक्षाओं को पास करने में कुछ लगा ही नहीं। पाठ्य क्रम आयी हुई पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने आर्य कन्यापाठशाला लाइब्रेरी टैगोर तथा ऐनीबेसेन्ट लाइब्रेरी की अनेक हिन्दी अंगेजी साहित्य की पुस्तकें पढ़ डाली थी।

उन्ही दिनों मेरे माता इलाहाबाद से बदल कर बनारस आये। पिता जी ने कमच्छा में उनके मकान का प्रबन्ध किया। उनकी एकलौती लड़की सरोज प्रयाग विश्वविद्यालय से इतिहास एम०ए० थी। जब वह बी०ए० में थी, तभी उसकी शादी जौनपुर के एक बहुत बड़े वकील परिवार में हुई थी। पति आगरा के एक डिग्री कालेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे।

राजेश और सरोज की गृहस्थी दो वर्षों तक अनुपम थी। उन दिनों मैंने दो बार पति पत्नी को देखा था। एक क्षण के लिए भी दोनों एक दूसरे से अलग न होते थे। उन्हें देखकर मुझे ऐसा लगा था, जैसे मेरा स्वप्न उनके लिए मूर्त हो गया था। मुझे सहज स्पर्धा हुई थी सरोज से।

फिर इस बार बनारस में मेरी भेट जब सरोज से हुई मैं आंतकित रह गयी। उसने राजेश से अपने को बिल्कुल अलग कर लिया था और पूर्णतः निरपेक्ष हो जाने के प्रयत्न में थी। मेरी समझ में नहीं आता था पर वह मुझ से निष्चित भावों में कहती थी— समाज ने पति पत्नी को जिस रास्ते पर चलाया था कभी वह राजमार्ग था लेकिन अब वही अनेक पगडंडियों और मोड़ों में भँट गया है, हमारे लिए अब एक नया पथ चाहिए।

पहले अब मैंने सरोज जिया को देखा था, मुझे लगा था स्त्री पूर्णतः स्त्री है एक पुल की भाँति — जो सब को मार्ग देती है। दो विरोधी कूलों को जोड़ देती है।

पिता जी मेरे विवाह के लिए चिन्तित हुए। विवाह की मुझे भी बड़ी साध थी। पत्नीस्व के प्रति मुझे सहज मोह था। पूर्ण विष्वास था कि नारी का गन्तव्य यही है।

हिन्दी साहित्य से एम०ए० प्रथम वर्ष की तैयारी करने लगी। उसी वर्ष मेरा विवाह ते करने के लिए पिताजी सब तरह से प्रयत्नशील थे।

मेरे पिताजी के सबसे घनिष्ठ मित्र आर्याबाबू थे। लखनऊ में होम्योपैथ डाक्टर । कट्टर आर्य समाजी। अब वे मेरे घर आते, मेरी माता जी घबडा जाती थी। बचपन से ही मैं उन्हें देखती आ रही थी। बेहद मानते थे वह मुझे । मैं उन्हें 'आर्यादादा ' कहती थी।

आर्यादादा अमीनाबाद में लाला षीतलराय के पारिवारिक डाक्टर थे। षीतलराय लखपती थे। कैषर बाग में प्रिंटिंग, स्टेसनरी और पेपर की एक ट्रेडिंग कम्पनी थी। अपनी कोठी थी। पिछले पन्द्रह वर्षों से रेलवे सरकार के ठेकेदार थे। पहली षादी से उनके दो पुत्र हुए – हरी मोहन और देवेन्द्र मोहन । माँ के स्वर्गवास के बाद , उसी वर्ष हरीमोहन की मृत्यु हो गयी। केवल देवेन्द्र रह गया। षीतलराय ने दूसरी षादी की। इससे उन्हें लगातार चार लडकियाँ और दो लडके हुए।

फिर भी देवेन्द्र का उन्हें बहुत ख्याल था। बेहद मानते थें।

देवेन्द्र राजनीति से एम0ए0 था। बडे से बडे विवाह के प्रस्ताव आने लगे। लेकिन वह कई वर्षों तक विवाह से उदासीन रहा।

इसी प्रस्ताव को आर्यादादा ने मेरे पिताजी के सामने रखा। लखनऊ जाकर पिजाती ने इस प्रस्ताव की परीक्षा ली। एक तो वह आर्यादादा का प्रस्ताव था, दूसरे उनका पूर्ण समर्थन इसलिए पिजाजी सन्तुष्ट ही थे। प्रषन था केवल देवेन्द्र की अनुमति का। षीतलराय को आर्यादादा ने तैयार ही कर रखा था।

पिता और माताजी के साथ मैं लखनऊ आयी – आर्यादादा के घर। षाम की उन्होने षीतलराय जी के समूचे परिवार को चाय पर बुलाया। सब ने मुझे देखा। बाते भी की।

हम लोगो को भी आपस में बाते करने का अवसर दिया गया।

मैं सर झुकाये चुप थी। उन्होने बाते की थी— आप हिन्दी से एम0ए0 कर रही है। प्रीवियस है इस वर्ष, मार्च में इम्ताहन हो जायेगा? "

मुझे बडी घबराहट थी, मैं मुस्कार तक न पायी – बहुत चाहती थी। देवन मेरा सुहाग था— इसलिए वह विवाह के अन्य असंख्य प्रस्तावों से उदासीन रहा— होना ही था। मेरे लिए वह उदसीनता अनुराग हो गयी।

मैं एम0ए0 प्रथम भाग की परीक्षा में बैठी। पास हो गयी। परीक्षा फल निकलने के ठीक सोलहवें दिन मेरे व्याह की तिथि पडी थी। उस तिथि के आते आते न जाने क्यों मैं बहुत दुबली हो गयी। भीतर अनुपम आह् लाद से भरा था मेरे सारे स्वप्न सारी आकांक्षाएँ जैसे मूर्त हो रही थी। लेकिन बाहर से मैं पीली पड रही थी। खूब खाती पीती थी मन में व्याह के गीत सुन-सुन कर उन्हें गुनगुनाती भी रहती थी। तब भी पता नही क्यो ?

बार-बार लगता था, जैसे कोई ऐसा सत्य मुझ से छुटा जा रहा है। जिसे मैं फिर कभी नही प्राप्त कर पाऊँगी।

पिया की सुहागिन बन गयी मे। नयी कारो की एक लम्बी रेखा षीतलरायजी की कोठी पर रूकी। मेरे बहूपन की पूजा हुई ।

सातवें दिन बनारस से पिताजी आयें। मुझे विदा करा ले गये। मुहल्ले की औरतें मेरी सहेलियाँ मुझे देखने आयी। माताजी ने पाते ही मुझे जैसे अपनी भूखी गोद में भर लिया। मेरे

षरीर कासारा पीलापन चला गया था। गुलाबी सा कोई बिल्कूल नया रंग मुझ पर चढ रहा था। मुख पर नया राग था। आँखों में कुछ भर रहा था। कीमती आभूषणों से मैं सजी हुई थी और अब मैं जब किसी की भी और अपनी आँख उटाती, या सम्हलकर कही भी चलती, तो मुझे लगता था जैसे मेरे अन्तर मे कोई बैठा हुआ मेरी हीन ग्रन्थि को धीरे-धीरे खोल रहा हो।

मैं अपनी मनोहर गति की एक सुन्दर कथा हूँ जैसे।

पूरे चार दिन भी न बीते थें लखनऊ से देवन का तार आया। पिताजी मुझे लखनऊ स्टेशन तक छोडने आये। और वही विदा लेकर वे दूसरी गाडी से लौट गये।

देवन ने पापा से कुछ न कहा। मुझे न कुछ संकेत दिया। ओम से मेरी पहली भेट अभी तक हुई थी। उसी की कार में मैं बैठाई गयी। मेरे देवन का अन्तरंग मित्र यही ओम है। तभी मैंने जान लिया।

कार लाटूस रोड की ओर से बढकर हजरतगंज की ओर बढी। मैंने प्रष्ण दृशिट से देवन की ओर देखा। उसने मेरा दाँया हाथ दबाते हुए कहा इस बार मैं तुम्हे अपने घर ले चल रहा हूँ।

मेरा कोतूहल और जग गया। उसने थकी हुई हँसी से कहा, 'सब जान जाओगी। पहले चलकर अपना घर देखो।'

हजरतगंज के सिरे पर पहुँच कर गाडी रेटजल रोड पर मुडी और एक नये ढंग से लिपे पुते पलैट के सामने रूक गई। मैं उपर गई पूरी गृहस्थी मुझे सजी हुई मिली। आया चौके में बैठी थी। तीन कमरे, एक रसोईघर, एक स्नान घर बैठक बारजेनुमा छोटा सा आँगन—और जैसे नये घर की प्रत्येक इकाई मुझे अपना परिचय दे रही हो।

देवन ने मुझे बताया। मेरे बनारस जाने के बाद, उसी रात से ही षीतलराय और उनकी पत्नी से कुछ गंभीर बाते हुई। दो दिनों तक उनकी पत्नी ने देवन के पिताजी का खाना पीना हराम कर दिया।

हारकर षीतलराय जी ने अपनी सम्पत्ति से देवन का हिस्सा उसके नाम कर दिया। कैसर बाग की ट्रडिग कम्पनी उसके जिम्में कर दी गयी।

देवन की स्वतन्त्र इकाई देखकर ही षीतलरायजी ने उसे दिन पानी पिया था।

मैंने अनुभव किया थ जीवन के इस अप्रत्याषित मोड से देवन बहुत ही सन्तुष्ट था। जैसो एकाएक उसकी इच्छा ही फल गई हो।

4

अजीब बेचैनी से देवन ने सारी रात काटी। सुबह हई उसे थोड़ी सी षान्ति मिली । गीता के सामने से अपने को छिपाता हुआ वह न जाने कहाँ भागने के लिए तैयार हुआ। तेजी से जीन की और बढ़ा, सहसा पीछे से उसके कंधे को किसी ने थाम लिया।

“नाष्टा करके जाओ।”

एक पल वह निष्चेश्टा रहा, फिर धीरे से बोला—

“मैं अभी आ जाता हूँ।”

“तब मैं भी चलूँ !”

बिना कुछ बोले देवन नाष्टे पर लौट पडा । दो-दो कप चाय पी लेकिन दोनो मे काई बात न हो सकी। जैसे दोनो की एकांत सम्पूर्णता में अपने-आप काई मौन वार्तालाप चल रहा था।

गीता बहुत पास आकर देवन से बोली, “ मुझ से कोई भूल तो नहीं हुई ?”

बिना कुछ बोले, “ षायद सारा दोश मेरा ही होमत जाओ.....मुझें ही समझा दे न ! ”

उसने घूमकर नहीं । बहुत तेजी से चौराहे की ओर बढ़ा। कहीं न रुका । सीधे ओम के घर के सामने उतरा । घड़ी में देखा कुल साढे छः बजे थे। ओम तो साढे सात के बाद उठता है—तभी चित्र भी उठती है। यह सोचकर देवन वहाँ से मुडा और निर्व्याज्य स्टेसन की ओर चला गया। आठ बजे फिर लौट । सडक पर उसके पाँव जमे थे। वह स्वयं जैसे बहुत तेजी से चक्कर काट रहा था। ‘डी हेविन’ से लेकर ओम तक गीता से चित्र तक और अपने से ओम तक।

उसके कातर मन ने कहा—अभी तो वे चाय पी रहे होंगे । देवन ने सिगरेट जलाई , दो कष खीचकर सिगरेट के षेश टुकडे को बहुत जोर से फँका । और स्वयं को ओम के पास ले चलेन के लिए पूरी षक्ति से बाँधने लगा। लेकिन जितनी षक्ति से वह अपने को बाँधता जिस आवेग से वह स्वयं को कसता उसी गति से वह स्वयं ढीला पडकर फिसलता जाता।

उसी भाँति उसने एक सिगरेट और फूँक कर हाव मैं उडा दी । गीता को अपनी आँखों में बाँध और एक बार जैसे वह अपने को मुटठी में कसे हुए ओम के बरामदे मं पहुँचा दिया। बन्द किवाड के षीषे से उसने झाँका दृशिट में और कुछ न आया— अपने को ही देखा और डर सा गया।

तेजी से उल्टे पाँव लौटने लगा। सहसा भीतर से ओम और चित्रा की सम्मिलित पुकार आयी। वे बिल्कूल सामने आ पहुँचे।

उपर से देवन को हँसना पडा और भीतर से वह उसी क्षण पसीने से तर हो गया।

आते ही ओम ने उसके कंधे पर अपना दायाँ हाथ रख दिया । बायीं ओर से चित्र सटकर चलने लगी। देवन मषीन की भाँति उन से जुड गया, हँसी मे बातों में और उस वातावरणा के आने संस्कार में।

उन संस्कारों में एक आवेगपूर्ण अतीत था उससे निस्संग होने के लिए देवन अब भी अपने को बाँधने का प्रयत्न कर रहा था।

सब एक साथ बैठे चाय पी रहे थे।

ओम ने पूछा, " गीता को साथ नहीं लाये ?"

देवन चुप था।

चित्रा बोली, "रात भर जगते रहे क्या ?"

देवन को मुस्कराना पडा, " नहीं तो ! "

"कुछ थके -थके से लगे रहे हो ! "

"रात ज्यादा पी ली थी क्या ?" ओम न कहा और तीनों हँस पडे । देवन के भीतर का तनाव धीरे धीरे ढीला होता गया। जिन तारों को वह कसे हुए आया था। उनमें सेकिसी एक ने भी कोई आवाज न की सब गूगे निकले।

नौ बजे तक वह लौट आया और गीता से बीना कुछ बोले दफ्तर भागने की तैयारी करने लगा।

गीता सामने आयी। अपलक देवन की ओर निहारती रही— अतुल विष्वास था उस दृष्टि में । देवन ने उसे देखा । उसे हिसाब देना पडा , "मैं ओम से मिल आया , सारा सम्बन्ध मैंने उससे तोड लिया ! "

बडी देर तक, भरी दृष्टि से गीता उसे निहारती रही।

"उसने क्या कहा ?"

"कहता क्या, कुछ कहता तो जबान खीच लेता ।"

कई बार देवन ने अपनी मुटठी भीची, उसे ढीली की, फिर उसके हाथ ढीले पड गये। जैसे उसके दबे हुए क्रोध ने स्वयं अपनी सहज अभिव्यक्ति ढूढ ली।

तुली के बिरवे में दो नयी कोपले निकली थी।

तीन बजे का समय था। गमले में पानी डालकर गीता उसे निहारती हुई खडीथी दो नयी कोपले ! कितनी पवित्रकितनी कोमल। पतले से आँगन में क्वार की घूप फैली थी । बाहू कंधा पीठ वक्ष पर बिखर कर उसके बाल सूख रहे थे और वह खडी —खडी गमले में तुलसी के बिरवे को तक रही थी।

गीता धूप में खडी थी। तुलसी पर छत की छाया पड रही थी। कोपलो के नन्हे मुख पर पानी का एक छोटा सा उज्ज्वल बूँद अँटका था।

गीता की दृष्टि उसी बूँद में खो गयी। जल के कोमल बूँद को धीरे—धीरे स्थूलता मिली ——एकाएक वह जड से चेतन हुआ और गंगा की मिट्टी जैसे वर्ण का एक स्वस्थ दुधमुहा बच्चा वहाँ खेलने लगा। वह किलकारिँ मारता हुआ तुलसी के बिरवे को पकडना चाहता था। गीता ने मुस्करकर उसके नन्हे से हाथ में उसे पकडाना चाहा , फिर वह रो पडा । चित्र टूटा। गीता की आँखे भर आयी। आँख मीचती हुई वह छाया में चली आयी। और खडी—खडी बालों में कंधी करने लगी।

तभी जीने से एकाएक देवने के आने की आहट हुई ।

सहज प्रेरणा से गीता ने झट से सर ढक लिया।

बेहद थका सा देवन उसके सामने आ खड़ा हुआ। गीता मुस्करायी—मुस्करायी रही और उसके दौंये हाथ को पकड़ें हुए वह कमरे में चली गयी। साथ सौफे पर जा बैठी। फिर उठने लगी, “चाय बना लाती हूँ।”

“नहीं बैठा ! ”

“सुबह तुम से झूठ बोला था, “देवन सर झुकाये कहने लगा, “उस समय ओम से भेट ही न हो सकी!”

“कोई बात नहीं ?” गीता ने उसके कंधे पर अपना सर टेक दिया। कुछ क्षणों तक देवन मौन रहा।

एकाएक झटके बोला, “जो अभी मैंने तुम से कहा, यह भी झूठ है, मेरी ओम से भेट हुई थी मैं उससे कुछ न कह सका। ”

“तो क्या हुआ ! झूठ तो सभी को बोलना पड़ता है, लेकिन जिसे सत्य भी बोलना पड़ जाय, वह झूठा नहीं है।”

गीता ने स्नेह से उसके कंधों को हिला दिया। कमरे से बाहर गयी, चाय बनाकर, ट्रे में लिये हुए वह लौटी।

देवन ने षान्ति से चाय पी। पर कुछ बोला नहीं।

गीता कहती रही, “जब कह न सके तो ओम से कुछ न कहना। वह तुम्हारा दोस्त है, मैं निवाह लूगी।”

“निवाह लोगी। ” देवन का मुख आरक्त हो गया, “कैसे ?”

“अपनी रक्षा सहित ! ”

“ लेकिन क्यों ?”

देवन ने इतने धीरे से कहा, जैसे वह द्वन्द्व स्वयं उसमें धनीभूत होकर उससे चिन्तन कराने लगा।

षाम को देवन टहलने न गया। समय से पहले ही उसने भोजन किया और वह सोने चला गया।

आया बर्तन साफ कर रही थी। गीता आँगन में खड़ी थी। ऊपर अबूरा चाँद था, और उसकी पूरी रोषनी से उदासी बरस रही थी। आया कुछ गुनगुना रही थी। गीता ने आज दोपहर को उसके लिए पूरी आस्तीन का एक ब्लाउज सिला था। पूरे महीने के बेतन के साथ गीता ने उसे पाँच रूपये इनाम में दिये थे।

काम समाप्त करके आया गुनगुनाती हुई नीचे चली गयी। गीता एक बार अधूरे चाँद की ओर निहारकर भीतर कमरे में मुड़ी, जैसे अधूरे चाँद से ऊबकर वह पूरे चाँद को पकड़ने के लिए बढी हो।

एकाएक नीचे से आया लौटी, बताया , “नीचे ओम बाबू को घर वाली आयी है— कार पर ही बैठी है। अकेली है— साहब को बुला रही है। ”

गीता निश्प्रभ, चुप रही । कुछ क्षण आया भी खड़ी रही, फिर वही जीने की ओर मुड़ी।

गीता धीरे से पुकारा, " सुनो आया! उनसे कहना कि साहब सो गये है।"

आया आष्वस्त होकर आये बढी।

गीता ने फिर पुकारा, "नही तुम पूछ लेना कि क्या बात है, फिर मुझसे कह जाना। "

आया लौट गई। गीता ने आँगन को पार कर नीचे सडक की ओर देखा। चित्रा ने कार से निकलकर बडे झटके से दरवाजे को बन्द किया। उस झटके में साडी का पल्ला नीचे गिरा गया।

आया उपर आई, उसने संदेश दियं, "आपको ही नीचे बुला रही है ?"

गीता को कुछ छू गया, एक क्षण चुप रहने के बाद संयत स्वर से बाली,

"कहो जाकर , मै नीचे नही उतरती! "

आया लौट पडी। गीता ने उसे सहसा रोका ओर वह साथ चल पडी। नमस्ते करके गीता चुप खडी रही।

चित्रा ने अपना पल्ला - सम्हालते हुए कहा, चलो तुम्हे कही घुला लाऊ --- कितना अच्छा चॉद है ! "

चित्रा ने उपर देखा।

गीता ने नम्र स्वर में कहा, " वे तो सो रहे है।" और गीता की आँखों में जैसे खिच उठा हो, गगन चॉद अधूरा गगन में है ओर मेरा पूरा अंखड चॉद मेरे पास है।

"उन्हे सोने दो न, तुम तो हो।

"उनके बिना मेरा होना काई अर्थ नही रखता।"

चित्रा व्यंग्य से मुस्करायी, कुछ उसने कहना चाहा कई बार उसके औठो में गति हुई लेकिन न जाने क्यो वह फुटी नही।

अनेक क्षणो तक तीनो चुपचाउ खडी रही। जैसे उन सबको किसी की प्रतीक्षा हों, और उसके सीमित क्षणों में वे अनजाने, मिले हुए अपरिचित, आँखो-आँखों में एक दूसरे को समझने का प्रयत्न कर रहे हो।

आया बोल उठी, "रानी बहू ! मे जाऊ ! "

गीता ने उसकी ओर देखकर एसे अनुमति दे दी, फिर चित्र की ओर देखा।

नमस्ते करके वह कार मे जा बैठी और कार उसे लिये चली गयी। कार कहाँ-कहाँ घूमी, किन-किन सडको पर मुडी , कितने चौराहो पर उसे सोचने के लिए भटके मिलें; उसे अनुमान न हुआ। बेमतलब, निर्लक्ष्य वह रेगती रही , जैसे बहुत वर्षो से धरती या किसी मकान के गर्त में कोई सर्पिणी सोयी पडी रही हो। आज एकाएक वह बाहर निकल आयी हो, और स्वच्छ वायुमण्डल की न जाने कितनीन हवा पीती हुई वह मतवाली इधर-उधर घूम रही हो।

ग्यारह बजे वह घर पहुंची, कई लोग उसके ड्राइंग रूम में डटे थें ताष के पत्ते पटके जा रहे थें वह सीधी भीतर चली गयी।

उसके उपरान्त प्रायः एक हफ्ते तक चित्रा और गीता की भेट न हुई। देवन और ओम की भेट आवष्य होती रही । और वे भेट गीता के सामने होती थी। देवन चुप रह जाता था। उसके

भीतर कुछ सुलग सुलग कर बुझ जाता था। गीता अपने सर और मन पर एक बोझ लिए हुए दब जाती थी। और इस दबाव को देवन अनुभव करता था।

चाय पीते-पीते एक दिन उसके हाथ से प्याला छूट गया। फर्ष पर चकानचूर हो गया। उसके सिगरेट जलायी, धीरे से उसने गीता से कहा, "इस तरह मैं एक दिन बीमार हो जाऊँगा गीता?"

"क्यों ऐसी बात मुँह से निकलाते हों?" गीता उदास हो गयी।

"मैं नहीं निकाल रहा था, ऐसी बात स्वयं निकल गयी, मैं तो इसे दबाये बैठा था।

"मुझ से?"

देवन चुप रहा। गीता उससे सटकर बैठी थी, "तुम पुरुष हो देवन!"

वह चुप रहा, जैसे उसके अन्तःकरण ने गीता की बात स्वीकार न की। देवन ने सिगरेट जला ली, सोच सोचकर वह कहने लगा, "मैं तुम्हारे सत्य को ओम के सामने रखना चाहता हूँ जिससे षीघ्र से षीघ्र हमउ सके सम्बन्धो से अलग हो जायें ... लेकिन न जाने क्यों.....।"

पेश वाक्य को वह सिगरेट के धुएँ के साथ पी गया। लेकिन क्षण भर में भीतर का निगला हुआ धुआँ अपने आप बाहर निकलने लगा और शून्य में क्षीण रेखाएँ बन कर मिटने लगा, तब गीता के भोले मस्तिष्क में उस धुएँ की एक बू आयी और उसका जी मचला उठा।

"अपने यहाँ आज, ओम को चाय पर बुला लो!" गीता के स्वर में आग्रह था। "नहीं।"

"तो हमी लोग उसके यहाँ चले।"

"नहीं!"

"तुम आज अकेले ओम से मिलो।"

देवन चुप रहा।

गीता बोली, "मैं अकेली ओम के यहाँ जाउगी।"

"अच्छा?"

देवन यह पूछते हुए उठ खड़ा हुआ। गीता से कुछ बोला न गया, वह उत्साह के आवेष में वहाँ से डोल गयी।

थोड़ी सी रात और घीर आयी।

आया भोजन बना चुकी थी। गीता ने उसे साथ लिया, रिक्शे ने उन्हे षीघ्र ओम के घर पहुँचा दिया।

ओम की बैठक में रोषनी थी, वही चित्रा के साथ बैठा वह कोई अमेरिकन मैगजीन देख रहा था।

गीता, आया दायों हाथ दबाये कुछ क्षण बरामेद में निःस्पन्द खडी रही।

एकाएक चित्रा और ओम की सम्मिलित हँसी से वह जग गयी।

आया ने पर्दे के बाहर से पूछा, "साहब, हम आ सकते हैं?"

"कौन?" यह पूछते हुए ओम ने पर्दे को एक ओर खींचा, गीता आगे बढ़कर कमरे में चली गयी।

गीता अपने आप सामने के सोफे पर बैठ गयी। आया खड़ी थी। चित्रा अपेक्षकृत आष्वस्थ रही, लेकिन ओम पूरी स्थिति को एक अजीब कातर दृष्टि से देख रहा था। फिर भी वह मन के आह्लाद से कवि के पंख पर उड़ रहा था। “मेरे किस्मत, कि आप मेरे घर आयी।” दृष्टि नचाकर उसने आया की ओर भी देखा।

फिर बोलो, “क्या खातिर करूँ आपकी?” वह उठ पड़ा। पास चला आया।

गीता नीचे देखती हुई चुप थी।

चित्रा शान्त थी, जैसे वह कुछ पढ़ रही थी।

ओम प्रस्ताव की झड़ी लगा रहा था— काफी की, पिक्चर की, कार से कही घूमने और गोमती के सीने पर टहल आने की।

गीता ने सर उठाया, उसकी आँखों में कुछ दोल उठा। ओम चुपचाप सामने बैठ गया।

अतीव संयत स्वर में गीता ने कहा, “मैं आज आप लोगों के पास एक निर्णय लेकर आयी हूँ.....आना पड़ा! कुछ व्यक्तिगत कारणों से हम और आप लोग अलग-अलग रहेंगे..... मिलना जुलना, आना जाना न होगा।”

एक पल के लिए ओम का चेहरा पीला पड़ गया, दूसरे क्षण आरक्त हो गया, तब उसने जैसे कौपते स्वर में कहा, “यह बात।”

फिर जैसा वह ठंडा हो गया, मरे गोसत की तरह।

गीता ने विनय के स्वर में कहा, “इसके पीछे कोई बैर की भावना नहीं है, विवशता है। यह इसलिए भी है कि आप और देवन की पिछली मित्रता, जो अभी कल तक थी। इसका स्तर चाहे जो रहा हो, “फिर भी वह मित्रता थी, उसकी मर्यादा न नष्ट हो।”

“यह किसने जादू डाला है आप पर?” ओमने कुछ देर शान्त रहकर कहा।

गीता ने कुछ उत्तर न दिया।

“बात क्या है, वह तो कहिये, बिना अभियोग लगयो इतनी बड़ी सजा नहीं होनी चाहिए।”

गीता कुछ क्षण चुप रही फिर उसने उठते हुए कहा, “बस, मैं यही आप से कहने आई थी।”

गीता दरवाजे की ओर बड़ी। ओम दौड़कर सामने खड़ा हो गया।

“आप नहीं जा सकती। मैं भी सब बातें समझता हूँ।”

“तब तो बहुत अच्छा है।”

“अच्छा तो है, बाहर से बहुत सी चीजें अच्छी होती हैं लेकिन भतर से वे उतनी बद्सूरत भी होती हैं।”

गीता चुपचाप अपने बाहर जाने के पथ को देख रही थी।

ओम ने गम्भीरता से कहा, “इस फैसले को मुझ तक पहुँचाने के लिए देवेन्द्र साहब क्यों नहीं आये?”

“काई भी चला आता, इसमें तो कोई बात नहीं थी।”

“इसी मे तो सबसे बडी बसत थी ” ओम की बाणी जैसे रह रहकर टूट रही थी, “ सब से बडी बात थी, देवेन्द्र की कमी हिम्मत नही पड सकती कि वे मुझ से आँख मिलाकर ऐसे फेसले दे सके.....पूछिये क्यो ? समझ लीजिए इसे ! ”

“मै कुछ समझने या पूछने नही आयी हूँ। ”

“लेकिन यह तो याद रखना होगा कि यह फैसला आप सुनाने आयी थी।”

गीता का जैसे कुछ छू गया । उसकी आँखे भर आयी, चमकी, फिर तप्त हो उठी, पिस कर उसके मुँह से निकला, “तो क्या हुआ ?”

“अभी नही हुआ, लेकिन होना चाहिए।”

गीता क्या बोलती ।

ओम अपना स्वर व्यंग्य की गति मे गिराता हुआ कहने लगा, “जिस देवेन्द्र को आज आज आप पति के रूप में अपना ईश्वर देख रही है, ह झूठ है।”

“लेकिन कुछ तो है ”गीता ने धीरे से कहा ।

“भूल में है आप ! ”

“मुझे इसी में सुख है। और कुछ!..... हो चुका सब अपने मित्रत्र के बार में ! ”

गीता ने जैसे विजय के स्वर में कहा हो, “ मेरे देवन ने तो अपने मुख से आपके बारे में कुछ भी न कहा था ।

“कह सकता नही, यही तो मै कह रहा हूँ।”

चित्रा उठकर आया के पास चली आयी। आग्नेय दृष्टि से आया उसे देखकर कुछ बुदबुदा उठी।

“षीतलराय ने देवेन्द्र को घर से क्यो निकाला ? ” ओम के स्वर आवेष था, “ बाप ने देखा कि बेटा जुए में उसे बेचता जा रहा है।”

तो क्या हुआ ! “गीता ने गर्व से उसकी आँखो में देखते हुए कहा। चित्रा ओम के दाँये हाथ को पकडकर उसे शान्त रहने के लिए आग्रह कर रही थी। वह इतनी घबड चुकी थी कि उससे कुछ बोला न जा रहा था । वह बार-बार यही दुहरा पाती थी कि ‘ओम मत बोलो, इसमें कोई फायदा नही, सोचकर बोलो ’ ।

लेकिन ओम इतना क्षुब्ध था, जैसे कोई उसकी तपस्या भंग कर रहा हो !

गीता के बाहर जाने का पथ साफ था, न सामने ओम था न उसकी छाया। आया बार-बार चलने के लिए आग्रह कर रही थी। लेकिन गीता न जाने क्यों अपने स्थान पर अडॉल हो रही थी। उसमें वही स्थिरता आ गयी थी, जो उसके निर्णय में थी, विष्वास और मान्यता में थी। वह देवन के दोस्त ओम से की हुई चोट के घाव को और गहरा देखना चाहती थी। वह उस तल में उतर जाना चाहती थी, जहाँ किसी समय उनकी दोस्ती बँधकर पहुँची होगी।

आया को पीछे हटाकर गीता बोली, “ आपका दोस्त जुआरी है, बस यही कहना था आपको।”

“वह षराबी भी है।”

“कोई बात नही ! ”

“धोके बाज, जलील, आवारा; बुजदिल ! ”

“और कुछ नहीं ?”

“वह भी पता चल जायगा, फूली क्यों हो ?”

“वह भी सही !बस ! ”

ओम को जवाब देती हुई गीता ऐसी लग रही थी, जैसे उसके भीतर के किसी खोये हुए, निस्तेज, निर्बल तत्व का धीरे-धीरे ऊर्ध्व संचरण हो रहा हो— असत्य से सत्य की ओर — सुशुप्ति से जागरण और राग से आग की ओर।

गीता के अन्तःकरण में ओम कुछ जगाना चाह रहा था— कोई भयावह मूर्ति, कोई ऐसा मानचित्र ; जिसमें उसका घर — आँगन खो जाय, नन्हा-सा तुलसी का विरवा मुर्झा जाय।

पर जग गया गीता में कुछ और !

ऐसा जगा, जो उसमें रहा, लेकिन उससे अदृश्य या, अनुभूति की सीमा में था, पर व्यक्ति में नहीं ; जीवन ने उसे जैसे परिचित ही न होने दिया।

ओम, देवन का दोस्त था। दोनो एक-दूसरे से बहुत कुछ पाये होंगे, खोये भी होंगे।

गीता का कुछ न खोया जा सका ; क्योंकि उससे कभी कुछ पाने के लिए नहीं वरन् वह उसे पूरत तरह खोने लगी थी।

इसीलिए उल्टे, ओम में अचानक आज देवन की पत्नी गीता को एक नयी संवेदना मिल गयी— एक अजीब सी व्याकुल सीमा, जिसके भीतर बँध क रवह अपने स्वत्व और अन्तर को पहचान सकेगी।

अनेक तरह से कृतज्ञ हो कर गीता 'डी हेविन' लौटी। उसके मुख पर प्रकाश था, भीतर कुछ जल रहा था।

जीने को पार कर, जब वह ऊपर आयी, उसने देखा, देवन ड्राइंग रूम में पंखे के नीचे आँख मूँदे बैठा था। उसे देखते ही गीता उमड़ पड़ी, जैसे पावस की मोरनी। मुस्कान के बोझ लिये, पंजे पर चलती हुई वह देवन के पास चली आयी।

देवन ने हँसने का प्रयत्न किया, मुस्कराया वह, लेकिन मुस्कराते समय जो स्मित-ज्योति मुँह पर बरस जानी चाहिए, वह न बरसी — बरसते-बरसते सूख गयी।

देवन की उठी हुई सूनी दृष्टि ने मानो पूछा, “क्या हुआ गीता?”

गीता हठी बच्चे की तरह हँसती रही, उसे बहुत बड़ी विजय मिली थी, हँसी ही जैसे उस विजय के प्रति उसके मंगल गीत थे। बहुत बड़ा बोझ उतार कर आयी थी वह ।

लेकिन जब उसने देखा कि देवन के मुख की उदासी बढ़ती जा रही है, एकाएक उसकी हँसी मुस्कराट पर टूट गयी।

वह भी उसी तरह उदास हो गयी, लेकिन उस तरह हारी नहीं।

गले से लगाकर उसने बताया, “ कह आयी।”

“कुछ हुआ नहीं ।” सधे स्वर में देवन ने पूछा।

“जी होता क्या, फैसला सुनाने में कही कुछ होता है, फैसला ग्रहण करने में शायद होता हो।

..

“वही पूछ रहा हूँ — फैसेले लेने वाला ओम था। ”

“जैसे अभियोगी ले लेता है ! ”

कुछ क्षणों तक दोनों निस्तब्ध थे।

धीरे से देवन ने कहा, “गीता तुम मुझ से छिपा रही हो! ”

चुप मुस्कराती दृष्टि से गीता उसे निहारती रही।

देवन ने सर झुका लिया, “तुम्हारे पीछे—पीछे ओम के घर मैं भी गया था। ”

“सच ! ” गीता विस्मय फिर आतंक से भर गयी, “ सच देवन ! ”

“हाँ.....मैं इसे छिपा लेना चाहता था।”

गीता ने घबडाकर देवन के सर को अपने अंक में कस लिया।

“ओम झूठ है देवन ! ”

“अगर वह सत्य हो ?”

“सत्य हो ! ” गीता ने जैसे अपने से पूछा हो ।

“हो ।”

“तो सत्य ही सही, हम भी तो सत्य हैं। दो विरोधी सत्य एक दूसरे को तापयेगें और हमारे जीवन को एक समन्वित सत्य दे जायेगे।”

देवन अपलक उसे देखता रहा। कुछ क्षण निःस्पन्द रह कर गीता फिर बोली, “इसमे हमारी हार नहीं हुई है। हार उस विरोधी सत्य की हुई है। जो अपने को पहचान न कसा।”

गीता ने देवन की उदासी अब भी उसी तरह बढ़ती जा रही थी, जैसे विलम्ब रात की वह घड़ी। वह स्वयं पश्चाताप से भर गयी और उसी दृष्टि से उसने देवन की आँखों में झॉका, उसमें वेदना थी।

पर विलम्ब रात की वह घड़ी, गीता के मन का पश्चाताप और देवन की वेदना, तीनों एकीकृत होकर आषा बन गयी। वह स्वरथ मन से कहने लगी, “अपनी अमर मे सब एक बार जुआ खेलते हैं मेरे नाना बहुत बड़े जुआरी थे, लेकिन सरकारी बेच के सबसे ईमानदार न्यायधीष थे। लोग अब भी उनका नाम लेते हैं।”

कुछ क्षण वह शून्य में देखती रही, फिर बोली, “मेरी माताओं के गुरुजी कहा करते थे, कि जो जीवन की बुराईयों में भूला नहीं वह उससे ऊपर क्या उठ सकेगा ? जो डगमगा जाता है, वही तो नया रास्ता ढूँढता है।”

कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

गीता ने आग्रह किया, “चलो हम सो जायें। आज हमारी जीत की घड़ी है उदास होकर इसे रूठने न दे।”

देवन उठ खडा हुआ, गीता से आँख मिलते ही उसने कहाँ —“जितन ओम ने कहा, गीता उतना ही न तुम ने जाना और जितना उसने नहीं कहा वह ?”

कुछ क्षण वही खडी देखती रही, फिर उसका दायाँ हाथ पकड़े हुए वह सोने के कमरे में बढी, “मैं ओम को क्या समझती हूँ, मैं तुम्हे जानूंगी या जानना ही न चाहूंगी, उस से क्या प्रयोजन ?”

“जानने का आग्रह कर लो तो अच्छा रहेगा।”

“क्यो ?”

“तुम आग्रह करोगी तो मे बता दूंगा या बता पाऊंगा।”

गीता ने उसे अपलक देखा, कुछ बोली नहीं पलंग पर बैठ गयी। देवन को लगा जैसे गीता निःशब्द चिल्ला कर कह रही हो, “मै तुझे जानने का आग्रह कैसे करू? तुम्ही तो “मै” हो मेर स्वत्व! ”

देवन पलंग पर लेटा । कमरे का प्रकाश बुझ गया। बातावरण निस्तब्ध था, एकाएक उसे भेदती हुई देवन की आवाज आयी, “तुम डरती हो गीता, डरना सहज भी है क्योंकि कभी-कभी ऐसा हो जाता है। कि बाहर से दो मिले हुऐ व्यक्ति जब एक दूसरे को पूरी तरह से जान लेते है तो वे अलग हो जाते है रहस्य का पर्दा उठ जाने से आकर्षण नष्ट हो जाता है।”

गीता कॅप गयी। जैसे सरोज अपने चहरे पर एक भयानक नकाब डाले उसके कमरे में चली आयी हो और एक ही क्षण में वह कमरे भर मै फैल गयी हो। उस निसृति में जैसे उसकी वाणी खिच गयी—“क्योकि दो टूटे हुए आपस में मिलते है, अपने मे जोड लगाकर । और वे जोड बनावटी होते है। जिनमे न जाने कितनी तरह के सुराख रह जाते है जहाँ से वे बूद-बूद टपकते रहते है।”

“भाव मस्त हो कर गीता, भीतर ही भीतर आवेष से भर गयी, जैसे उसके अन्तःकरण की सत्यता पर विश-दंष हो गया हों। भावोन्मेश में उसकी दोनो मुटिठायों भिच गयी और उसने बढकर जैसे षून्य में फैली हुई सरोज को पकड लिया और उसे बेनकाब कर दिया । वह कोई मुख नहीं था, जिस पर नकाब पडा था, वह ढका हुआ झूठ था, जो गीता को विचलित करने आया था। वाणी को संयम करते-करते कई क्षण बीत गये, गीता ने तपे स्वर से कहा “देवन मै कही से कुछ भी नहीं डरती” उसने बढकर कमरे में फिर प्रकाश कर दिया, “ क्योकि हम बाहर से नहीं मिले है। भीतर से मिले है, हमारा बाहर तो उस मिलन का निसर्ग है। ” क्षणिक अन्तराल के बाद वह फिर बोली, “यह मिलन आत्मा का है, वस्तु का नहीं, तभी इसका साक्षी अग्नि था।”

यह कहते-कहते गीता देवन के मुख पर झुक गयी। देवन ने घबडाकर पूछा, “इतने आवेष मे क्यो हो ?”

“मेरी एक ममेरी बहन सरोज है मुझे इस समय उस पर क्रोध आ रहा है। जो कहता है कि फिर उसका मुँह न देखू। ”

“अच्छा अब सो जाओ।” देवन के स्वर में थकान थी।

गीता लेट गयी, हँस कर बोली। “मेरे पापा कटटर आर्यसमाजी है।, माताजी वैष्णव हैं, दोनो एक दूसरे को खूब जानते है। लेकिन व्यक्तित्व मे जैसे एक आत्मा है।”

देवन चुप रहा, जैसे सो गया हो।

गीता कुछ देर रूककर फिर बोली, “ जो चीज कही जाती है। वह अधूरी रहती है। उसकी सम्पूर्णता अनुभव से होती है।”

सहसा देवन ने कहा, "अनुभव तो होगा ही पर मैं अपनी और से क्यों छिपॉऊ – अधूरा ही सही, लेकिन कह दूँगा।"

"ओम झूठ कहता था देवन, कि तुम बुजदिल हो, "गीता ने कहा, बुजदिल के पास साहस की वाणी नहीं होती, फिर आत्मगत सत्य बताने की वाणी।" आत्मसंतोश से वह अभिभूत हो गयी। उसके अंग-वंष में कुछ तैर सा गया, जैसे नयी अनुभूति की राजहँसिनी।

"मेरी अलकोको छुओ देवन ! "

छेवन ने अपनी आँखों से छुँआ।"

"नहीं, किसी और दिन। " स्वयं मना भी किया।

देवन

माँ कहती थी, जिसे अपना बचपन भूल जाता है वह जीवन में सदा भटकता ही रहता है। मुझे इस पर विष्वास नहीं लेकिन यह सत्य है कि मुझे अपना बचपन नहीं याद है पता नहीं बुद्धि की कमी थी, संवेद्य शक्ति का अभाव था या हृदय ने स्वयं स्मृति के प्रति कोई विरोध ठान रखा था— कह नहीं सकता।

पूरी तरह से केवल मुझे माँ याद है गगाजली ऐसा पवित्र नाम आज तक मुझे कहीं न मिला। पिताजी मुझे देवेन्द्र कहते थे माँ देवन पुकारती थी। माँ की यह पुकार मुझे बहुत थोड़े ही दिनों तक सुनने को मिली थी। इतने स्नेह से आज तक मुझे किसी ने न पुकारा।

अचानक एक दिन माँ मुझसे चली गयी। मैं नौ वर्ष का था —तब से मुझे सब याद है या याद रहने लगा है। जैसे मौत याद रहती है।

लेकिन उस याद में किसी और के लिए कुछ नहीं है— गीता के लिए भी नहीं। उसमें कोई ऐसी घटना या समस्या नहीं है। समवेदना उभारी जा सके, या जिसका अपना कोई बहुत बड़ा सत्य हो— उस समतल रास्ते की भाँति है जो एक सी जमीन को पार करता हुआ आगे बढ़ आया हो ; जिसमें मोड़ अवश्य हो लेकिन ऊँची नीची खाइयाँ न हो दरार और कगार न हो।

पुरानी घटना!

पुरातन—समस्या !!

धनी पति की पत्नी मर जाती है। अपनी आत्मा के दो नन्हे—नन्हे स्वरूपों को घर में छोड़ जाती है। पति दूसरा षादी कर लता है। घर में एक नयी दुल्हन आती है, बच्चे कौतूहल—वष उसे देखने दौड़ते हैं। कोई सहसा मजबूत हाथ से उन्हें पकड़ लेता है। और उन्हें विवषतः परिचित होना पड़ता है कि वह तुम्हारी माँ है — दुल्हन नहीं, झट चरण स्पर्श करो।

तन पर कपडे लाद कर, इच्छा को पाटकर माँ की पवित्र स्मृति के प्रति छलना का नाटक खेला जाता है। माँ—बाप सूत्रधार हुए, मैं पुतली की भाँति नाचाता हूँ।

स्थितियाँ मुझे लिये हुए बहुत आगे बढ़ गयी, लेकिन मन बहुत पीछे छुट गया, जैसे व्यस्तता वष उसे किसी न पूछा नहीं, और वह रूठता चला गया।

माँ एक होती है, बस !

दूसरी माँ पिता जी की पत्नी थी।

न जाने वह कौन सा पथ रहा होगा, जिस पर मुझे चलाने के लिए माँ ने स्वप्न देखा होगा।

घर मुझे फॉसी सा लगता था, यद्यपि घर में सुख के समस्त साधन थे। इधर—धर भटकता रहता था— मुहल्ले में, सडक और गलियों में, स्कूल तथा कालेज के मैदानों में।

इन भटकनों में मेरा सहज बालक अपने में भूल जाता था, लेकिन विवषता जब मुझे घर लौटा कर लाती थी ; मैं बालक से जैसे क्षण भर में वृद्ध हो जाता था। घर में आते ही पिटने लगता था। पिटना तो किन्ह अथो में स्वस्थ भी था, अस्वस्थ थी उसके पीछे की घृणा और उससे भी भयानक थी मौन उपेक्षा। इसे न पिताजी ही जानते थे न मेरे छोड़ अन्य कोई।

वह यातना मेरी थी। पर विष्वास था कि पिताजी इसे नहीं जानते। आषा थी, जिस दिन वे जानेगे उस दिन मैं इस से मुक्त हो जाऊँगा और माँ की दंड मिलेगा।

सन्ध्या थी, पिटा-फटकारा हुआ मैं ऑगन में खडा-खडा रो रहा था। ऑगन में एक बच्चा, आया की गोद में खेल रहा था। मुझ से कहा गया कि मैं चुप हो जाऊँ, लेकिन मैंने चुप न रहने के लिए तै किया था। सोचा था कि पिता जी सब जान लें। सहसा एक और चांटे के साथ मुझे माँ से माँ की गली मिली।

पीछे पिताजी आ खडे थें। मैं उन से चिमट गया। आँखों में आँसू भरे, मैं बार-बार उन्हे निहारता रहा। वे कुछ न बोले।

उस क्षण पिताजी के भी प्रति मेरा कुछ टूट गया। मैं सब से छिप कर बहुत रोया, फिर चुप हो गया और घंटो बैठा-बैठा न जाने किसे-किसे गालियाँ सुनाता रहा। उठा। अपने सब फोटुओ की चीर डाला, सारी किताबे को उठाकर मैंने गन्दी नाली में फँक दिया। कैंची का एक पैकेट सिगरेट खरीदा और रात भर में सब पी गया।

मेरी यातना अंधी थी, क्योंकि उसमें मौन उपेक्षा थी, कामना-विहीन थी वह। इसलिये उस यातना ने मुझे दृष्टि नहीं दी, बल्कि छीन ली।

मेरा बाहर जगा, भीतर से गया— सोता रहा, जैसे जगाया ही न गया।

कुछ रूपये पिता जी देते थे, कुछ मैं चुरा लेता था, विशेष आवश्यकता दिखाकर कुछ मॉग लेता था और कुछ पढाकर ऐठ लेता था। रूपये में उत्साह से अधिक षक्ति थी, वह मुझे मिली, और मैं उसे पहचान भी गया। मैंने उसे आत्मसमर्पण दिया, उसने मुझे जीवन के प्रति आकर्षण दिये। उसके अधिक से अधिक पक्ष मुझे सम्मोहित करने लगे।

सब में रंगीन आश्रय थे, नये — नये अनुभव थ — समरसता की गंध थी।

बिल्कुल नये ढंग की षान्ति थी, जिसे मैं मानो ढूँढता रहता था।

अच्छे नम्बरो से मैं इन्टर पास हो गया। तब तक पिताजी भी मुझसे ऊब चले। लेकिन मेरे मूल अधिकारो का वे कभी नहीं भूलते थे।

विष्वविद्यालय मे मेरा प्रवेश हुआ। घर छोडा दिया गया। मैं होस्टल मे रहने लगा।

अपने विशय में बकना मुझे बहुत बुरा लगता है, मेरा दम फुल जाता है, इसीलिए मैं अपने जीवन का सम्पूर्ण वृत्त न बना कर तेजी से एक ऐसी रेखा खीच रहा हूँ। जैसे जमीन पर कोई अनाडी बच्चा खीचता चला जाय।

गीता इस रेखा से तुम स्वयं मेर वृत्त बना लेना और अनेक, असंख्य न कही बातो —घटनाओ से उस वृत्त के घेरे को भर लेना।

मैं अपने को तुम पर लादना नहीं चाहता केवल बताना चाहता हूँ। अतः कहता कम हूँ, संकेत अधिक करता हूँ। क्योंकि अगर सब कहने लगूंगा तो तुम सोचोगी क्या ? सब इसलिए भी नहीं कह रहा हूँ कि वहाँ मेरे विषुद्ध अहं है — जो अपनी निर्बलताओं और भटकनो को अपने मे दबाकर बहुत सादगी से बैठा है । मैं उसे नहीं छेडना चाहता — उसमें अनेक चित्र है, अनेक कथायें है — सब अपने प्रकृत रूप में बिखर पडेगी। मैं इतना नैतिक नहीं कि मैं उन्हे (जो मैं हूँ) अपने हाथों मूर्त करूँ।

तुम्ही कर लो गीता, मेरी हिम्मत नही । उठो पास आओ, इस पर्दे को खींच दो, और सब देख लो। इन्हे तुम्ही देख भी सकती हो, मैं नहीं मैं देख सकता तो ये मुझ में आती ही क्यों ?

ओम ने जो — जो कहा, ठीक कहा था।

उसने जो नहीं कहा, वही वह है तभी उसने नहीं कहा— क्योंकि मनुष्य सहज रूप से जब दूसरो को कहने लगता है। तब अपनी छिपा लेता है और जब अपनी कहता है तो दूसरो की छिपा लेता है। उसने जो नहीं कहा, वह भी कोई असाधारण बात सही । मेरी गति है वह।

एम० ए० पास कर लेने के बाद मेरे लिए घर में फिर यह समस्या उठी कि अब मुझे कहाँ फसाया जाय। मैं बिल्कूल बेकार घूम रहा था।

उसी वर्ष संयोगवर्ष ओम से मेरी भेट हुई, परिचय हुआ। हम दोनो एक दूसरे को बहुत अच्छे लगे पूरक — जैसे।

ओम के पास अपनी एक 'मोटर-कम्पनी' थी— यूनाइटेड कम्पनी नाम जितना बडा था, 'कंसर्न' वैसा न था। फिर भी चलती हुई कम्पनी थी। ओम से पहले दिन की बात मुझे याद है उसने कहा था, 'इस जमाने में पहले नाम बडा करो फिर सब बडा हो जायगा। नाम बिकता है, और अपने को बेच कर वह रूपया लाता है।'

मैं प्रसन्न था, क्योंकि चल पडा था। ओम की संगति ने उसमें जान डाल दी थी, मेरे प्रति उसमे एक बडी सुन्दर अनुरूपता थी। जैसे हम बहुत दिनों के साथी थे, बीच में कही छूट गये थे, सहसा मिल गये।

उसी वर्ष हम लोग देहरादून गये, गर्मी काटने। वहाँ एक स्वच्छद युवती से हमारी भेट हुई परिचय बढा। न जाने किन संस्कारो और आकर्षणों ने हमे बहुत ही षीघ्र एक दूसरे के पास ला दिया। उसकी जन्मभूमि लाहौर थी लेकिन संस्कार पूरब के से थे। अंग गठन और रूप विन्यास में पंजाब का गहरा रंग था। पर जिससे व्यक्तित्व को सम्पूर्णता मिलती है रूप को संस्कृत किया जाता है, वह सब और भी पश्चिमी था। रूप , आकर्षण और संस्कार का अजीब समन्वय।

कन्चेन्ट से सीनियर कैम्ब्रिज पास थी, स्पष्ट खुली हुई थी, हँस-हँसकर इतने षीघ्र हम लोगो मे घुल-मिल गयी कि सचेत रहते हुए भी हमे पता न चला, जैसे हम लोग एक दूसरे को ही ढूढ रहे थे।

उसकी बडी-बडी आँखो में कुछ बुझा हुआ था। वही बिन्दु उसके सारे अलहड व्यक्तित्व पर करुणा की सी गंभीरता विखेर देता था। और वही उसकी सम्मोहन शक्ति थी नारी, भटकन थी। पूरब था।

वह देहरादून से मसूरी जाने को थी— अपने मामा के पास विदा देते समय हम सब हार गये अजीब थी वह मन की विवषता। मो ह में बँधे हुए हम लोग उसके साथ मसूरी चले गये।

हम सब उसी होटल में रुके जहाँ उसके मामा एकाउन्टेन्ट थे। वहाँ भी हम खूब परिचित से रहे।

गीता, अब तुझे में बता दूँ यही थी चित्रा । संस्कार उसके अति आधुनिक थे, वह अपने में बहुत बडे मूल्य की थी, लेकिन उसमें एक भयानक दोश था। वह भीतर से कही न कही प्राचीन थी । यह सत्य हमे उस रात मालूम हुआ , जब हम मसूरी छोडने जा रहे थे।

पिछले दिनों तक हम लोग साथ आन्नद से घूमते थे, चाय भोजन का विलास करते थे, सिनेमा देखते क्लबों में मुखरित होकर नाचते थे। पर उसने अपने प्राचीन सत्य का कभी आभास न होने दिया।

हम लोग गहरी नीद में सो चुके थें। वह एकाएक हमारे कमरे में आयी रोषनी की पास के बीच के कोच पर गिर गयी। और फूट कर रोने लगी। पहले मेरी आँख खुली तब ओम की। हम दोनो ने विस्मय से उसे देखा। वह निःषब्द बडी देर तक सिसकती रही। काँपते स्वरों से उसने बाताय उसके मामा को छोड उसके आगे पीछे कोई नहीं है। तीन साल हुए उसके नाम चार हाजर रूपये छोड कर उसके पापा जी मर गये थे। दूसरी माँ थी, वह अन्यत्र चली गयी। साथ उनके केवल मामा थे। अब वे भी इस प्रस्ताव पर निश्चित हो गये थे कि वही के एक क्रिश्चियन व्यवसायी से उसका विवाह हो जाय और दूसर प्रस्ताव था कि वह उसी होटल में नौकरी कर ले। अन्त में चित्रा ने करुणा से कहा था कि ' वह हिन्दू माँ बाप से पैदा हुई है, हिन्दू ही रह कर बह मरेगी, स्त्री ही रहेगी, कही नौकरी करके यंत्र नहीं बन सकती।

मेरी आत्मा में कुछ जग-सा गया, मैं प्रस्तव बाँधकर उसके सामने रखने ही जा रहा था कि ओम ने बाजी मार जी, जैसे उसकी आत्मा कब की जगी बैठी थी। वह चित्रा को पा गया। कोर्ट में दोनो का विवाह हुआ।

लखनऊ में उसका सूना घर बस गया। और ऐसी श्रीवृद्धि के साथ बसा कि अपने स्तर और वातावरण में उसका सर ऊँचा उठा गया।

हम तीनो तब भी उतने ही समीप थे। कही से भी हममे अन्तर या दुराव न आया। ओम मेरी आँखों में बहुत ऊँचा उठा गया था— इतना ऊँचा कि वह सदा मेरी दृष्टि में रहे।

ओम की गृहस्थी बनाने में उसे जहाँ मेरी आवश्यकता पडी, वहाँ खडा रहने में मुझे संतोश मिला। चित्रा को भी मैंने क्या-क्या.....।

लेकिन क्यों ?

कुछ नहीं।

विवष हूँ। अब मैं कुछ नहीं कहूँगा गीता ! कुछ तो मूक रहने दो। क्योंकि अब जो कुछ कहूँगा जो कुछ भी मेरे मुह से निकलेगा सब मेरा अन्तर होगा, उसकी एकांत अनुभूत होगी। अपने विववास और सत्य की प्रेरणा से किये हुए कार्य, दिये हुए भाव पाये हुए द्वन्द्व और घनीभूत अनुभूतियों को जब कहने लगता है तब वह कथन नहीं होता बल्कि, उन सब के प्रति एक महान विष्वासघात होता है। महान इसलिए कि वह, सत्य भाव और अनुभूति के है वस्तु के नहीं।

कथन वस्तु का होता है। भाव अनुभूति का नहीं। ये अपने आप बाँध जाते है, इनकी अपनी वाणी होती हैं उसे हम नहीं जानते।

पिता जी मेरे लिए व्याकुल थे। माता जी मेरे प्रति कटु हो चुकी थी। जैसे उनकी धृणा धीरे-धीरे उनमे सतह पा कर जम गयी हो।

पिता जी समझते थे कि मैं उन से अलग हो रहा हूँ। उनके मन की इच्छा थी कि मैं षादी कर लूँ फिर अलग हो जाऊँ। मैं अलग रहने पर तो तुला बैठा था लेकिन विवाह से न जाने क्यों मन बहुत दूर भाग रहा था।

पिताजी मेरे मूल अधिकारो को कभी नहीं भूलते थे। यही मे उनके स्नेह से पराजित हूँ।

उनका मन रखने के लिए मैं उनके रखे हुए विवाह के अनेक प्रस्तावों पर विचार करता था । लड़कियों को देखता था— कभी दयावशं, कभी कर्तव्यवश और कुतहलवशं ।

मैं ऐसे अहं के रूप में नहीं कर रहा हूँ गीता ! सत्य रूप में कहा रहा हूँ। मेने उन वर्षों के बीच अनेक लड़कियों को देखा लेकिन मुझे उनमें कुछ भी मौलिक कुछ भी नया न मिलता था सब वही पुराना वही सम्प्राप्त !

एक अधूरी परिधि में मैं घूमता रहा। थका नहीं, क्योंकि निर्व्याज्य केवल घूमना ही था। इसी चक्र में न जाने कैसे, गीता तु आयी, ऐसी आयी कि मेरी अधूरी परिधि स्वतः बाहे फैला कर अपने में पूरी हो गयी।

मुझे विस्मय से अधिक पराजय सा लगा।

सच तुम्हे देख कर गीता मेरा वह असन्तुष्ट बचपन मचल पडा ; जिसे मातृत्व के स्थान पर मौन अपेक्षा मिली थी। मेरे सुशुप्त भावों के वे अधिकार उमड़ पडे, जिसकी कमी का मुझे कभी अनुभव ही न था।

तुम्हारे एकांत दोश का भी आभास मुझे मिल गया था। तुम पिछडी थी, यह षहर तुमसे बहुत आगे बढ़ गया था। पर यह कमी भी मुझे आकर्शक लगी — तुम्हे सुलझाने की जिज्ञासा तुम्हें लेकर आगे बढ़ने का उत्साह।

तुम्हे जब मैं पा गया और, तुम्हे अपने में समादूत करके मैंने अनुभव किया, तब मुझे लगा कि मैं सब दिशाओं में असन्तुष्ट हूँ, तुम्ही में अपना सन्तोश ढूँढंगा।

मैं चला, जैसे कि मैंने नये सिर से अभी अपना जीवन आरम्भ किया हों। लेकिन ओम और चित्रा के लिए मैं वही था। उन्हे यह पता नहीं कि तुम ने मुझे अपने में खींच लिया है— मैं आगे से पीछे लौट गया है, जहाँ तुम खडी हो।

ओम ने जब तुम्हें देखा होगा तो उसकी दृष्टि में चित्रा रही होगी ; स्वाभाविक था। मैं भी, तुम्हे देखने के पहले जब किसी लड़की को देखता था तो मेरी भी दृष्टि से अभिभूत रहती थी।

ओम ने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किये, पहले मुझे उस पर ध्या नहीं न था, ध्यान में षायद इसलिए भी न आया कि मैं उन्हे अर्थ हीन समझता था। ओम के लिए भी वह अत्यन्त स्वाभाविक था, क्योंकि उसे हमने जन्म दिया हैं। जिसे हम जन्म देते है, उसे हम बुरा नहीं समझते बल्कि उस पर ध्यान ही नहीं देते । वह हमारे दैनिक जीवन का एक सहज अंक हो जाता है।

मैंने अपने को तुम्हारे सामने रख दिया। जो कुछ ओम ने मेरे बारे में तुम से कहा वह तो सत्या था ही, मैं भाग नहीं सकता। जो उससे न कहा गया, मुझे कहना पडा, उस सत्य में और भी गहनता है।

तुमने मुझे देख लिया। मैं तुम्हारे पथ पर बिल्कूल सामने खडा हूँ — नये मोड पर । तुम ने मुझे गति दे दी, मैं चल पडा।

परसो बैक जाते समय मैं ओम की दुकान की ओर से गुजरा, सामने आते ही न जाने क्यों मैं कॅप गया। ओम ने अगर मुझे देखा होगा, तो षायद यही दषा उसकी भी हुई हो। बैक से

लौटते समय मैंने दूसरे रास्ते को पकड़ा। बगल से ओम—जैसी एक नीली कार गुजरी, सारा रक्त मेरे मुँह पर आ गया, लेकिन कार का नम्बर कुछ और था।

षाम को जब मैं तुम्हारे साथ हजरतगंज टहल रहा था, मैं तुम से तुम्हारी बातें कर रहा था, लेकिन मेरी आँखें देख रही थी कि गंज में घूमती हुई सारी औरतें मानो चित्रा हैं। तभी मेरी भिची हुई मुट्ठियाँ बार—बार पसीने से तर हो जाया करती थी।

कल चार बजे एक और भी विकास हुआ। मैं अपनी दूकान से निकला हो था, कि चित्रा की कार मेरे सामने आ रूकी। मैं निश्चिन्त रह गया। मैंने अपनी दृष्टि को उससे मिलने न दिया— चुराता रहा।

उसने गिरे स्वर में कहा, “तुम लेने आयी हूँ।”

उसने दो बार कहा, मैं निष्पेश्टा खड़ा रहा।

फिर उसने, कँपते स्वर में पूछा, “नहीं चलोगे ?”

मुझे पता नहीं, मैं कार में जा बैठा— पिछली सीट पर।

चित्रा आगे बैठ कर क्षण भर पीछे निहारती रही। सर गाड़े हुए मैं जैसे चित्रा की दृष्टि से अपने को दूर हटा रह था।

“अलग होना सरल नहीं है देवन ! इसेक लिए पहले टूटना पड़ता है। ”

यह कह कर चित्रा ने कार चला दी

मैं गम्भीरता से अपने को स्पष्ट करने लगा। अपने—ओम और गीता के आधारों को मैंने साफ—साफ बात दिया। अपने पथ के इस नये मोड़ को भी मैंने उसे बता दिया। यह भी बता दिया कि जिस रात गीता ओम को हमारा फैसला सुनाने गयी थी— ओम ने मुझे झूठा, षराबी, मक्कार दुष्चरित्र आदि न जाने क्या—क्या कहा था—उस समय मैं वही बाहर, बरामदे में खड़ा था।

चित्रा कुछ बोली नहीं। उसकी कार बढ़ती रही, अपने मूल रास्ते को छोड़ती हुई और सड़को पर मुड़ती रही। मैं सब कह चुका—अवष्य गम्भीरता से कटुता की भी और बढ़ता गया, लेकिन अन्त में मुझे चुप हो जाना पड़ा, क्योंकि चित्रा के पास जैसे कोई प्रतिवाद ही न था।

कार जब बहुत घूम चुकी, मुझे उसकी आवारा गति असह्य हो गयी। मैंने डाँटते हुए पूछा, ‘यह क्या कर रही हो ?’

चित्रा पर कोई असर नहीं। बल्कि मुझे लगा कि कार की गति और भी तेज हो गयी। फिर मैं डर गया कि वह कोई भयानक घटना न कर बैठे।

मैंने क्रोध से चीख कर कहा, “तू मुझे धोखा नहीं दे सकती ! ”

कार उसी क्षण रूक गयी, जैसे एकाएक पहियों के धुरे टूट गये हो।

चित्रा कार से निकली। पिछली सीट के दरवाजे पर आ झुकी।

“कैसा धोका देवन !”

लग रहा था, जैसे वह रो देगी। मैं चुप रहा। उसने स्वर को और गिरा कर कहा, “मैं इतनी नीचे नहीं हूँ देवन कि”.....फिर वह रो पड़ी, ठीक उसी तरह जैसे मसूरी में रोयी थी।

और कार में जा बैठी जैसे अपने-आप से कहने लगी, "पता नहीं किस धोखे की बात तुम्हारे मन में है। देवन, मैं तुम्हें धोखा भी दे सकती हूँ, इसे कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा।"

मैंने पूछा, "फिर निर्लक्ष्य तुम्हारी कार क्यों घूम रही है?"

"क्योंकि मेरा स्वत्व धूम रहा है" चित्रा ने बताया, "लेकिन इस घुमडन में स्वयं के प्रति चाहे जो अहित हो जाये, तुम्हारे लिए अहित की भावना तक नहीं। यह तो मेरा पक्ष है, पर तुम्हारे पक्ष से मेरे प्रति जैसे विष्वास उठ गया— क्यों ? बोलो न, कह डालो।"

मैं चुप था।

वह कहती गयी, "मुझ से अलग होने के लिए अपने मन को इतना विशाक्त क्यों बनाते हो?"

मैं कार से नीचे उतर आया।

उसने फिर कहा, "पर इसे बताना होगा, कि इस द्वन्द्व में मेरा दोष क्या है?"

मैंने दो टूक उत्तर दे दिया, "दोष मेरा था, इसका फल गीता को मिला, इसी तरह ओम का भी था, परिणाम तुम्हें भी भोगना होगा ! "चित्रा अवाक् थी।

मैंने और स्पष्ट किया, "मूल दोषी मैं हूँ, मुझे सब से अधिक भोगना होगा ! "

"नहीं, यह मैं अपने लिए सोचती हूँ। "चित्रा ने कहा।

"लेकिन रास्ते अलग-अलग है ! जो इन्हें मिलायेगा, वह हम से भी अधिक धोखे में रहेगा।"

यह कहकर मैं सामने रिक्शे की ओर बढ़ा। चित्रा ने अवश्य कुछ कहा, पर वह मुझ तक न आ सका। मेरा रिक्शा आगे की ओर बढ़ गया। दूर मोड़ से मैंने फिर घूम कर देखा, कार जैसे वही बिगड़ी रूकी थी।

6

अभी चमेली की लता पर सुबह को धूप नहीं चढ़ सकी थी। ऑगन के पश्चिमी छोर पर, जहाँ कोमल सी धूप आयी भी थी, उस पर जैसे झीने बादलो की छाया पड़ रही थी।

‘डी हेविन’ की गृहस्थी में दषहरा आया, दिवाली, आयी, दीपक जले, प्रसन्नता आयी, और अपनी छाया देकर चली गयी—फिर आने के लिए।

गीता और देवन कमरे में बैठ चाय पी रहे थे, बैठक में रेडियों कबीर का भजन गा रहा था—झीनी—झीनी बीनी चदरिया’। भजन षायद दोनो चुप—चाप सुन रहे थे, पर गीता के मन के तारो पर भजन की वाणी जैसे कंपन बनती जा रही थी।

उसे एकाएक सुधि हो आयी—उसी भजन ने दे दी, एम0ए0 द्वितीय वर्ष पास करना होगा अथवा नहीं। देवन ने वचन दिया था कि गीता दषहरे के बाद बनारस लौट आयेगी। उसकी सारी किताबे वही रूकवा दी गयी थी।

देवन को स्पर्ष करती हुई गीता बोली, “थोड़ी चाय और ले लो !”

“तब से यही सोच रही थी ?”

गीता हँस दी, मुस्कराती रही, फिर लजाकर बोली—

“मैं अपने एम0ए0 द्वितीय वर्ष को सोच रही थी।”

“तो बनारस जाना चाहती हो ?”

देवन ने जैसे अपने से कहा हो, गीता के उत्तर देने का कुछ संभवाना ही न हुई। वह सिगरेट पीता रहा। छिपती दृष्टि से उसने कई बार गीता को देखा— वह संकोच से दबी जा रही थी।

सिगरेट बुझाकर देवन के बन्द ओठो पर लम्बी मुस्कान फैली—फैलती गयी, उसके सम पर वह बोला—

“तुम्हारा साथ पाकर मैंने अपना घर छोड़ दिया, क्षण भर मे ओम—चित्रा से अलगा हो गया।”

गीता बीच ही मे बोली “मिलने के लिए त्यागना ही पड़ता है।”

फिर उसकी आँखे भर आयी

बहुत धीरे से कहाँ, “ तुम्हारे आलावा मुझे कुछ नहीं चाहिए, एम0ए0 में क्या रखा है।”

“सच कुछ नहीं रखा है।” देवन ने समर्थन किया।

“तुम्हारी इच्छा ही मेरी गति होगी।”

यह कह कर गीता वहाँ से डोल गयी। बैठक में चली आयी। रेडियो को बुझा दिया। भूली—भूली सी खडी रही।

जगी तब, देवन ने जब उसके दायेंक कंधे पर अपना हाथ रख दिया।

“लगता है तुम्हारे बिना मैं अस्तित्वहीन हो जाऊँगा।”

“मत ऐसी बातें करो।”

“जो सोचता हूँ, कहना पड़ता है !”

देवन आफिस चला गया। दिन ढलते-ढलते आया भी चली गयी। गीता पत्र लिखने बैठी ।

पहला पत्र उसने अपने पिताजी को लिखा, अपनी कुशलता, घर की शान्ति और सब व्यवस्थाओं की सूचना दी। अब वह एम0ए0, द्वितीय वर्ष की परीक्षा न देगी—इस भाव को जब वह पत्र के अन्त में लिखने लगी, उसका मन एकाएक बैठ गया। मन ने उसे अनावश्यक समझकर पीछे डाल दिया—विगत की सीमा में ।

दूसरा पत्र सरोज को लिखने बैठी। लिखते-लिखते वह पूर्व ग्रह से भर गयी। उसे पता न चला, लेकिन उसे प्रेरण से उसने पूरा पत्र समाप्त कर दिया।

पत्र दुहराने बैठी—एक बार दुहरा गयी। पुनः सोचने लगी। प्रच्छन्न रूप से सारे पत्र पर गीता की ओर से सरोज को चुनौती थी, जिस पर अनायास ही झुझलाहट के स्वर थे।

वह सब गीता की प्रकृति के विरुद्ध था। वह एक-एक पंक्ति काटने लगी और उसका मन अपनी अतुल गहनता से निर्णय करने लगा—‘देवन ने अपने परम मित्र ओम को छोड़ा ; जाओ सरोज, मैं तुझे छोड़ रही हूँ—ओम में मित्र के प्रति कुटिलता थी, तुम में मेरे ही प्रति नहीं, बल्कि समस्त विवाहिता स्त्री-वर्ग प्रति अनास्था और उसके भावों के प्रति अभिषाप है। इस सत्य को मैं अब यहाँ से बैठी-बैठी सोच रही हूँ। तू सषक्त है—लेकिन वह पुरुष का सौन्दर्य है, तेरा नहीं—आज शक्ति से मुझे विरक्ति हो रही है।’

धीरे-धीरे भाव की इन्ही रेखाओं को वह दूसरे पृष्ठ पर उतारने लगी। पृष्ठ भर गया, फिर उसे होष हुआ कि उसे यह नहीं चाहिए—जिससे मन अलग हट जाने के लिए कहता है, उस पर बुद्धि का प्रयोग क्या । अलग, तो माह क्या ? आसक्ति क्यों ?

कमरे से उठकर आँगन में आयी। देवन को सोचा, घूमकर घड़ी देखने गयी।

घड़ी के पास ही मेज पर उसकी दो अमूल्य स्मृतियाँ सँजोयी रखी थी—‘पिता ने मेरे ब्याह में सब कुछ दिया था, चलते समय यह ‘सत्यार्थ प्रकाश’ भी दिया था।

और माता जी का यह ‘रामचरित मानस !’

एक-एक को उसने उठाया, जैसे मन के तराजू पर वह तौलने लगी, दोनों के अपने अलग-अलग वनज थे, जब दोनों को उसने एक ही साथ उठा लिया, तब वनज भावों में बदल कर सूक्ष्म सा हो गया।

गीता अपने पिता जी और माता जी दुहारने लगी, कितना नैसर्गिक समन्वय है, श्रद्धा और क्रान्ति में हृदय और बुद्धि में। कहीं से वह समझोता भी नहीं एकान्त विष्वास है।

चौके से आया की आवाज आयी, “चूल्हे में फटे कागज कैसे पड़े है ?”

गीता पास चली गयी, “यूँ ही है, जला दो ।”

अँगीठी जली, चौका धूँ से भर गया , आँगन का छोटा से आकाश उसे समेटने लगा।

गीता कमरे में आ खड़ी हुई। आया भी पास खड़ी थी ; स्नेह से बोली, “अकेली तबीअत नहीं घबराती रानी बहू ?”

“आज तो बहुत घबरा रही थी ! ”

“भगवान जल्दी से ऑचल भर दे ! ” आया के स्वर में भक्ति थी। उसकी आँखे मुँद गयी थी।

गीता में कुछ दीप्त हो आया, फिर वह जैसे बोझिल हो गयीं अव्यक्त भर से आनत उसके मुख पर कुछ बरस सा गया।

वह लजाकर बोली, “तब क्या होगा ?”

“तब !... तब.....अकेलापन नहीं लेगा वही सम्मोहित सी खडी रही। मानो आया अब भी उसके सामने खडी है—कहती जा रही है, घर भर जायेगा, तुम एक से अनेक हो जाओगी, और सब अनेक मे केवल वही व्याप्त रहेगा—देवेन ! देवन !! देवन !!!

भरी सी गीता आँगन में गयी, हाथ मुँह धुला, अंजलि में पानी लिये तुलसी के बिरवे के पास आयी, उस पर चढा दिया और उसकी पत्तियो पर रूके हुए बूंदो को समेटकर उसने अपने कंड़े मे डाल दिया, आँखे सीच ली, माथे पर चढा लिया।

देवन आया। बहुत खुष था, जैसे गीता सामने पडी, उसने बाहुओ से उसे उठा लिया—कंठ ओठ, माथा, आँखे उसने सब चूम ली।”

“यह सब भीगा क्यों है ” उसने पूछा , “तुलसी की पत्ती जैसी सुगन्धि आ रही है —क्यों ?”

“मैं क्या जानू ! तुम्ही जानो ! ”

गीता ने अपना मुँह उसके अंक में छिपा लिया। यह अलको से खेलता रहा।

बोला, “अकेली तबीयत घबराती होगी।”

गीता जगी बैठी थी, लेकिन चुप थी।

देवन सलाह देने लगा, “बगल में मिसेज घोश के यहाँ चली जाया करो ; फिर वे लोक भी आने लगेगी। ”

“बिना किसी सम्बन्ध के आते—जाते संकोच होता है। ”गीता ने कहा।

“पडौसी तो है, और नजदीक लाने के लिए उन्हे एक दिन चाय पर, एक दिन खने पर बुला लिया जाये— बस ! ”

चाय पीकर दोनो मिसेज घोश के यहाँ गये। मिस्टर घोश को छोड, संयोगवष परिवार के सब थे—तीनो बडी लडकियाँ—प्रतिमा, वनश्री, रूपसी और तीनो छोटे लडके—रोनू, सोनू, दीपू भी।

स्वागत से मिसेज घोश ने उन्हे बैठाया। बहुत कहने—सुनने के उपरान्त उन्होने केवल चाय स्वीकार की, सो भी सुबह की चाय। षाम को उनके सब बच्चे एक साथ इकटठे नहीं हो पते थे—यह कठिनाई थी।

घोश परिवार की देवन के यहाँ सुबह चाय थी। षाम को ही सब तैयारी हो गयी थी। मिस्टर घोश रेलवे में सुपरिन्डेन्ट थे। अक्सर दौरे पर ही रहते थे। वे भी उसी रात, दस बजे तक आ गये।

आया चली गयी, ग्यारह से ऊपर का समय था। देवन गीता सोने जा रहे थे। उसी समय जीने में खुलने वाली किवाड पर किसी की बडी मद्धम सी आवजा आयी। किवाड खुली, मिसेज

घोष थी। ऑगन में चली आयी, समझाकर उन्होंने कहाँ, “सुबह की चाय पर हम लोग नहीं आ सकते। किसी और दिन हो जायेगा।”

“क्यों, क्या बात हो गयी?” गीता ने विस्मय से पूछा।

“मिस्टर घोष आ गये हैं।”

“तो क्या हुआ, “देवन ने कहा, “हम लोग उन्हें भी आमंत्रित करते हैं, यह तो और अच्छा हुआ”

“नहीं.....उन्हे इन बातों का पता न होना चाहिए—अजीब बुद्धि के आदमी हैं, वे फिर परसो एक हफ्ते के लिए चले जायेगे, तब हो जायगा।”

मिसेज घोष तेजी से मुडी, अपने दरवाजे के भीतर चली गयी। गीता हैरान खडी थी। देवन को हँसी आगयी, “लखनऊ में रहकर हर बात को सोचने की आदत ने डालो, यहाँ यह बीमारी करार दी जाती है।”

गीता का हाथ पकड़ देवन कमरे में चला गया। रोषनी बुझाने के पहले गीता ने पूछा, “नीचे लेडी डाक्टर से परिचय है कि नहीं!”

देवन ने कहा, “यहाँ परिचय होता नहीं, काम पडते ही कर लिया जाता है—क्यों?”

“उन्हे भी सुबह चाय पर बुला लो।”

“हो जायेगा!”

“उन्हे आमंत्रित तो कर दो!”

“समझो हो गया, वे सुबह तुम्हे चाय पर मिल जायँगी, बस.....तो जाओ!”

गीता को सच, सुबह चाय पर लेडी डाक्टर —मिसेज पाल सिंह मिल गयी। प्रातः पचास साल की उमर थी, पर स्वभाव कुमारियों सा था। हँसती न थी, सिर्फ मुस्कारती थी, जैसे बचपन से आज तक कभी हँसी नहीं हैं।

तभी रोहू मछली की तरह बहुत छोटा सा मुहँ रह गया था। लेकिन मुई प्रकृति ने ओठ मोटा बना छोडा था, संसार की कोई ऐसी लिपिस्टिक न थी जो उनके ओठों पर न फैल जाती हो। तंग आकर पिछले तीन वर्षों से पान खाने लगी थी।

चाय पर बातों-बातों में उनके मुँह से निकल पडा, “जिस दिन कोर्ट में हमारा डाईवोर्स हुआ था, उसी दिन से मैं पान खाने लगी हूँ।”

देवन तो उनकी बातों में भाग लेता रहा। पर गीता चुप थी, उसे बस, सुनने को ही मिला—कि चारों ओर संघर्ष और गिरानी है। इस सब का कारण—देष की रोज बढ़ती हुई आबादी है। अगर इसको न रोका गया तो हमारी सरकार डूब जायेगी। इसका सबसे सरल तरीका है, आज से अगले पाँच वर्षों तक, देश में एक भी बच्चा पैदा होने दिया जाये।

गीता ने दूसरे दिन पता लगाया, तीसरे और चौथे दिन भी मिस्टर घोष घर ही पर थे। सारा वातावरण सन्नाटे से खिचा रहता था।

उस शाम को गीता और देवन एक पिकचर देखने चले गये, काफी रात को लौटे, खाना भी बाहर ही खाया।

जीने से ऊपर चढ़े, तो घोश बाबू के यहाँ से कई आवाजों से मिली हुई एक चिल्लाहट सुनाई पड़ी।

ऊपर आकर दोनो ने देखा, मकान में चारो ओर प्रकाश था, आँगन में अकेले मिस्टर घोश बहुत ही इतमीनान से टहल रहे थे। रोती हुई आवाजें षायद भीतर से आ रही थी।

गीता को वही रोककर, देवन तेजी से उनके आँगन में चला गया। वह जब तक पास जाकर कुछ पूछे, मिस्टर घोश की दृष्टि उन पर पड़ी, वे पागलो की तरह चीख उठे, “चले जाओ यहाँ से ! चले जाओ ! भागो.....निकल जाओ। ”

उल्टे पाँच, देवन चुपचाप लौट आया। अपने यहाँ की सब बत्तियाँ जला दी। दोनो ने कपडे बदले। निस्तब्ध बड़ी देर तक बैठे रहे। लेटने तक की न हिम्मत हो रही थी। समूचा वातावरण रूदन और चीख से रूँधा जा रहा था।

एकाएक जीने की बन्द किवाड पर किसी ने दस्तक दी। किवाड खुली, मिस्टर घोश पागलो की सी गम्भीरता किये आँगन में चले आये। कई क्षण तक टहलते रहे।

पस आकर नम्रता से बोले, “मै क्षमा चाहता हूँ।”

यह कहकर फिर उसी तरह कुछ क्षणो तक टहलते रहे। फिर बोले, “मेरे सब बच्चे यह समझ कर रो रहे है कि उनकी माँ मर गयी, पर वह मरी नहीं है। उसे हिस्टीरिया का दोडा है, और वह दौडा मेरे नाते हे।”

यह कहते-कहते वे चुप हो गये, दरवाजे की ओर बढ़े, रूक गये, लौटकर कहने लगे, “मै जब भी, दो दिनो से ज्यादा इसके पास रह गया हूँ, इसे यह रोग हो जाता है। इसे मैने अब समझा है— प्रातः चला जाऊँगा।”

यह कह कर वे रो पडे।

गीता देवन चुप खडे थे।

विनय स्वर में उन्होंने कहा, “कृपा कर आप मेरी पत्नी के पास जाइये, उसके कान में यह जोर से कह दीजिये कि घोश बाबू चले गये।”

देवन के साथ गीता भी गयी। अचेत मिसेज घोश को घेरे सब बच्चे रो रहे थे। बढ कर देवन उनके कान पर झुक गया, जोर से उसने कह दिया—‘घोश बाबू चले गये।’

उन में सहसा गति आयी। षरीर भर में कंपन हुई, और कुछ ही क्षणो बाद उन्होंने आँखे खोल दी।

चाय तो बहुत पीछे आयी, पर उसके बहुत पहले गीता मिसेज घोश की परस्पर मित्रता हो चली। केष श्रृगार आदि के बाद वह अक्सर दोपहरी मे गीता के पास चली आया करती । पर बहुत देर तक एक स्थान पर नहीं बैठ पाती थी। उठकर वार-वार टहलने लगती थी।

करती थी, कमरे मै मेरा दम घुटने लगता है।’

‘बैठे-बैठे पैर सूजने लगते है।’

तभी वह प्रायः रोज बाजार जाया करती थी। वहाँ से सारा सामान स्वयं लाती थी। जिस दिन घर से बाहर निकलने का कोई भी धंधा न रहता था, उस दिन वह दूध, अंडा और मछली,

साग भाजी वालो में से किसी एक के यहाँ कवेल यह कहने जाती थी कि 'कल का सौदा अच्छा था, आज का सौदा बुरा था।

एक दिन गीता को अपने साथ बाजार ले जाने के लिए वह बहुत आग्रह करती रही। पहले तो गीता क्षमा माँगती रही, फिर उसने तर्क दिया, "दोपहर को क्या बाजार में घूमना ! "उन्होंने बताया, "घर वाली स्त्रियों को दुपहरी ही में घूमना चाहिये, उस समय सड़को पर आँख फोड़कर अवलोकन, वाले पुरुष नहीं होते हैं। मैं संध्या को निकल जाऊँ तो दषा ही और हो जाती है। यहाँ की संध्या तो और भौंति की स्त्रियों के लिए है। मैं तो पुरुष की दृष्टि से डरती हूँ।"

गीता न असमर्थता प्रकट की, "बिना उनके।"

मिसेज घोश ने बहुत डॉटा, "इस भौंति पति का दास मत बनो, जीवन वृथा हो जायेगा। मुझे अवलोको न, इतनी ही आयु में मुझे आठ बच्चे हो गये—छः जीवित हैं, दो जन्मते ही दिवंगत हो गये। स्पष्ट कहती हूँ, मेरी मानो नहीं तो पछताओगी।"

उस दिन गीता उनके साथ बाजार घूम आयी।

एक दिन वह और गयी।

कपड़े की बहुत बड़ी दुकान थी। वही से मिसेज घोश को एक साडी खरीदनी थी। अनेक तरह की उन्होंने साडियाँ, देखी पूरे घन्टे दुकानदार को फँसा रक्खा था, अन्त में बिना कोई साडी लिए हुए वह लौटने लगी। गीता संकोच से दब गयी। विनय के स्वर में बोली, 'खरीद लीजिए।'

मुस्करा कर लौटी और एक साडी बाँधने की आज्ञा दे दी।

उसी बची दुकान में चित्रा के साथ ओम प्रविष्ट हुआ। सब की दृष्टियाँ एक-एक के साथ मिल गयी—लोग अपने-अपने के बाँधते ही रह गये।

साथ ही साथ न जाने क्यों गीता के अभिवादन में चित्रा के हाथ भी बँधे। अवष्य गीता चित्रा से खिच गयी। पर उसने अपने को ऐसा सिद्ध किया, जैसे ओम वहाँ था ही नहीं।

लेकिन ओमे ने तत्काल यह सिद्ध किया कि वह वहाँ था। झपट कर गीता चित्रा के बीच जा खडा हुआ और आग्नेय दृष्टि से उसने चित्रा की ओर देखा।

स्वर को घिसते हुए बोला, "होष में रहो।"

सब चुप रह गये, पर मिसेज घोश बरस पडी, "सभ्यता सीखो जी, मनुश्य की भौंति रहो।"

गीता को लिए हुए वह दुकान से बाहर निकल गयी।

इस घटना का आभास न होने दिया। वह सहज रूप से उनके साथ अपने घर चली आयी।

षाम को देवन से उसने सब कह दिया। यह भी कहा कि देवन, मझे तुम भी डॉटो। बिना तुम्हारी आज्ञा के मैं बाजार गयी थी। पर देवन ने उस सब का कोई मूल्य ही न दिया, उसके मन को एक बार यह अवष्य लगा कि चित्रा ने उसका भी अभिवादन किया है।

छूसरे दिन किसी त्योहार की छुट्टी थी और उसके अगले दिन इतवार पडता थ। सुबह चाय पर बैठे हुए वे दोनो छुट्टी मनाने के लिए कुछ प्रोग्राम बना रहे थे, उसी बीच

अमीनाबाद से पिता जी की चिटठी लिए हुए उनका एक आदमी आया। अनेक घर , षाम को कोई पूजा थी, उसी मे सम्मिलित होने के लिए उन्होने गीता-देवन को बुला रखा था।

वहाँ जाने के लिए देवन की कोई इच्छा न थी। इसे बिना प्रकट किये, उसने गीता की राय ली। गीता जाने के लिए तैयार बैठी थी। उसने देवन को यह कह कर राजी कर लिय चाहे जो हो वह पिता का घर है, मनुश्य जहाँ जन्म लेता है, उसके प्रति अपार मर्यादा होती है। फिर पिता की इतनी छोटी सी इच्छा अगर हम लोग पूरी न कर सकेगे तो हमे अपनी गृहस्थी के लिए आषीर्वाद कहाँ मिलेगा ?

अमीनाबाद के लिए रिक्षे पर चढते समय, गीता ने लजाते हुए देवन से फिर कहाँ, "बनारस से यहाँ आने के पहले माता जी ने मेरी गॉठ बाँधकर कहा था, "अपने को बाँध कर रखना, ऊपर अपने से बडे हो नीचे स्नेह पाने वाले हो, बीच मे तुम हो—धरती भी भाँति अचल, उसी पर पति खडा हो गम्भीर आकाष की तरह।"

सन्ध्या थी। पूजा में बहुत से परिवार आमंत्रित थें। आर्यादादा का भी परिवार सम्मिलित था।

पूजा के उपरान्त षाम का भोजन भी देवन-गीता को वही करना था। सन्ध्या से आरम्भ होकर पूजा एक घंटे रात तक चलती रही। पूजा क्या थी —एक मनौती थी। षीतलराया जी की धर्मपत्नी ने इसे मान रखा था। क्यो, किस लिये मान रखा था, इसे षीतलराय भी नही जान सके थे।

पूजा के उपरान्त सब परिवार अपने-अपने घर चले गये। आर्यादादा की पत्नी और उनकी दो बेटियाँ —करुणा रूक गयी थी। अरुणा आठ साल की थी। करुण दस की।

सब लोग फर्ष पर बैठे भोजन कर रहे थे। साथ थे, केवल मिसेज षीतलराय न थी। बातो के अनेक क्रम चल रहे थे।

उसी बीच अरुणा ने, आर्यादादा से कहा—

"ददा, मैने आज मनौती की है, मै पास हो जाऊँगी तो यही पूजा करूँगी।"

सब हँस पडे। करुणा ने अरुणा को घूर कर रेखा।

अरुणा कह उठी, "घूरती क्यो हो, चाची जी ने भी तो मनौती की थी। कि देवन जब इस घर से निकल जाएगा तब.....।"

करुणा ने उसी क्षण करुणा के मुँह पर झपड मार दिया। वह चीख पडी। सब के चलते हुए मुँह बन्द हो गये, जैसे सब के मुख पर किसी ने आग रख दी हो।

गीता उसी दम सूख-सी गयी। उसने भरी हुई दृष्टि से देवन की ओर देखा। उसने सर झुका लिया था।

पर जब उसने सर उठाया और उसकी आहत दृष्टि गीता से मिली, वह इस तरह कँप गयी, जैसे अग्नि में स्वर्ण।

घर पहुँच कर देवन ने मुस्करा कर कहा, "हाँ गीता फिर एक बार बताओ, गॉठ बाँधकर तुम्हारी माताजी ने क्या कहा था?"

गीता निस्पन्द थी।

“यही कहा था न, कि अपने को बाँधकर रखना, ऊपर अपने से बड़े हो, नीचे स्नेह पानेवाले हो—यही न,—कि मैं भूल रहा हूँ ?”

अभियोगी की तरह गीता सर झुकाये चुप थी।

देवन भी बड़ी देर तक मौन रहा। एक ही स्थान पर खड़ा रहा—गीता के बिल्कूल समीप। फिर टहलने लगा—टहलते—टहलते बोला, “ उपदेश—ऊँची बातें अपनी जगह है, जीवन से बहुत ऊपर उठे हुए जीवन नीचे है, उसके अनुभव और भी नीचे गर्त में है। विचारों में जीवन सर्वत्र महान है, पर अपने अनुभवों में यह उतना ही छोटा, निम्न और कुरूप है। इसीलिए मुझे छोटापन निम्नता और कुरूपता प्रिया है, क्योंकि यही हमें जिलाते है।”

कुछ क्षण चुप होकर वह फिर बोला, “किसी के भी विचारों, उपदेशों को अपने पर लाद कर न चलो, अकेले चलो, तब बहुत ही षीघ्र आगे बढ़ जाओगी। तुम लखनऊ में हो पर आज तुमने देख दिया कि तुम अभी कहाँ बँधी बैठी हो ! बनारस में—वह भी एक गली के एक घर की चाहर दीवारी में।”

क्षण भर तक, गीता देवन को देखती रही, फिर उसने सर झुका लिया। उस की ऊपर उठी हुई दृष्टि में प्रणति थी, आश्वासन था, क्षमा थी। देवन ने उसे पहचाना नहीं। अतः वह चुप न हुआ—आहत, बोलता रहा, चुप तब हुआ, जब देखा निःषब्द गीता रो रही है।

छोनों दिन की छुट्टियाँ इतनी बुरी बीती, जैसे वे बहुत पहले से षापित थी। यद्यपि उसे सुखी बनाने के लिए देवन ने बहुत प्रयत्न किया। गीता के साथ वह बाहर ही बाहर रहा—कभी काफी हाउस, कभी पिक्चर। पेश समय उन्होंने पार्क और चौड़ी सड़कों पर घूम कर बिता दिया।

आया एक दिन बीमार पड़ गयी। गीता ने होटल में भोजन करने का सविनय विरोध किया। वह सफल हुई, और वह अपने चौके की रानी बन गयी। दोनों ने अनुभव किया — उस राज भोजन अतिषय स्वादिष्ट था। यह क्रम दो दिनों तक चलता रहा। गीता बेहद संतुष्ट थी। उत्साह और प्रसन्नता से वह फूलों न समाती थी। तीसरे दिन आया की बड़ी लडकी, गोविन्दी काम करने आयी। गीता ने उससे सब काम कराया, लेकिन चौके में उसके पाँव न पड़ने दिये।

गीता को अपना क्षेत्र मिल गया। अब उसने मिसेज घोश के पूरे परिवार को भोजन पर बुलाया, एक बार नहीं दो—दो बार। आर्यादादा का भी परिवार आमंत्रित हुआ। गृहस्थी में एक ऐसा जीवन आया, जिसे वे ‘डी हेविन’ के प्लैट कभी स्वप्न नहीं देख सकते थे। गीता की स्त्री, जैसे अब तक कहीं बँधी थी असहज स्थिति में —अब उसे मानो अपनी समस्त सहज स्थितियाँ मिल गयी। उसका पत्नीत्व अपना श्रृंगार पा गया।

एक दिन सुबह जब गोविन्दी आयी, गीता को वह रोती हुई मिली उसकी माँ को मियी बुखार हो गया था।

दोपहर को गोविन्दी के साथ वह आया को देखने गयी। जिस कमरे में वह पडी थी, वह किसी साहब का मोटर खाना था। बहुत तेज बुखार था। आँखे बन्द थी, गीता ने जब उसे पुकारा, वह थोड़ी सी आँखे उभार कर भी न देख सकी, अविरल मूक आँसू झरते रहे।

स्वयं जाकर डाक्टर बुला लायी और उसकी दवा शुरू करा दी। लेकिन एक समस्या वहाँ और भी विकराल थी। दस साल की गोविन्दी के कंधों पर सब दायित्व था, वह उसे निभाने में लगी भी थी। उससे छोटा, आठ साल का किष्णु सब समझता था, लेकिन उसे कुछ जैसे समझता ही न था। उससे छोटा पाँच साल का मुन्नु और तीन साल का हरिड़वा पागल से बन रहे थे। हरदम रोते, माँ की खाट से लिपटे रहते और आपस में मार-पीट करते थे।

दिसम्बर में पन्द्रह ही दिन बीते थे। गीता ने पूरे महीने का वेतन इस रूपये और कुल तीस रूपये आया से सहेजकर गोविन्दी को सौंप दिये।

मिसेज घोश की महरी से गीता अपने वर्तन मलवा लिया करती थी। ट्रेडिंग कम्पनी का चपरासी बाजार से गृहस्थी का सामान ला दिया करता था। पेश, सारा कार्य वह गीता गुनगुनाती हुई कर डालती थी।

लेकिन देवन इससे सहमत न था। वह नयी आया या किसी नौकर के पक्ष में था।

एक दिन, गीता ने हँसते-हसते कहा, "अब मुझे अकेलापन नहीं लगता, अब मुझे मिसेज घोश की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। सारी गृहस्थी तुम्हारे लिए है, इस तरह तुम हरदम जैसे मेरे साथ रहते है।"

"मैं यही तो नहीं चाहता, कि गृहस्थी में तुम खो जाओ, तुम्हारा मूल्य इससे बहुत ऊपर है।"

गीता चुप रही।

वह कहता गया, "तुम एक साथी की भँति सदा मेरे साथ रहने के लिए हो। ट्रेडिंग कम्पनी मुझे चार घंटे तुम से अलग रखती है, अब तुम्हारी यह गृहस्थी तुम्हें और न जाने कितने घंटों अलग रखेगी।"

गीता धीरे से बोली, "हमारी आया जल्द ठीक हो जायेगी।"

"षहर में आया एक नहीं होती ; अनेक होती है; जिसे पैसा दिया वही आया बन गयी। चाहो तो कल दूसरी आ जायेगी।"

"इतने दिनों से उसका हमारी गृहस्थी से सम्बन्ध रहा है।"

देवन मुस्कराया, "सम्बन्धों में अपने को बाँध देना, सदा बँधे रहना, ये पुराने दृष्टिकोण है गीता"

कुछ देर चुप रहने के बाद देवन ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "पुराने संस्कारों से नये जीवन का मेल नहीं हो सकता। किसी को जरूर बदलना होगा।"

गीता ने सब मान लिया, समझौते के रूप में नहीं, भक्ति रूप में। रात को देवन बहुत प्रसन्न था। उल्लास से भरा था।

बातों-बातों में बड़ी रात बीत गयी। दोनों अपने-अपने में ही नहीं एक दूसरे में खो गये, थे और उसकी एकात्म स्थिति में उनका भावलोक उत्तर आया था।

देवन ने कहा, "तुम्हें आगे बढ़ा देने के लिए मैं योग नहीं दूंगा। बल्कि स्वयं योग बन जाऊँगा।"

"मैं 'तुम' जो हो 'तुम' जी हूँ।" गीता ने जैसे गीत की कोई पंक्ति दुहरा दी।

देवन कहता गया, "नयी कार होगी, नये ढग के तुम कपडे पहनोगी, सारा 'मेकअप' और होगा। दिनचर्या और होगी। "एकाएक गीता ने उसके भाव-तप्त मुख पर अपनी पीतल हथेली रख दी—"तब तो मैं चित्रा की भाँति लगने लगूँगी।"

देवन कुछ बोला नहीं। बड़ी देर तक गीता उसके कुछ बोलने की प्रतीक्षा कर रही थी। दबे स्वर से बोली—“जिससे आकर्षित होकर, जिसे बिल्कूल नया, मौलिक समझ कर तुमने अपना सुहागिन बनाया, वह, सब तो नहीं था। वह तो कुछ और था।”

देवन हँस पड़ा, “था, अब भी है और सदा रहेगा।”

दोनों चुप हो गये। गीता की साँसों में एक अव्यक्त दबाव बढ़ता जा रहा था।

सहसा गीता का बाँध टूटा, “मेरा बाधा चित्रा सा हो, भीतर में गीता बनी रहूँ।”

प्रसन्नता से देवन सिहर गया, “चित्रा से भी आगे उससे भी नवीन मौलिक।” उल्लास से वह उठ बैठा। “तुम ने मुझे ने बाँध लिया गीता।”

जब देवन के भावों का उद्गार थमने लगा, गीता ने प्रणति-स्वर से कहा, “मैं अपने भीतर की एक सीमा हूँ देवन ! मैं और वह सीमा मेरा सारा स्वत्व तुम्हें समर्पित है उसे तुम चाहे जो बना लो, वह बन जाएगा— पर उसकी सदा यही सीमा रहेगी, वह बाहर-भीतर दो नहीं बन सकता।”

जिन उठे हुए भावों को वह बाँध न सकी उसकी आँखों में उत्तर आये।

“घबराओ नहीं, वह मुझ पर है। मैं तुम्हें सुलझा लूँगा—तुम्हारी सीमाओं में भी आकर्षण है—तुम्हें खोलकर समझने की जिज्ञासा, तुम्हें लेकर आगे बढ़ने का उत्साह।” गीता ने अपना सर देवन के वक्ष पर रख दिया। उरे हुए षिषु की तरह वह बोली, “बाहर के द्वन्द्व से मेरे भीतर की हत्या न हो जाए।

“यह क्षणिक निर्बलता है, बस।”

“पर सत्य है।”

अनेक क्षणों तक देवन अपने में कुछ बुनता रहा—बोला —“उदाहरण के लिए चित्रा का नाम तुमने लिया, पायद उसी से तुम इतना डर भी गयी।”

“चित्रा से नहीं, उसके स्वरूप और विधान से।”

“तब मैं तुम्हारी ही उदाहरण दूँगा, “देवन आष्वस्त स्तर से बोला, “तुम्हारे भीतर का सौन्दर्य, मौलिक है, अपूर्व है, उसी की अनुरूपता बाहर मिल जायेगी। अब ठीक है न।.....ठीक।”

गीता मौन रही फिर बोली, “एक बात कहूँ, क्षमा करोगें। मेरा सौन्दर्य तुम्हारे देखने के लिए है, संसार के लिए नहीं।”

देवन ढीला पड़ रहा। म नहीं मन कुछ पी कर रह गया। केवल इतना ही वह बोला, “तुम तो तर्क करती हो” फिर उस ने मुँह ढक लिया।

गीता बुलाती हार गयी, पर वह बोला नहीं। प्रायः आधे घन्टे तक वह निष्चेष्ट बैठी रही—बिल्कूल सूनी—सूनी। मन मस्तिष्क में कुछ भी न आ—जा रहा था।

वह रोषनी बुझाने उठी। न जाने क्या उस के मन में आया। झुक कर उस ने चुपके से देवन का मुँह खोला। वह सो गया था। गीता का मन संतुष्ट हो गया।

सोते हुए देवन को वह बहुत देर तक देखती रह। उस के मन को स्पष्ट हो गया कि वह द्वन्द्व बाहरी था, उसकी जड़ कहीं भीतर नहीं जा सकी है।

“देवन, तू मेरी परीक्षा ले रहा था।”

गीता ने स्फुट-स्वर में कहा। धीरे से उसका सर ढक दिया। पायताने गयी, चरण छुए। आर बोझ उतर गया।

उस गृहस्थी में जो नयी आया थी, वह मूल लखनऊ की रहने वाली थी। पैतीस में पडी थी। हाथ धोने-पोछने के लिए उस को साबुन-तौलिया देना पडा था। उमर से ज्यादा से ज्यादा तीस वर्ष की थी, बच्चे एक भी न थे, घरवाला तीसरा था। जाति की टकुराइन बताती थी।

षाम के तीन से ज्यादा बज रह थे। हाथ की मषीन पर गीता अपने दो ब्लाउज सिल रही थी। आया नास्ते की तैयारी में लगी थी।

एक ब्लाउज में बटन टॉक कर गीता कमरे में गयी। ब्लाउज पर उस के मेल की साडी पहन कर खवह ऑन में लौटी। न जाने क्या आहट हुई, वह ऑगन को पार कर सड़क की ओर देखने लगी।

तब तक आया बोली, “बहूजी, आप अपने कपड़े खुद सिल लेती है?”

“क्यों ?” गीता ने घबरा कर पूछा।

तपाक से वह बोली, “एक बार ‘गंज में सिलवाये, तब देखिये।”

गीता हैरान सी खडी थी।

“यहाँ तो अपने हाथ से सिर्फ बच्चो के कपडे सिले जाते हैं, वह भी बहुत कम।” बोलती हुई आया रसोई घर में चली गयी। गीता की इच्छा हुई कि वह बाहर से उस कमरे में कूडी चढा दे। तब तक वह बाहर निकल आयी।

ऑगन में दृष्टि घुमाती हुई बोली, “गमले में तुलसी का पेड मैंने की न देखा था। तुलसी का पौधा !..... बहू जी ; साहब से कहिये, आज कल गमलो में कोटन, स्वीटपीज, बरवीन्स बगेरह लगवा दे।”

गीता अपने कमरे में जा खडी हुई। ये नाम है, देखने को कौन कहे, मैंने इन्हे सुना तक नहीं,।

देवन आया। गीता बहुत उदास थी, पर उसे वह बहुत ही सावधानी से दबाती जा रही थी। देवन ने उधर बहुत ध्यान भी न दिया। वह अपने में भूला था।

एक घटना हुई थी।

देवन कम्पनी में आडीटर आया था। उसे लिए हुए वह पुराने काफी हाउस में गया। उसका मनोरंजन किया और उसे विदा देकर वह वही बैठे-बैठे सिगरेट खत्म करने लगा।

उसी बीच देखा, ज्ञानी कपूर के साथ, उसी की कार से उतर कर चित्रा आ रही थी।

कँपकर सिकुड-सा गया। दृष्टि नीचे गाड़ ली। जगहें और भी थी, पर ज्ञानी उसे लिए हुए इसी के पास आ बैठा। ज्ञानी हमउमर था, ओम-देवन का दोस्त था। हजरतगंज में, उसकी कपड़े की सब से सुन्दर दुकान थी। पर केवल व्यक्ति के आधार पर - और मूलतः ‘सटरडे क्लब’ के मंत्री के रूप में मैं वह इन सब को दोस्त था।

तो अदब से वह देवन के पास आ बैठा । देवन का सर अब भी नीचे गढा था। ज्ञानी ने कंधे पर हाथ रख दिया। फिर बनावटी चौक से उसने सर उठाया। चित्रा खडी थी ।—मूर्तिवत — सफेद 'सूट' में 'षो केष' में कोई औरत खडी हो।

देवन घबरा—सा गया। उठ खडा हुआ, अवष उसके दोनो हाथ चित्रा के स्वागत के लिए उठे। हाथ जैसे उसके शरीर से अलग थे, देवन ने उन्हे बाँध लिया, बाँधे ही उन्हे पैट में डाल लिया। और उनकी अँगुलियों को तोडने लगा।

देवन को भरी आँख से देखकर चित्रा ने दृष्टि गिरा ली, और उसी गति मे वह बैठ गयी।

तब, एक देवन को बैठना पडा, पर जैसे दूसरा देवन भाग निकला—इतनी कातरता से भागा कि बाहर सडक पर आते—आते उस का दम बैठने लगा।

ज्ञानी को कुछ भी न लगा। उसने देवन का हाथ पकड कर सहज ढंग से कहा, "ऊपर चलोगे !..... "कहते—कहते उठ पडा, चित्रा को भी उठा लिया, "ऊपर कुछ "प्राइवेसी" रहेगी।"

यह, जो डर कर सडक पर भाग गया था, फिर अपने मूल देवन में आ मिला। तीनो ऊपर गये, पीछे—पीछे 'बैरा' चढा।

बैठने से तीनो त्रिभुजाकार हो गये।

देवन किसी ओर भी दृष्टि करता, चित्रा सामने पडती। अवष उसने सर झुका लिया। काफी आयी, पी भी जाने लगी, पर देवन अब तक निश्क्रिय रहा।

और चित्रा ?

अब तक उसके मुँह से एक षब्द तक न फूटा। केवल ज्ञानी अपने सहज ढंग से बोलता रहा और जब बहुत आवष्यक हो जाता तो अल्प स्वर में कुछ देवन भी कह लेता।

ज्ञानी को आश्चर्य हुआ, उसने पूछा, "अर!यह क्या बात है, तुम लोग इस तरह चुप क्यों हो?"

फिर भी दोनो चुप थे।

ज्ञानी को वस्तु—स्थिति स्पष्ट सी होनी लगी, "तो यह बात है ! "

"नही , नही, कोई बात नहीं ! "देवन ने कहा और वह उठ पडा, "मुझे जाना है।"

बात के साथ ही वह नीचे उतर गया—एक बार घूम कर देखा तक नहीं।

ज्ञानी ने अपना प्याला खत्म कर दिया। चित्रा की 'काफी' ठंडी हो गयी।

ज्ञानी ने कहा, "दूसरी लो।"

आज उसने सर हिलाया और जैसे एक ही घूट मे वह सारी पी गयी। ज्ञानी अतुल जिज्ञासा और विसमय से पूछता जा रहा था—"क्या बात है ? कुछ हुआ है क्या ? कैसी बात है ? मुझे भी बताओ ! "

प्याले को रख कर चित्रा ने अत्यन्त सरलता से कहा—"कोई बात तो नहीं !.....यही हो सकता है कि इस समय मुझे तुम्हारे साथ देख कर उनका मूड सहसा कुछ बिगड गया हो।"

"ताज्जुब है, "कुछ देर तक विस्मय में उस के ओठ खुले रहे, बोला , "हो सकता है, इधर कुछ बदला — बदला सा लगता है, क्लब तो उस ने छोड ही दिया, दिखता भी कम है।"

चित्रा मुस्करा कर रह गयी।

ज्ञानी ने कहा, "बीबी की षायरी में लगा रहता होगा।वैसे बीबी तो उसे खासी हसीन मिली है। - पर कुछ झेपू-सी है। क्या ख्याल है?"

"मुझे तो सब तरह से बहुत अच्छी लगी। "चित्रा ने कहा और उस के माथे पर पसीना आ गया। उसे सुखती हुई बोली, "अब मैं घर जाऊँगी।"

कुर्सी पर अपना पर्स भूल कर वह नीचे उतर आयी। कार पर बैठते-बैठते उसे सुधि हुई।

अपनी इस ज्ञात घटना की देवन ने गीता से कहा। पर जो उसे अज्ञात थी-न रह गया। जब ज्ञानी ने कारण पूछा तो चित्रा ने यह बताया होगा -कि देवन अपनी पत्नी गीता के सम्बन्ध की पवित्रता के आगे दुनिया के सारे सम्बन्धों को हेय समझता है। तब ज्ञानी ने हँसकर कहा होगा-यह मजाक है।

गीता ने कुछ ग्रहण न किया, लेकिन नयी आया की बातें उसके मन से न हट रही थी, जैसे जम गयी थी। देवन को भी उसने कुछ न बताया। बताने को कुछ था भी नहीं। उसमें तो कुछ मूक अनुभव के स्वर थे।

दोपहर को वह अपनी पुरानी आया के पास गयी। पूर इक्कीसवे दिन उसे ज्वर उतर गया था। पीली हो गयी। थी-लगती थी जैसे अस्सी वर्ष की वृद्धा हो। मिटटी, राख, कालिख से उसके सब बच्चे पट से गये थे। गोविन्दी की दोनों आँखें आ गयी थी। हरिइवा की दायी बाँह में मुन्नू ने दाँत से काट रखा था, वह पक गया था। किषुनवा ने तीन दिन पहले, मोड की छोटी दुकान से एक बंडल बीडी चुरा ली थी, गोविन्दी ने उसकी नंगी पीठ पर इतनी जोर की छडी मारी थी कि वह हिस्सा अब तक नीला पडा था।

गीता जब आया के घर पहुँची, उस समय गोविन्दी आँख दर्द से बाहर खडी चुपचाप रो रही थी। भीतर की खाट के पैताने किषुनवा सो गया था। हरिइवा उसके पास पडा-पडा रो रहा था।

गीता को देखते ही आया खाट से उठने लगी, उठ न सकी, गिर पडी। गीता उसे सम्हाले झुकी रही।

आया धीरे-धीरे बातें कर रही थी, पर उसकी आँखें बडी तेजी से जैसे पिघलती जा रही थी। गीता ने उसे यह न बताया कि उसकी गृहस्थी में नयी आया आयी है।।

गोविन्दी, किषुन ओर हरिइवा को डाक्टर के पास दिखा कर वह आया के यहाँ न लौटी, सीधे अपने घर चली आयी।

उसे चित्रा याद आयी, देवन की सुधि हुई, नयी आया का ध्यान हो आया। उस का मन निर्णय करने लगा। वह कभी अब आया के घर न आयेगी। उस के वे बच्चे गोविन्दी की वे आँखें, आया का वह पीला सा मरा सा मुख-ये सब हैं-रहा करे मुझ ही से क्यो ? ये मुझे क्यो पीछे खींचते हैं ?

आया आयेगी तो मैं स्पष्ट कह दूगी कि मैनी नयी आया रख ली है-विवष थी-विवष क्यो, वैसे ही, जैसे देवन कहता है, जिसे ही पैसे दिये -वही आया हो गयी-अपनी आवश्यकता, पैसे सब कुछ पेश कुछ नहीं।

दूसरे दिन षनिवार था, उस दिन देवन ने बड़े मनोयोग से कहा —“कल लखनऊ का ‘पलवर षो’ है—देखने चलेंगे।”

गीता बहुत प्रसन्न थी। दौड़ी अपना वक्स ले आयी, खोल कर देवन के सामने रख दिया—

“पसन्द कर लो हॉ, मै वही पहनूंगी।”

छेवन ने पसन्द कर दिया।

“कहो तो अभी पहन कर दिखा दू।”

देवन की आँखों में झाकती हुई वह अपने कमरे में दौड़ गयी। देवन आँगन में खड़ा गुनगुनाता रहा। उसी क्षण मिसेज घोश आयी। एक क्षण देवन के सामने खड़ी हुई, फिर सीधे गीता के पास चली गयी।

हँसती हुई लौटी और गद्गद् स्वर से बोली, “बधाई देती हूँ।”

देवन सामने आ खड़ा हुआ। प्रसन्नता से कुछ बोल न सका, आँखों में ‘क्यों’ पीछे की जिज्ञासा अवष्य झाँक गयी।

“पहले मुँह मीठा करो, तब बताऊँगी।”

“तय रहा।”

क्षण भर तक मिसेज घोश के मुख पर कौतूहल था, लजाती हुई बोली, “बहू की गोद भर रही है।”

आह्लाद से देवन भर गया। अपने आप उसके पैर गीता के कमरे की ओर मुड़े। साडी पहन कर गीता कमरे से बाहर ही निकल रही थी, “देवन पर नजर पडते ही इधर उसके पैर भीतर ही थम गये।

गीता को बाहँ से पकड़े हुए वह आँगन में लोटा। गीता लज्जा के भार से झुक गयी थी।

आँख छिपाये वह कमरे में भाग गयी। मिसेज घोश बोली—“उसे क्या मालूम ! अभी दो ही महीने का तो है।”

देवन स्वयं भागा बाजार गया, फल, नमकीन, मिठाइयाँ सब ढेर सा लाद लाया। मिसेज घोश के परिवार की दावत हुई।

गीता देवन को मिसेज घोश ने भी दावत दी। बनश्री का नृत्य हुआ, प्रतिभा ने सितार बजाया और रूपसी ने फिल्म के कई संगीत सुनाये।

दूसरा सप्ताह।

एक षाम दोनो विक्टोरिया पार्क में गये। विनोद से टहलते हुए दोनो ने उस षाम को रात बना दी।

ऊपर से ठंड बरस रही थी। पार्क के चारों ओर बारीक कुहरे ने षहर के धुएँ को पकड रखा था। और हजरतगंज का कोलाहल धुएँ की उन असंख्या मिली हुई रेखाओं से ऊपर चढ कर प्रतिध्वनि सा लग रहा था।

लेकिन पार्क के गीता देवन पर किसी का प्रभाव न था, दोनो स्वयं एक—दूसरे से बँधे घूम रहे थे।

कुछ सोचती-सोचती गीता खड़ी हो गयी। देवन को दायें हाथ से पकड सम-सवर से बोली-

“तुम से मैं अपने मन का एक पाप कहूँगी।”

देवन चुप था, पूर्ण संतुष्ट सा।

“न जाने क्यों एक बार मेरे मन यह आया था कि षायद मेरे अंक भरने की खबर से तुम बहुत खुष न होगें।”

“क्यों ?” उस ने बच्चो की सी सरलता प्रकट की।

“मुझे नये स्तर पर लाने के ओठो पर फैलती रही। देवन सच्चे उत्साहर ने उस में जीवन डाल दिया। श्रद्धा से वह सरावोर हो गयी। भरी आँखो से कहने लगी, “तुम इतने प्रसन्न, इतने संतुष्ट हो कि मेरे मन का वह क्षीण सा भ्रम आज मुझे पाप सा लग रहा है, एक क्षण के लिए भी सही, पर उस भयंकर झूठ ने मेरे मन को क्यों दबा लिया ?”

देवन उसे लिये पार्क से बाहर निकल आया। कई बार समझाया-टोका, संतोश भी दिया-“तो क्या हो गया ? कोई बात नहीं ! तुम में नया विकास देने के पथ में मुझे और उत्साह मिलेगा।” कुछ क्षणो के बाद बोला, “तुम्हे पाकर गृहस्थी के नाम पर मैंने स्वर्ग की कल्पना की, आने वाला षिषु उस स्वर्ग का विनोद होगा।”

आश्वास सी गीता देवन से सटी हुई चलती रही। गीता को गुदगुदा कर देवन हँस पडा, “बच्ची कही की, हर छोटी सी छोटी बात को भी तुम पाप-पुण्य की सीमा में बाँध लेती हो ! इस से तो सारा जीवन बँध कर घुट जाता है।”

हँसती हुई आँखो से उसने गीता को देखा।

दुलार से गीता बोली-“पगली माँ ने बताया था, भावो में किसी के प्रति अविष्वास या दुर्भवना आ जाना -मनसा-पाप है।” देवन को हँसी आ गयी-“तो पाप के भी प्रकार होते है ?

गीता लजा गयी।

“पाप षाप कुछ नहीं होता सब - हमारी कमाजोरियोँ है जिसे हमने दो भागो मे बाँट रखा है।”

बडी गूढ दृष्टि से देवन ने गीता की देखा देवन की आँखो में एक अजब-सी चमक आ गयी थी। वह चमक सडक पर फैली हुई बिजली की रोषनी से भी निरपेक्ष थी। गीता उसमें मुग्ध हो गयी। मन श्रद्धा से झुक गया। उसे स्पष्ट लगा वह रोषनी जीवन के अनुभवो से उभर कर आयी थी-तभी उसमें विष्वास और सत्यता की तीव्र संवेदना थी।

ऐसी ही स्थितियो में गीता अपने पिछडन और अभावो को स्पष्ट रूप से समझ पाती थी। भीतर ही भीतर उसके मन में आगे बढ चलने के लिए ज्वार-सा कुछ उठने लगता-मूक स्वर में कहती-सत्य वही है जो अनुभव सापेक्ष हो, वह सब असत्य है, जो हम पर लाया जाता है।

.7

देवन सो रहा था । थोडा सा दिन चढ गया । आया नाष्टे की तैयारी मे थी । स्नान करके गीता अपने कमरे में गयी । लौट कर जब आँगन में आयी तो उसने देखा , पुरानी आया तुलसी के गमले मे पानी डाल रही थी ।

गीता हतप्रभ सी रह गयी । वह धीरे से कमरे मे लौट गयी । रसोई घर से नीय आया निकली, आगन्तुक पर दृष्टि पडी ।

“पुरानी आया कुछ बोली नही, पास चली आयी और ऐसी दृष्टि से उसने नयी आया को देखा, कि वह सहम सी गयी । उसने साहब को पुकारा । गीता को बाहर निकलना पडा । आया ने उसके चरण छुए, गीता चुप खडी थी ।

नयी आया ने कहा,, “साहब, चाय तैयार है ।”

गीता ने कुछ न सुना, धीरे से पुरानी आया से बोली—‘तुम अभी और आराम करो ।’

“मैं बिल्कुल ठीक हूँ रानी बहू ! आप की सेवा ही मे मुझे आराम है ।”

यह कह कर उसने झाडू उठा लिया । देवन के उठते—उठते उस ने सारे घर को घु लकर उसमें नयी व्यवस्था डाल दी ।

दोनो बैठे चाय पी रहे थे, वह कमरो को झाड—पोढ रही थी । उसी समय जीने पर से किसी ने ‘गीता’—‘गीता’ पुकारा ।

“अरे !पिताजी ! ” गीता दौडी । जीने पर फाट सी पडी, माँ के अंक में जा गिरी ।

पिता जी माता जी बनारस से उन्हे देखने आये थे । एक ही क्षण में घर भर गया —गीता ही जैसे घर की सारी घरती पर फैल गयी ।

भावो में माँ ने देखा—गीता देवन और उनके बीच भावो में एक नवजात षिषु, उसकी तोतली वाणी ‘पा’ ‘मा’ ‘ना’ ‘ना’..... ।

इसकी प्रसन्नता, इतना आह्लाद गीता ने माता जी के मुख पर कभी न देखा था । षान्त सुखी गृहस्थी को देखकर उन्हे न जाने कितनी अपार सम्पत्ति मिल गयी थी ।

माँ गीता को समझाती रही, “इतवार.....मंगल को अर्घ्य दिया करना, याद है न, इतवार सूर्य को और मंगल हनुमान को हर गुरुवार को तुलसी के नीचे घी का दीपक जला दिया करना, हॉ ।”

देवन की वलैया लेती हुई बोली, “बच्ची ही तो है, बहुत सम्हालना । इतना पढ लिया है पर अपने लिए बसुध रहती है । सुधि रखना । जो कुछ खाने—पीने का जी करे, उसे पूर कर लेना ! ”

सब तो चुप थे । गीता वहाँ से हट गयी थी । पापा जी बडे आन्नद से बोले —“तुम्हारी तरह सब का जी नही है । भाशाण बन्द करो ।

“चुप रहों जी !

माता जी कहती गयी —“जीने पर सम्हलकर उतरना चढना हॉ अरे गित्ती कहाँ गयी ?गित्ती ! ओ गित्ती ।”

पुकारती—पुकारती वह गीता को ढँढने लगी। सोफे पर वह ओधे मुँह पडी मिली। गीता का सर माँ के अंक में गढा था। कह रही थी—

“आज न जाओ। रात भर रहो न ! जाना ही था, तो वीरू भईया को क्यो नही लाये ? बाजार का सोदा, दूसरे के नल का पानी रहेगा, मैं भोजन बना कर खिलाऊँगी।”

पिताजी हँस पडे। गीता घबरा उठी। दोडकर माताजी के कंधे से झूल गयी।

पीठ थपथपाते हुए वह बोले, “इन्हे रोक लोगी तो इनके पत्थर के भगवान को भोग कौन लगायेगा ? बेचारे भूख—प्यास से मर न जायेगे।”

“चलो, चलो, नास्तिक कही के !”

वे रूके नही, चार बजे की गाडी से चले गये। नयी आया भी उसी षाम को चली गयी।

फिर वही तीन रह गये।

दो दिनो तक, अकेली गीता का मन कुछ खोया—खोया सा रहा। अगले दिन दोपहर को जब वह सोफे पर नया ‘कवर’ चढा रही थी, उसने सुना मिसेज घोश की तरफ से सितार पर संगीत उभर रहा था। उसी क्षण यह बात भी उसे याद आयी—देवन को सितार बहुत पसन्द है—और ?

सिनेमा के कोई—कोई गीत।

फिर सोचा, सितार और सिनेमा के गीत।

और ?

कपडे इस तरह से पहिनने चाहिये कि बिना प्रयत्न किये अंग दिख जाय। सो भी कौन अंग ? छिः लाज आती है।

उसे पता नही, पर वह भूली—भूली सी मिसेज घोश के यहाँ चली गई। बैठक में दृष्टि गई तो सहसा सितार का संगीत टूट गया। प्रतिमा बाहर आई। पता चला, मिसेज घोश बाजार गई है।

गीता बैठक में गयी तो उसे एक बात का पता और लगा प्रतिमा अपनी षान्ति के लिए सितार बजा रही थी। संगीत षान्ति भी देता है। गीता ने इस सत्य को अपनी अनुभूति बना ली। देवन को भी तो सितार पसन्द था।

गीता के मन ने सितार बजाने का व्रत ले लिया।

प्रतिमा द्वारा, उसी के ही सितार पर उसने प्रारम्भिक ज्ञाप पा लियां तब देवन के साथ वह स्वयं एक सितार खरीदने गई। साथ प्रतिमा और मिसेज घोश भी थी।

दूसरे सप्ताह से, सुबह—षाम एक सितार मास्टर आने लगे। फिर तबला भी खरीदना आवष्य हुआ।

कुछ ही महीने मे फल यह हुआ कि गीता थोडा—थोडा सितार बजाने लगी—

इसी बीच मिसेज घोश के परिवार ने गीता की आसक्ति सी हो गई।

प्रतिमा को वह जिया कहने लगी, मिसेज घोश की माँजी और स्वयं उन पर घुल सी गई।

व्यवहार में देवन की बताई हुई एक बात गीता को सदा याद करती थी। किसी का भी व्यक्तिगत जीवन जानने के लिए अपनी और से किचित भी प्रयत्न न होना चाहिए। अगर कोई

विश्वास पाकर स्वयं बताने लगे तो उसे अपने में मत जोड़ो उसका उसी को लौटा दो। पर दूसरे को नहीं।

गीता अनुभव करती थी कि वह जिसके भी सम्पर्क में आती है वह उस में उसी की बताई हुई कही हुई, या आभासित कोई न कोई आति वैयक्त रहस्यपूर्ण कहानी पा जाती है। उसे वह अपने में बिल्कूल नहीं जोड़ती पर अवष कुछ कुड सा जाता है। वह उसे उसी को लौटा देती है, पर उसकी परछाई नहीं लौटती—दुराग्रह से रह जाती है। इस से भी अलग गीता में एक प्रतिक्रिया और होती थी वह उन सब के प्रति कृतज्ञता से भर उठती थी।

प्रतिमा से बहुत कृतज्ञ थी। वह सितार के संगीत में क्यो अपनी षान्ति ढूँढती है, क्योकि वह कही खो गई थी।

इसी तरह जैसे सब का जन—जन का कुछ खो गया है—अपने हाथो दूसरे के हाथों और सब अपने अपने व्यापरो में उस खोये हुए तत्व को अनवरत ढूँढ रहे है। अगर वह मिल जाएगा, तो क्या वे षान्त और पूर्ण हो जायेगा? षायद नहीं, अषान्ति ही तब तक उनका स्वत्व हो जाएगा। वे सब वही हो जायेगे, जिसमें वे रह रहे है। सोच रही है।

लेकिन मेरा देवन क्यो ?

मै क्यो ?

हम तो षान्त है।

गीता देवन अभी एक पार्टी से लौटे थे, दूसरी पार्टी में षामिल होना था। दोनो एक ही सोफे पर बैठे थे।

देवन ने उस के अलक छूकर कहा, “इसी साडी मे फिर चलोगी ?”

गीता मुस्कारा आई।

“पार्टी भर मे तुम से ज्यादा हसीन कोई न था।”

“कपडे और ‘मेक अप’ की दृशिट से ?” गीता ने आँखों मे कुछ भर कर पूछा।

देवन मुस्कराया और मुस्कराता ही रहा।

बोला, “एक साडी एक ही समय पहनी जाती है, थोडी देर के बाद ‘मेक अप’ पुराना सा, लगने लगता है।”

गीता हँस पडी, “तभी मै औरो को देखती हूँ—खास कर पार्टियों में—मौक निकाल कर बैग खोला, भट ‘मेक आप’ पर नयी पर्त डाल ली।”

हँसती हुई गीता दूसरे कमरे में चली गयी। देवन सिगरेट पीता रहा।

बिल्कूल नये कपडो मे गीता आयी । पहले लजाकर लाल हो गयी, फिर बोली, “पसन्द है?”

“मेक अप नहीं किया ? ”

“अरे, भूल गयी, चली हटाओ, क्यो , कर ही लूँ ?”

एक क्षण देवन को एकाग्र दृशिट से देखती रही। मानो उसे देवन की बोल की अपेक्षा की। स्वयं बोली, “भाई, मै तो थक गयी.....कितनी दोड है यहाँ की जिन्दगी में।”

“फिर व्याख्या करने बैठ गयी ! “देवन ने उसे दाये कंधे पर से थाम लिया, “थक गयी तो मैं मेकअप कर देता हूँ ।”

दोनों जब बाहर निकले, गीता उल्लास से भरी थी । आत्मगौरव का एक मद्धम सा नषा था उसमें। वह अपने को प्रतिक्षण देवन के अनुरूप बानाती चल रही है—यही उसके मन का पर्व था । देवन की बॉह से जब उसका सर छू जाता, तो वह धरती से ऊपर उठ जाती स्वामिनी से माननी बन जाती और उस से भी ऊपर उठती—उठती वह देवन के अंक में बैठकर चलने लगती। फिर उसे लगता, अनुभूति होती, वह देवन के अंक में नहीं है देवन उसके अंकन में है जिस का प्रतीक उसके गर्भ में है।

वह प्रतीक जब से गर्भ में आया है तब से मुझे लगा देवन ने मुझे बहुत दिया है—इतना दिया है कि मैं कभी उन्मत्त नहीं हो सकती। जिस की मुझे आषंका थी, वह वरदान हो गया। तभी मैं ने उसे मनसा—पाप कहा था, पर मेरे देवन ने मुझे मुक्ति दे दी।

गीता के भीतर कुछ बरस रहा था। उसी तरह वह पार्टी में पहुँची। गार्डन पार्टी थी।

कुर्सी पर बैठते—बैठते देवन ने धीरे से कहा, “गीता !.....ओम और चित्रा भी है।”

“तो क्या देवन ओर गीता भी तो हे।”

गीता के स्वर में नया, बिल्कूल मौलिक पर अत्यान्त सहज गई गर्व था, जो आत्मविश्वास से आया था । ओम और चित्रा उनसे दूर, पर बिल्कूल सामने बैठे थे। बीच में खाने पीने के सामान से पटी हुई दो गोल मेजे थी।

देवन गीता सामने से विरक्त, निस्पृह थे, फिर भी सामने देखते थे। वह दृष्टि दोश था। ईश्वर ने आँखे ही ऐसे स्थान पर जड दी है—कोई क्या करे।

गीता डट कर सामने देखती थी ; पर उसकी दृष्टि में कुछ और न आता था, जो उसके भीतर अभी बरस चुका था, वही अब बूँद—बूँद उसकी आँखों में ढपक रहा था। देवन ने देखते हुए भी देख रहा था—चित्रा फूलदार चिफन साडी में थी, जिसकी संगति में पीली, परपिल—चोली थी। ओम अपने आस—पास के लोगो में हँस रहा है। चित्रा चुप उदास बैठी है।

न जाने क्यों गीता को हँसी आ गयी देवन भी हँस आया। पर हँसकर उसका मन मुरझा गया। एक मूक झूँझलाहट उसमें फैली, जिसमें मूक स्वर भी थे—अरी ओ चित्रा, ओम की निस्संग भेट हुई थी। पर ऐसी अवष झुझलाहट, असम्बद्ध रह कर भी ऐसी सम्बद्ध सी प्रतिक्रिया देवन में कभी ने हुई थी।

देवन वहाँ से उठा, किनारे; बिल्कूल दूसरी तरफ जा बैठा। वहाँ भी न तबीयत जमी। तब तक लोग मेजों के चारों ओर इकट्ठे होने लगे।

गीता देवन, उसमें सम्मिलित न हो सके, अतिथेय से आँग बचाकार दोनों सडक पर चले आये।

तब देवन अपने से पीस कर बोला—“क्या है, कुछ नहीं।”

गीता जग—सी गयी ; “क्या मुझे भी बताओ देवन ! ”

“क्या ?” देवन जैसे सहासा वह कडी ही भूल गया जिसे लिये वह मथ रहा था। वह नये सिरे से मुस्काराया, और उससे गीता में उसने मुस्कराहट भर दी। गीता फिर भी जिज्ञासू थी।

झट देवन ने एक और बात पकड़ ली, भरे स्वर से बोला, "आज के मनुश्य की कोई सम्पूर्ण इकाई नहीं है, ऊपर से वह जरूर एक षरीर वाला दीखता है। लेकिन भीतर से वह टुकडो में बटों है।"

कुछ देर तक गीता थाह लगाती रही कि देवन ने क्या कहा, या क्या कहना चाहता है, उसके प्रसंग का प्रयोजन क्या है?

तब तक देवन फिर बोला—मुझे लगता है गीता, कि मनुश्य के भीतर भी मनुश्य है—एक दो नहीं, अनके—और अनेक—विभिन्न वृत्तियों के।"

देवन आगे षायद कुछ और कहता, कहने जा रहा था, पर सहज भाव से गीता बोली, जैसे उस बीच उसने सब समझ लिया हो, "धर्म ही उनमें समन्वय देता है।"

"पता नहीं, तुम धर्म की मान्यताओं में पली हो, मै तो नहीं—खैर हटाओं। कहों से कहों हम लोग पहुँच गये।"

देवन ने बहुत भटके के साथ कहा, जैसे वह कही जा फँसा था और ध्यान आते ही उसने पुराने कपडे की भाँति उसे अभी—अभी चीर कर दूर फैंक दिया हो।

उसने गीता को धीरे से कमर में गुदगुदा दिया और दोनो खिल गये।

निर्लक्ष्य दोनो हजरतगंज घूमने लगे। न जाने क्यो देवन के पॉव" फैंशन इम्पोरियम' में गये। दो फूलदार चिफन साडियाँ खरीदी गयी, एक चित्रा जैसी, दूसरी उससे भी खूब।

जब घर लौटे तो दस बज गये थे। आया प्रतीक्षा में बैठी थी। देखते ही बोली, "बहू जी, आज गुरुवार है न।"

गीता से कुछ बोला न गया, कमरे में दौडी, आटे की लोई में घी का दीपक जलाकर उसने तुलसी को पूजा। उसी साडी में, उसी मेकअप में—वह थी। पर उस समय वह, उस सीमा को भूल कर अपने मूल स्वत्व में आ गयी थी। हाथ श्रद्धा में जुडे थे। आँखे प्रगति में डूबी थी, चित्त एकाग्र था और पता नहीं वह अस्फुट स्वर में क्या कह रही थी।

षाम की डाक में गीता के नाम दो पत्र आये थे—एक बनारस से वीरु का भेजा हुआ, दूसर षकुन जिया का। वीरु ने बडी षरारत की थी। निडर—बदमाष कही का। लिखा था, क्यो याद करोगी। लखनऊ क्य पहुँची, लाट बन गयी, फिर कर बनारस आने का नाम तक नहीं लिया—कलयुग है न। प्रणाम तो बडे तापक से ले लोगी, अच्छा ले लो। हॉ यह भी सुनो। कल तुम्हारी याद आ रही थी। ऊपर तुम्हार कमरे में गया, वहाँ बैठे—बैठे अपनी दो किताबे फाड डाली, चुगली न करना किसी से हॉ, नहीं तो। कब तक आओगी? जल्द नहीं आओगी तो जाओ मै कहे देता हूँ—तुम्हे बेटी ही होगी और खुब सतायेगी, हॉ।

चाय पर बैठे दोनो हँस रहे थे। उसी बची मिसेज सिह की नर्स—डोथो आयी। विनय से देवन के हाथ में एक चिट दे गयी।

चाय छोड देवन नीचे उतरा। मिसेज सिह खाली बैठी थी। उन्हे देवन से यह मालूम करना था कि चित्रा और वह इस तरह अलग क्यो हो गये? बात क्या हुई?

देवन को कुछ बताना पडा, पर उन्हें समझा न सका । जान छुडाकर भागना चाहा, तो वह चिपकी हुई ऊपर तक चली आयी। चाय की मेज पर बैठ गयी। चाय हुई, फिर गीता के महीने, दिन और स्थिति आदि पर उलझी रही।

भगी तब, जब आंगन में एकाएक मिसेज घोश आ धमकी। कुछ बोली नहीं, पर चेहरे से लगा, जैसे वह मिसेज सिंह को देख कर विश का घूँट पीकर रह गयी।

गीता को लिए तुरन्त अपने यहाँ लौटी, और आधिकार स्वर में बोली, “तुम्हारे यहाँ मिसेज सिंह कैसे आयी थी।”

गीता को बोलने का अवसर न दिया, बोलती गयी—“खबरदार, अब जो वह ऊपर आयी ! तुम पर उसकी साया न पडने पाये—बडी विशाक्त है। उस की दसे अंगुलियों न जाने कितने पापो में डूबी हुई। मुख पर अबोध हत्याओं की छाप है।.....पता है तुम्हे, यह किस व्याधि की डाक्टरनी है, गर्भपात और भ्रूण हत्या की। मुई जादूगरनी है, पेट पर हाथ रखा नहीं कि, बस।.....आज बता रही है, इसे तो मैंने एक बार गिराकर मारा था। मुझे क्या पता था कि यह डायन है। मैं सोयी थी यह घोश बाबू के साथ आयी, बस कुछ हुआ, कुछ टटोल, मुझे क्या ज्ञान ! अरे बाबा ! उसी रात मेरा सर्वनाश हो गया। उस हत्या का पाप मैं आज तक ढो रही हूँ। यह ससुर व्याख्यान देवती फिरती है कि दुनिया के सारे संकटों की जड सन्तानोत्पत्ति है। उसी का कलेजा है, पूछे जा कर कोई, फिर क्यों पॉच मर्द किया ?”

गीता की आँखों में घूरती रही।

फिर आवेष में बोली, “वह भयानाक पाप ऐसी ही औरते बो रही है जो प्रकृति से भी विष्वासघाट करती घूम रही है। प्रकृति से विरुद्ध चले, चले न, एक दिन घोट कर पी लेगी, हॉ।”

गीता रोने तक आ गयी थी। उस से कुछ न बोला गया। एक—एक षब्द को उसने ज्यो का त्यो ग्रहण कर लिया। बंगाली माँ के प्रति उसका कातर मन कृतज्ञता से भर गया।

भरी सी लौटी। देवन खडा प्रतीक्षा कर रहा था। यहाँ भी कुछ न बोल सकी। बस देवन के कंधे से लग गई और उसी तरह धीरे—धीरे उसने देवन को बस बता दिया।

देवन को कुछ भी न लगा, बस हँसी लगी। वह भी बहुत ही झूठी संक्षिप्त सी।

गीता टहलने न जा सकी। बैठी आया से बाते करती रही, पर जब, मन बातों से भी न भरा, तब एकाएक वह एक संकल्प कर बैठी।

अपने कमरे के दयों कोने को साफ किया, चार किताबों को रेषमी कपडे से ढँक कर उसे छोटी सी वेदी बना ली। उस पर एक और रामायण रखा, दूसरी और सत्यार्थ प्रकाश और दोनों के बीच में देवन का एक चित्र। घी का एक चिराग जलाया और बडी देर तक निस्पन्द मौन,, आँखे मूद बैठी रही बीच में एक बार उठी भी तो कागज का एक पृष्ठ औ पेन के लिए फिर जा बैठ—पृष्ठ पर लिखा—राम, षक्ति, दुर्गा, सरस्वती, गंगा, पार्वती। मध्य में कोरा छोडकर नीचे लिखने लगी है—मैं वह बाँसुरी हूँ—जो युगों से देवन के ही ओठों पर बजती आई है, नहीं तो हम मिलते ही क्यों ! मैं कोमल हूँ, पर निर्बल नहीं ; श्रीयुक्त हूँ—देवन हूँ।

कमरे का बल्ब जलाया, और दीपक को उसी तरह जलते रहने दिया। जब बुझ गया, तब गीता ने उस मन्दिर को सावधानी से ढँक दिया।

देवन बहुत दिनों के बाद 'बिलियर्ड' खेल कर लौटा था। 'ब्रिज' और 'फ्लाष' का नाम देवन के मुँह से गीता ने बहुत सुना था, पर बिलियर्ड का नाम पहली बार सुना था।

देवन ने उसे बताया—वह खेल—तमाषा दोनों है। चित्रा इसे भी खेल लेती थी, वह बातों—बातों में बक गया। पर ध्यान करके अपने आप में झुझला भी गया।

देवन से अपने मन्दिर की बात गीता ने न की; एक दो दिन नहीं हफ्तों तक एक दिन उसने स्वयं देख लिया, जब वे दोनों सोने जा रहे थे।

देवन को अच्छा लगा। उसे बताया न गया था, यह उसे और भी अच्छा लगा। उस दिन मन्दिर के पास गीता का बजा हुआ सितार भी रक्खा। तार ढीले न किये गये थे।

देवन बोला, "मैंने तुम्हारे मन्दिर देख लिया! बहुत अच्छा है! भरी हुई आँखोंसे गीता उसे देखती रही। सारा मुख हँसता रहा, धीरे—धीरे से बोली, "बहुत अच्छा है!.....उसमें तुम जो हो!"

.....असंगत। देवन चुप हो गया—बड़ी देर तक चुप रहा, सन्नाटे की साँस भरता रहा। सर ढक लिया, अस्पष्ट के दो चित्र उस में घूमते रहे, चित्रों में वाणी थी। एक कहता था, गीता वही है जहाँ से चली थी वह चलना चाहती है, आगे बढ़ती है, पर न जाने क्यों वही है,—सुन्दर सौम्य अबोध। दूसरा कहता था, नहीं गीता देवन के साथ आगे बढ़ चली है—बढ़ती चल रही है—उसके नये कपड़े—पहनावे, मेक—अप, व्यवहार और नये विष्वासों के रंग। उसका सितार कहता है, देवन जो चाहेगा गीता वही हो जायेगी।

धीरे—धीरे वे दोनों चित्र एक दूसरे में मिल गये, मिलकर एक नया चित्र बन गये—बहुत ही स्पष्ट चटक रंगदार। लेकिन उस वाणी न थी—चित्र गूंगा था।

गूंगा चित्र कुछ बोलने के लिए छटपटाने लगा। और देवन को लगा, जैसे उसका दम घुट जायगा।

उसने तेजी से मुँह खोला, बड़ी लम्बी सी साँस ली।

कातर स्वर में बोला, "लाख बार मैंने समझाया कि तुम मुझे ईश्वर बना कर मन्दिर में न बैठाओ, आदमी की तरह साँस लेने दो। तुम मुझे आदमी समझने से भागती क्यों हो? शायद इसलिए कि आदमी कटु यथार्थ हैं। वह बहुत कुछ चाहता है! विरोध करता है।"

कहते—कहते देवन ढीला हो गया। गीता पर अजीब प्रतिक्रिया हुई वह बेहद खुश थी। देवन का ऐसा स्वर गीता के लिए अति नवीन था, पहला था और सबसे अधिक मोहक था। उन शब्दों ने जैसे गीता को बाँध लिया।

वह मुस्करा आयी, बोली नहीं, भर गयी थी। उठो, कोने के मन्दिर को खोला, देवन का चित्र को झटके से छीन लिया और उसे फर्ष पर दे मारा।

"मैं तुमसे अपनी पूजा नहीं चाहता।.....पूजा वह करता है जो दया का पात्र हो, मैं तुम्हें दया नहीं दे सकता।"

“प्रेम तो दे सकते हो ।” कहते-कहते देवन का स्वर बीच में ही टूट गया ; जैसे वह कुछ भूल गया, फिर नयी शक्ति से बोला, “मैं प्रेम ओम कुछ नहीं जानता, सब झूठ—बकवास है।”

देवन करवट बदल कर चुप हो गया। सोये-सोये उसने एक सिगरेट जलायी, लम्बी-लम्बी कस लेने लगा। गीता प्रतीक्षा में थी कि अभी देवन कुछ और बोलेगा। वह अन्तर से चाहती थी कि देवन और खुले, पूरा खुल जाय। उसके भाग जगो है, कि देवन भागता, बचाता-बचाता हुआ आज पहली बार इस रूप में आया है। जैसे अन्धकार ने कली की गॉठ बाँध रखी हो, और रोषनी ने उसे खोल कर फूल बना दिया हो।

देवन षान्त-निस्पन्द पडा रहा, जैसे व जाने गि का बादलो से धिरा हुआ आसमान बरस कर चुप हो गया हो। वह कुछ न बोला, सोया रहा। हार कर गीता ने जगाया, “नीद आ रही है ?”

“क्यो ?” उसकी पलके भीग आयी, “सो जाओ।”

गीता षिषुवत बोली, “बस, अब और नहीं डाँटोगे ! जाओ, तुम तो मुझे कभी डाँटते ही नहीं।”

वह मौन था । बाया हाथ उठाकर उसने गीता को बाँध लिया और पार्श्व में सुला लिया। दोनो एक-दूसरे की आँखों में देखने लगे। एक और अनके प्रश्न थे, दूसरी और उत्तने ही उत्तर।

गीता दुलार से बोली, “तुम तो मुझे कभी डाँटते ही नहीं, इसी तरह मुझे खूब डाँटो-फटकारो न ! तुम तो न जाने क्यों संकोच करते हो ।.....वस्तु को इच्छित रूप देने के पूर्व उसे तपाया जाता है, फिर उसे पीटा-काटा और तराषा जाता है।”

देवन मुस्कराया-मुस्कराया रहा।

अब गीता को बरसना था, “मैंने तुम्हें पहले बता दिया है। मैं जिन स्थितियों और संस्कारों में पली हूँ, वे आज के लिए पूरे नहीं पड़ते । वे कुछ और बनाते हैं, आज कुछ और चाहता है। मैं भावों में पली हूँ, यही मेरा अभाव है।”

तेजी से उठाकर देवन का बाँया हाथ गीता के ओठों पर जा सका। वह मुस्कारा आया। गीता उदास सी रही।

तब देवन ने कहा, “सभी अभाव में पलते हैं, कोई धन और भोग के अभाव में , तो कोई प्रेम, विष्वास और आदर्शों के अभाव में ; किसी न किसी अभाव में सभी पलते हैं ; तभी वे जीते हैं, पर अभावों का भोगने के लिए नहीं, वह असंभव है। बस इसलिये, कि उसके प्रति मोह है।”

आगे कोई न बोला । जैसे दोनो कुछ सुनने लगे हों, वह कुछ जिसकी अभिव्यक्ति में वाणी नहीं आती, स्वाँस आते हैं।

बन्द पलकों के भीतर उनकी आँखें खुली थीं। उन पर कुछ हो रहा था, और वे भीगने जा रहे थे—एक ही आकाष के तले, एक ही हवा के झोके में।

एक समझ रहा था कि दूसरा सो चुका। पर कुछ देर के बाद उनकी मोटी साँसों ने जान ली, कि दोनो जग रहे हैं।

देवन बोला, “क्या आने वाला है ?” एक क्षण तो गीता उसी तरह पडी रही, पर लाज भरी मुस्कान से उसका सारा मुख रंग उठा, फिर उसकी पलकें अपने-आप खुल गयीं।

तब तक देवन ने गुदगुदा दिया, "बताओ न, कौन है ?"

"तुम बताओ ! "

"नही तुम ! "

"पुरुश ।"

"नही , स्त्री ! "

दोनो हंस आये, साथ ही साथ भर भी गये जिसकी गहनता उनकी आँखो मे उतर आयी । फिर धीरे-धीरे सच्ची राज हो गयी—वह सच्ची रात, जो अपने अंक से षान्ति की नीद लाती है, थकान, द्वन्द्व और उलझनों के ऊपर माँ की लौरियाँ बिखेर देती है ।

उस चित्र से क्या, जो कागज का होता है, जिस पर षीषा जडा होता है, असली चित्र तो उनका मेरे भीतर है, अलक्ष्य है, अभेद्य है । और मन्दिर से क्या ? जहाँ वह चित्र ; वही मन्दिर ।

गीता सोचती रही, और अपने कोने के मन्दिर को तोड कर उसे अपने भीतर जोडती गयी । जहाँ देवन, वही गीता ।

और जहूँ मिसेज सिह ? और उसी तरह अंसंख्या ?

वहाँ भी गीता डर किस बात का । झिझक क्यों ? और विकास होता क्या है ? क्या चाहता है देवन —मुझ से कोई उत्सर्ग बलिदान नहीं चाहता । यह तो उल्टे मुझे देता हैं, दिय भी हैं । आज तक माँगा तो कुछ नहीं — कहाँ माँगा ! सोचो न !

देवन तो मेरा पूरक है, नियन्ता है ।

उस दिन गीता का मन बहुत ही हल्का और साफ था । अपने मे एक अजीब सा नया बल पा रही थी । उनका घर भरा-भरा से लग रहा था, जैसे उस के चारो ओर उस का अपन सुखी परिवार है ।

घर में दिन भर जहाँ-जहाँ वह डोलती रही, उल्लास से उसका मन अनेक रंगीन रेखाओ में बाँधता रहा । मेरा देवन भी कैसा है । कभी कहता है गीता तुम मे अनूपम विकास है । कभी-कभी वह मुझे अनुपम के नाम से पुकारता है । और हप्तो यही संबा चलती रहती है । कभी कहता है गीता और तेज चलो अभी आगे बहुत है । कहता है, तुम में और कुछ नहीं अपेक्षित है पूर्ण हो तुम मुझे और कुछ नहीं चाहिये—जैसी हो वैसी ही तुम बनी रहो । कभी कैसे वह अपने को मथने लगता है । अवष उस में कुछ सुलग उठता है । तब जैसे वह कुछ तोड कर भाग निकलता है । और उस पर साफ खिच उठात है । कुछ नहीं, कुछ नहीं । यह सब क्या है—कुछ तो नहीं । गीता निर्णय पा लेती, यह सब मेरे देवन का विनोद है । मुझ से खेलने के लिए सब करता है—इस के पीछे कोई गॉठ या कुठा नहीं है । सहज उल्लास है सब ।

सन्ध्या का समय था । देवन घर पर न था । गीता आँगन में घूमती हुई कुछ पड रही थी । जीने के नीचे ने मिसेज सिह की कई आवाजे आयी । तीव्र इच्छा करती हुई भी गीता उन पुकारो के उत्तर मे न बोल सकी, न जीने पर झाँक ही सकी ।

चुप, आया के पास जा खडी रही ।

एकाएक जीने पर एक ही साथ चढने और उतरने की आवाजे हुई । पर क्षण ही भर में दोनो आवाजे टूट भी गयी ।

“ऊपर कहाँ ?” मिसेज घोश के स्वर थे।

“मिस्टर देवेन्द्र से काम है, तुम से क्या ?” मिसेज सिंह की आवाज उभरी।

“मैंने कई बार समझा दिया है, कि तुम इस जीने पर न पैर रख करो। देवन की बहू के पैर भारी है, और वह सीधी बहुत है।”

“क्या बक रही है आप ?”

“सत्या । ”

आगे कोई आवाज ने उभरी। मिसेज सिंह उल्टे मुह लौट गयी। माँ जी ऊपर आयी—गीता के आँगन में आ खडी हुई।

आज्ञा देती सी—बोली, “बहू ! जीने का दरवाजा बन्द रखा करो ! क्या आवश्यकता इसे खोल रखने में। बन्द करके रहना चाहिए।

कह कर उसी क्षण चली गयी। कृतज्ञता—भाव से गीता झुकी सी रह गयी। उस से कुछ न बोला गया।

बन्द घर, बन्द आदमी। और उस के सब कुछ बन्दी, भाव मान्यताये आदर्ष सब कुछ। खुला क्या है। खुला होना क्या चाहिए ? और षरीर वह भी उस के कुछ ही अवष्य । उन्ही का श्रृङ्गांर चाहिए, उन्ही को सूर्य का प्रकाष और खुली हवा चाहिए । तब उन्ही कुछ अवयवो का विकास होगा और वे सब धीरे—धीरे मर जायेगे, जो बन्दी है, अप्रयुक्त है और अन्धकार में छोड दिये गये है।

8

ज्यो-ज्यो प्रसव के दिन समीप आते गये, दोनो अनुभव करते चल रहे थे, कि न जाने क्या आकर्षण, कोई नूतन शक्ति उन्हें अब और बाँधती चल रही है।

पता नहीं, वह कोई मोह था, या मानवीय धर्म।

अपने में गीता, देवन को पूरा पा गयी थी। षायद वह, वही था जो देवन अब गीता में पा रहा था। आदमी किसी न किसी रूप में अपने अहं ओर निजत्व को पूजता है, और उसी में वह अपने को बाँधता भी चलता है।

यहाँ पहुँचकर दोनो को लगा, कि पहले वे दोनो पास थे, अब मिल गये हैं।

और इस की चरम सीमा उन्हें उस दिन मिली, जब गीता पुत्रवती हुई। पन्द्रह दिन पहले से वह अस्तपताल के 'स्पेशन वार्ड' में रहने लगी थी। चौबीस घंटे एक नर्स खडी मिलती थी। देवन सिपाही बना घूमता था। बनारस से दो बार पिताजी और माता जी का चक्कर लगा था। पीतलराय और आर्यादादा तो नित्य आ बैठते थे।

आया हुआ षिषु ही स्वस्थ-सलोना था। गोद में उठाते हुए एक सिस्टर ने कहा था—'प्रेषेस-डाल' तब गीता ने जैसे अपने स्वर में फौरन विरोध किया था—'मेरा तो यही स्वपन है। अस्पताल में जब गीता का वनज पूरा हो गया, तब वह अपने घर आयी। तभी से देवन आफिस भी जाने लगा, पर दिन में तीन बार घर आता था।

माताजी, बच्चे को 'रघुनाथ' की संबा दे गयी थी। दिल्ली से षकुन जिया ने उसके लिए कपंडो का एक पार्सल भेजा था, और सब पर लाल रेषम से लिखा था —'पप्पू'।

उन्ही दिनो, बनारस से वीरु भी आया। षरम-संकोच से बेचारा गडा जा रहा था—उसने कहा था 'जाओं तुम्हे लडकी ही होगी'—पर हुआ लकडा। वीरु ने कहा था, 'जिया इसका नाम चुक्खू रखाना, यह जब दूध पीता है तो इसके मुँह से इसी तरह की आवज निकलती है।

फिर एक दावत देने की सोची गयी। पालने पर देवन का बेबी हाथ पैर मार रहा था। उसे निहारती हुई पास गीता बैठी थी। देवन मेज पर झुका हुआ बुलाये जाने वालो की एक सूची तैयार कर रहा था।

उसके हाथो से, सूची में बार-बार ओम और चित्रा के नाम लिख उठते थे ! वह उन्हें काट कर जब आगे के नाम सोचने लगता था, तब वह सोचते-सोचते ही भूल जाता और निश्क्य सा रह जाता। कुछ धुंधला, कुछ मिटाया-मिटाया सा पर कुछ बहुत ही मूर्त-रंगीन-सा चित्र, बार-बार देवन में उतर जाता था, पर ज बवह उससे गायब होने लगता, तब उसका मन अपनी ही वाणी पुकार उठता था—और याद, आओ कहाँ जा रहे हो, आज साथ-साथ तो पीले, मजा तो तुम्हारे साथ में हैं, पीने में क्या ? मेरी जिन्दगी में आज एक बडी ही पवित्र नयी सी खुषी आयी है, तुम भी आ जाओहम एक दूसरे को माफ करे, और फिर से साथ-साथ हो ले।

एकाएक बच्चा रो उठा। देवन उठा, गीता के सामने उसने फिहरिस्त रख दी। स्वयं यह नहाने चला गया। कपडे पहन कर जब लौटा तो बस पिघल कर रह गया। सूची का वह भाप जहाँ देवन ने बहुत काट-पीट रखा था, उसी के सामने गीता के अक्षरो में लिखा—श्रीमती चित्रा ओर श्री ओम ओम प्रकाष ।

षाम को देवन का चपरासी ओम के घर गया। संयोग से दोनो बैठे चाय पी रहे थे। दोनो ने एक-एक करके देवन का निमंत्रण पढा फिर जोर-जोर से पढकार ओम ने उसे दुहराया।

चित्रा और लोगो के नाम पढने लगी। ओम कुछ क्षण चुप रहा, फिर चपरासी को समझाते हुए बोला—“जाकर अपने सरकार से कह देना, मेझे कोई साधू-फकीर समझ रखा है, कि मैं न्योते पर आकर उन्हे पुणयाम्मा सिद्ध करूँ ?”

चित्रा ने विरोध किया , “क्य वक रहे हो ?”

पर ओम ने उसे सुना नहीं, वह उसी गंभीरता से बकता गया—“बहूरानी से कहना, क्यो नहीं इस शुभ अवसर पर कोई अनाथालय खुलवा देती। बडा पवित्र कार्य होगा—उसमें पतिता आश्रम हीन स्त्रियाँ और अनाथ बच्चे पलेगें। इस लोक में यष कीर्ति फैलेगी और उस लोक मे स्वर्ग; समझ न कह देना रानी बहू से ! ”

चपरासी लोट गया। ओम भरा बैठा रहा। चित्रा बेहद उदास हो आयी थी। वह कुछ बोलना चाहती थी, लेकिन कंठ इतना तप्त और भरा-भरा सा था कि भीतर के षब्द उस से आगे ही न बढ पते थे।

ओम ही बोला, “जो अलग हो गये, वे अलग ही रहे, यह क्या है औरतो की सी आदत ?”

सूनी दृष्टि से चित्रा उसे तकती रही। जैसे वह कुछ बहुत सार की बात कह रही हो, जो आँखो से ही कही जाती है।

तब चित्रा बोलो, “जो अलग हुआ था, वही तो मिलना चाहता है, इसमें हमारी क्या हार है।” कुछ क्षणो के बाद फिर बोली, “फिर आज किसी अपने मित्र से भाव-वष कुछ हो जाय तो उसका पिछला क्यो भुलाया जाय ?”

“तुम मत भूलो ! मुझे षिक्षा नहीं चाहिए ! ”

ओम ने स्वर को दबाते हुए कहा। चित्रा ने सहज स्वर में कहा, “डियर बडे तोताचष्म हो तुम।”

चित्रा चुप मौन जैसे उसकी सख्ती कोलती रही, बोली, “पर वह देवन गीता की दावत कहाँ है, वह तो उस बेबी का है, जिसे कुछ भी पता नहीं है, “रुक कर अपने आप मे जैसे वह गूँज उठी, “सफर लिटिल चिल्डर्न टू कॅम आन टू मी, एण्ड फार विद देम नॉट, फॉर ऑफ सच इज द किगडम ऑफ गॉड।”

ओम ने नयी सिगरेट जला जी। धुएँ के बीच से बोला,

“तो उस बच्चे से तुम्हे मोह ! और तुम वहाँ जाना चाहोगी।”

“चाहती तो यह हूँ कि तुम भी चलो ! ”

चित्रा से वहाँ रुका न गया वह बिना कुछ बोले कमरे से निकली और पार्लर में आ खडी हुई। ओम की आवाज वहाँ भी आयी, “कब से बेबी पसन्द आने लगे ?”

चित्रा कुछ न बोली, “औरत को सदा बेबी पसन्द आयेगें” दस व्यक्ति अमंत्रित थे, जिनमें नो आये थे। उसी बीच अकेली चित्रा भी थी।

ओम कार से उसे छोड कर स्वयं क्लब चला गया था। चपरासी ने ओम की सारी बात उनसे कह दी थी, पर चित्रा को उस समारोह मे पकार जैसे उनका सब कुछ विनोद में घुल गया ।

ओम नही आया, गीता को बहुत अच्छा न लगा, अकेली चित्रा आयी, यह बहुत देवन को न भाया। पर यह सब जैसे उस दिन षिषु को बहुत अच्छा लगा। चित्रा उसके लिए अंग्रजी खिलोने ले आयी थी। उसे गोद में लेकर उसने कहा था—“ब्लेल्ड ! दियर एज ए हेविन।”

चित्रा जब से गयी थी, उसने गीता से अपने को बाँध रखा था। ओर देवन ?

वह कहतारहा, अपने को जैसे बचाता घूमता रहा। कुछ सभ्रम कुछ उदसीनता और आसक्ति—यह पूर के अर्द्ध भाग में या—पेश में केवल शून्य था—बहुत बड़ा शून्य, जिसके भीतर न राग था न द्वेष। पर कुछ अवष्य था, क्योंकि उसका एक रूप था, रूप के प्रति अनुभव थें।

जब सब अतिथि चले गये और वहाँ केवल देवन गीता और वह दुधमुहों षिषु रह गया, तब उस घर में चारो और चित्रा ही चित्रा रह गयी।

चित्रा अभी न जा सकी थी। ओम तब तक क्लब से लोटा ही न था।

तब देवन, चित्रा के पास आ बैठा। पर बीच में उसने चाय मँगवा ली। चाय स्वय बनाकर अपने अतिथि को दी। दोनो चुपचाप चाय पीने लगे, और उपर से चारो और सन्नाटा बरसने लगा। बेबी सो गया था।

गीता प्यार से बोली, “कुछ बाते करो न! “समय तो बीतेगा ! ”

“समय कहाँ बीतता है, बीतने तो हम है ! ” चित्रा ने उदासी से कहा।

देवन की इच्छा हुई, वह चित्रा को बरी तरह गुदगुदा दे, सर से पॉव तक उस में हँसी बिखरे दे। चिल्लाकर कहे बिरागी की भाँति मत बोलो। गाओ हँसो, भोगो।

थक कर गीता फिर बोली “कुछ बाते करो न।”

आषा से गीता दोनो की ओर निहारती रही । पर चाय के प्याले तो उनके ओठो से अलग ही न हो रहे थे, जैसे उनके कंठ सूखते जा रहे हो।

गीता ही बोली, “ सितार तो आप बहुत अच्छा बजाती होगी।

चित्रा ने सर हिलाया, उधर कप खाली हो गया। देवन ने उसे फिर भर दिया वह जैसे चाहता था, गीता चित्रा से बाते करती रहे और वह चुप सुनता रहे, न चाय ठण्डी हो, न बोलना पड़े।

गीता ने कहा, “मैने सितार सीखा है ! ”

उसी समय नीचे से हार्न की आवाज आयी। चित्रा उठी, देवन गीता उसे कार तक छोड़ने गये। ओम पीछे जा बैठा था। भीतर कार की रोषनी भी बुझी थी। अन्धकार में बैठा वह सिगरेट फूक रहा था। बिना किसी प्रति क्रिया के चित्रा झाड़व करने बैठ गयी। कार चलने को हुई। पिछले दरवाजे की ओर बढ़कर, विनय से गीता ने ओम को नमस्ते कहा। ओम हिला, उसके हाथ बँधे, पर उसकी वाणी न हिली।

देवन—चित्रा निश्क्रय रहे, उनके न हाथ हिले, न वाणी हिली। पर कार में एकाएक गति हुई, तब देवन के हाथ अपने आप में बहुत तेजी से बँधे, बँधे ही रहे और कार चली गयी।

गीता ने पलँग से उठते ही देखा, आया सुबह ही सुबह तुलसी का एक नया बिरवा लिये आयी थी। गीता कुछ समझ न सकी। आँगन में आती हुई बोली, “आया, कितने पौधे लगाओगी ?”

आया ने बताया, “बहूजी ! पुराना वाला तो न जाने क्यो कुम्हला गया ! ” गीता हैरान रह गयी। पास जाकार उसने देखा, सच, तुलसी का पौधा कुम्हला गया था। हवा-पानी मिट्टी आदि का उसे किसी तरह का भी अभाव न था।

गीता को ध्यान आया। जब वह अस्पताल चली गयी थी, उस समय पौधे को कुछ अभाव हुआ होगा। पर यह पौधा तो जंगली है, सूखी सी सूखी मिट्टी पर हरा रह लेता है। जरूर इसकी जड़ में कोई कीड़ा लग गया होगा। पर कीड़ा आया कैसे होगा ? बन गया होगा। और कीड़े है कहाँ नहीं ? सर्वत्र तो है। ओ हो ! गमले की पेदी में तो सूरख बना ही रहता है। तब तो बाहर से इसी रास्ते कोई जहरीला कीड़ा घुसा होगा।

गीता ने पौधे की मिट्टी खोदनी शुरू की। गमला खाली होता गया । पौधा की सब जड़ें बदस्तूर थी। किसी में भी न कोई घाव था, न कटन , न सड़न और न पूरे गमले में कोई कीड़ा ही था। पर न जाने क्यों, कैसे , बेचारा तुलसी का बिरवा मुर्झा गया था।

उसे थोड़ी पीड़ा हुई। पर आया कितनी अच्छी थी, वह दूसरा बिरवा ले आयी है।

अपने हाथों गीता दूसर पौधा लगा रही थी। उसी समय देवन सोकर उठा और वही से चाय के लिए आवाज दी। जब तक वह ‘बेड्टी’ लेकर आँगन में आया, पौधा गमले में लग चुका था, और गीता बैठी हाथ थो रही थी। देवन स्नेह से बोला, “सुबह-ही-सुबह हाथ पाँव पानी में डुबो लेती हो, बेबी ठंड नहीं खा जायगा ? आया से क्यों नहीं करा लेतीं ?

गीता सब मुस्कराहट में टाल गयी।

देवन सिगरेट पीता हुआ खड़ा रहा। मन में एक बात आयी, गीता के पास आकर बोला, “क्यो, एक बात बताओगी। फर्ज करो, अगर हमें ओम-चित्रा अपने घर आमंत्रित करते है, तो क्या करोगी ?”

“हम दोनो चलेंगे ।”

“क्यो ?-मै तो नहीं जाऊँगा । ” देवन ने कहा, “ओम ने चपरासी से क्या कहलवा भेजा था, याद है ?”

“ऐसी चीजो को मै भूल जाती हूँ, और चित्रा तो आयी थी न ! अब तो मुझे और भी भूल जायेगा।”

देवन चुप रहा गया और तब तक चुप रहा, जब तक गीता ने उसे बोलने के लिए विवष न कर दिया।

देवन ने पूछा, “ तो फिर चाहोगी कि हमारा उन से सम्बन्ध हो जाये ?”

गीता को कुछ न सूझा। वह डोल गयी वहाँ से । कुछ देर के बाद वह फिर देवन के सामने आयी। वह आफिस जाने की तैयारी में था।

उसने फिर पूछा, “सोचा कुछ ?”

गीता मुस्कराती रही, उसी में बोली, “कल्पना करके क्या सोचना ! कुछ सच तो हो पहले चित्रा को कोई संतान हो, फिर वे हमें दावत दें ; तब सोचा जायगा ! ”

“और वैसे ही दावत दे तो ?”

देवन के प्रश्न ने गीता को सहसा दूसरा प्रश्न दिया, “चित्रा जल्दी माँ नहीं होगी क्या?”

देवन के पैर के तलवे भीग आये। एक ऐसी झुझलाहट उस में उठी कि वह एक ही साथ अपने को गीता को और चित्रा को जी भर कर पीटे और तब पूछे—बोलती क्यों नहीं, क्या मैं चित्रा का पति या लेडी डाक्टर हूँ जो यह जानता फिरोँ, कि चित्रा जल्दी माँ होगी या देर में, या होगी नहीं। अजीब वे सर—पैर की बात है। इस तरह भी कोई सवाल करता है।

बिना कुछ कहे, वह आफिस चला गया। पूरे हफ्ते तक आता—जाता रहा और उसका मन किसी न किसी रोज बुनता रहा, कि उन से हमारा सम्बन्ध हो जाय! गीता चाहती है या नहीं। देवन स्वयं चाहता है या नहीं। ओम—चित्रा तो चाहते ही होंगे, भला वे क्यों न चाहेगे ! इन सूत्रों से मन रोज बुनता था, पर कुछ निकलता न था, सूत—धागे सब टूट जाते थे, बुनने वाला झुझला—झुझला उठता था।

उस दिन गीता के पास मिसेज घोश की मझली लड़की बन्श्री बैठी थी। उसके बालों में चन्द्रवेला के ताजे फूल गुथे थे। वस्त्र विन्यास कुछ ऐसा था, जिस से देवन की सौन्दर्य—दृष्टि बेहद मेल खाती थी।

वे दोनों पास—पास एक ही सोफे पर बैठी थी। सामने कार्पेट पर, पालना झूल रहा था, जिस में बेबी जागता हुआ कुछ एक टक देख रहा था।

देवन सोफे के पीछे खड़ा था। फिर वह सोफे पर झुक गया। दायें हाथ की कुछनी बन्श्री के जूड़े को छू रही थी और बायीं कुहनी गीता की बाँह को।

पालने पर बेबी किलकिला उठा। देवन ने बढ़कर उसे अपने अंक में छिपा लिया और माँ की तरह कुछ लोरी सा गाता हुआ वहाँ से डोल गया। आँगन में घूमा, सीडियो पर झॉक आया, आँगन से सड़क निहारता रहा, अन्त में उसे आया को देकर वह फिर वही लौटा आया। विषय वह फिर उसी तरह पीछे जा खड़ा हुआ। इस बार वह गीता से कुछ बातें करता जा रहा था।

धीरे—धीरे वह गीता के कंधों पर जा झुका। उसी भाँति नीचे की ओर देखा, ग्रीवा से नीचे। वहाँ भी सब कुछ था, पर रंग आकार और रूप भिन्न थे बिल्कुल, भिन्न। वहाँ उभार न थे, उसकी पूर्णता थी, जहाँ रूप की वे दोनों सीमाये आपस में मिल गयी थी, जैसे कली फूल में मिल गयी हो और दोनों फल बन गये हो। और बीच में कही उथलापन न था, डूब कर खो जाने तक की गहराई थी। सफेदी न थी, लाली थी, जो आगे चल कर हरी—हरी—सी लगने लगती थी, जिस में स्पर्श—सुख कम था, दृष्य—सुख उस से भी कम। वहाँ कुछ अपूर्व सा था, जिसे हम नहीं जानते। क्योंकि हमारे जानने के साधन और हैं, जो हमें अनुभूति तक नहीं ले जाते, बीच में छोड़ देते हैं, कली पर फूल पर। तभी हम उन्हें सेज पर बिछा लेंते हैं, सौ जाते हैं। जगते तब हैं जब फूल वे कलियाँ—सब मुझा जाती हैं।

सुबह तड़के ही देवन की आँख खुली। उससे बिस्तरे पर पड़ा न रहा गया, “बेड टी” भी भूल गया। गीता अंक में षिषु को लिये जग रही थी। देवन ने बताया, वह जरा टहलने जा रहा है।

सुनी सड़क पर आया, टहलने लगा, ‘मंकीब्रिज’ की चढान ते करने लगा।

एकाएक बीच ही में रुक गया। गोमती के तट पर उतरने लगा।

किनारे आकर वह एक स्थान पर खड़ा हो गया। ऊपर ब्रिज को देखने लगा। उस पर ऊशा की लाली बरसने लगी थी। ब्रिज अभी सूना पड़ा था, कोई न आ-जा रहा था। पर कुछ देर के बाद उस पर से एक भैसा गाड़ी गुजरने लगी।

देवन को लगा, कि उसकी दृष्टि में कोई ब्रिज नहीं है—औरत है जो नदी के आर-पार औधी पडी है—पैर एक पार, हाथ दूसरे पार —और बीच का धड ब्रिज का कार्य कर रहा है।

छिः अपरूप, घृण्य.....उफ!

नहीं, नहीं !

वह बहुत तेजी से मुड़ा, गंज की ओर जैसे भागने सा लगा। पार्क में आया । रूक कर पीछे मुड़ा, ब्रिज आँखों से ओझल हो गया। वस, फ़ैली-फ़ैली सड़क दिख रही थी। लोग आने-जाने लगे थे। स्वर ध्वनि और आवाजों से वह सहारा-सा पाने लगा।

घर पहुँचते - पहुँचते उसके आँगन में घूप उतर आयी थी। मेंज पर चाय लगी ठंडी हो रही थी। वेबी दूध पीकर फिर सो गया था।

उस दिन वह बहुत देर से आफिस पहुँचा । कमरे में प्रविष्ट होते ही उसने देखा, कुर्सी पर एक लड़की बैठी है। अपनी कुर्सी पर बैठते-बैठते उसने कुछ-कुछ पहचाना। वह लड़की कभी उस क्लब में आया करती थी-षायद ऐंजिलो नाम है। पर देवन अपरिचित-सा रूखे स्वर में बोला,“ कहिये ?”

लड़की कुछ बोली नहीं, उसने मेज पर एक खत बढ़ा दिया। खत चित्रा का था- कुछ ही पंक्तियाँ लिखी थी 'आपके यहाँ अगर किसी टाइपिस्ट की जरूरत हो तो उसके लिए यह प्राथी है, मुझे भी खुषी होगी। शायद इसे तुम पहचान भी लोगे, यह अपनी माँ के साथ अक्सर क्लब में आया करती थी। अब मू न रही, वह अकेली है, और इसे जीने का मोह है।”

देवन ने खत को रख लिया, चपरासी के लिए घंटी दी। चपरासी से बोला-“बडे बाबू को भेजो ”

बडे बाबू ने आकर बताया, “टाईपिस्ट की तो कोई जरूरत नहीं है।”

देवन कुर्सी से उठा, बडे बाबू को लिए वह दूकान मं चला गया। लौट कर बोला, “कल दोपहर को आइयेगा।”

लड़की चली गयी, तब देवन ने फिर खत को निकाला, कई बार उसे पढ़ा और जैसे उन पंक्तियों से छानने लगा—जीने का मोह तो सब को है, पर क्यो ? इसे कोई नहीं जानता, जो जान लेगा, उसे जीने से कोई मोह ही न रह जायेगा।

मोह मुझे था, मैने विवाह किया और अब पिता हूँ ओर न जाने क्या-क्या होता जाऊँगा। अब तो तो चल पडा हूँ, जैसे विवाह कोई ऐसा द्वारा है जिसमे प्रवेश पाते ही व्यक्ति तो मूल रूप में समाप्त हो जाता है, केवल उसकी छाया भटकने लगती है, अनेक रूप और योनियों में, बाप-बाबा-आजा-परपजा, न जाने कितनी पीढ़ियों तक। और उस पर मोह की पर्ते मोटी से मोटी होती चलती है।

मोह तो तुम्हे भी था चित्रा ! नही तो देहरादून और मसूरी की ऊँचाइयों से क्यो इस तरह मैदान मे आ फिसलती ! तब तुम लडकी थी, बृद्धा होते तक लडकी ही रहती। तब औरत हो, पत्नी हो, माँ बनोगी !.....तब.....फिर।

माँ बनोगी?

देवन जड-सा गया। उस दिन गीता ने भी तो यही पूछा था-“चित्रा माँ नही होगी क्या ?” कितना अपरूप लगा था यह प्रश्न!

आज देवन के व्यक्ति ने देवन से ही प्रश्न किया।

वह उत्तर देने बैठा, “फिर माँ नही होगी, वह लडकी से पत्नी बन गयी, वही क्या कम हुआ है! किन्तु पत्नीत्व तो माँ ही बनने का साधन है, और क्या है?”

पर, वह सीमा भी चित्रा की नही बाँध सकती! नही बाँध सकती !!

संयोग से एक बार बँध गयी थी, पर तोड़ कर निकल आयी। और परिधि से बाहर आ पडी। तब से वह परिधि में नही चलती, परिधि पर चलती है। और जब चलती है तो सत्य-विश्वास और निष्चय से चलती है। और तब परिधि की गोलाई उसके लिए राजमार्ग बन जाती है।

दूसरे दिन ऐंजिलो की नियुक्ति हो गयी। उसे सामने बैठाकार देवन चित्रा को एक पत्र खिलने लगा। पत्र पूरा करके उसने दो बार अपने में पढा, कुछ काटा, कुछ बढ़ाया, फिर उसे ऐंजिलों को टाईप करने के लिए दे दिया।

“कितनी कॉपियाँ निकालू?” उसने स्त्री स्वर से पूछा।

देवन चुप रहा-पर केवल चुप था, सूना-सूना सा, उसमें कही भी चिन्तन -मनन न था।

“इसी तरह चित्रा को दे देना।” देवन ने पत्र को लिफाफे में कर दिया।

ऐंजिलों चली गयी, पर उसके पीछे ही देवन भी कमरे से बाहर निकला। उसे पुकार कर फिर पत्र ले लिया। “कहना कि मैं स्वयं आऊँगा।”

उसके पीछे देवन ने पत्र फाड़ डाला। घर पहुँचते -पहुँचते उस के मन में आया-मैं क्यो चित्रा के यहाँ जाऊँ ? वह क्यो न आय?

कमरे में गया, पालने पर बच्चा किलकारियोँ मार रहा था। गीता वहाँ न थी। वह बच्चे को देखता खडा रहा। बच्चे ने जैसे कहा, चित्रा तो आयी थी। आयी थी न। सोचो, विचार कर देखो न! अब भी तो वह तुम्हारे संग है।

उधर उस शाम को ऐंजिलों सीधे चित्रा के पास गयी। जो बातें पत्र द्वारा भी न पहुँपाई जा सकती थी, वे सब चित्रा को जैसे मिल गयी।

और दूसरे दिन जब ऐंजिलों आफिस आयी तो उसने उस सूत्र से देवन को बाँध दिया जो उन दोनो के बीच टूटा-सा लटक रहा था।

देवन चिन्ता मे गड़ गया। घर गया तो उसने गीता से कहा कि, उन्हे ओम के घर निमंत्रण है।

गीता तो एक तरह से देवन ही थी। उसने देवन से अलग करके अपने को कभी सोचा ही न था।

ताँगे पर बैठते-बैठते गीता ने मुस्कराहट से कहा, “सच देवन ने बुलाया है ?”

तॉगा चल पड़ा।

देवन के मुख से निकला, “हमारे बेबी के उत्सव पर चित्रा आयी थी, उसी को पूरा करने के लिए, समझो यह हमारी ‘रिर्टन विजिट’ है।

न जाने क्यो गीता वेहद प्रसन्न थी। उसकी अलकें हवा में बह-बहकर उसे परेषान कर रही थी।

दिन भर जितनी-गर्मी थी, उस षाम मो हवा बह चलने से उतनी ही सरसता आ गयी थी। पर देवन का बेहद उमस लग रही थी। उसे उगता था, जैसे वह पसीने से तर होता चल रहा है। तॉगा ज्यो-ज्यों ओम के घर के समीप पहुँचा जा रहा था, उसके षरीर की उमस, उसके भीतर फैलती जा रही थी।

देवन चुप बैठा रहा, ओम के यहाँ पहुँच कर गीता ने तॉगें वाले को रोका। बच्चे को अंक में लिये हुए उतरी, तब देवन उतरा, जिसके भीतर जैसे सब कुछ पिघलता सा जा रहा था।

ओम-चित्रा दोनो थे। कौतूहल-वष वे बाहर निकले। चित्रा ने बढ कर स्वागत किया। अतिथि भीतर आये, पर अतिथेय-ओम ने जाने कब, कैसे घर से एकाएक गायब हो गया।

गीता-चित्रा दोनो को इस पर कुछ भी आश्चर्य न हुआ, देवन को बहुत बुरा लगा।

इस बार देवन, गीता की भी ओर से चित्रा से बातें करने लगता था। चित्रा कम बोल पर रही थी, जो कुछ बोलती भी थी उसे गीता की दृष्टि से जोडकर बोलती थी, देवन की दृष्टि से मानो वह अपने को बचाती थी।

उसी बीच संयोगवष ऐंजिलो भी आयी। गीता से तब परिचया कराते हुए देवन ने बताया कि वह दफ्तर में नयी टाईपिस्ट रखी गयी है।

सब पंखे के नीचे बैठे थें। गीता की अलकें बराबर बिखरती चलती थी। षिषु चित्रा के अंक में था। पर देवन उसके अंक में षिषु के स्थान पर अपने को बैठा पा रहा था। षिषु तो जैसे अभी पैदा ही न हुआ था।

देवन ही षिषु था। वह तीनो और आँख उठा कर देखता था—लालच से इच्छा से, वासना से, सहज-आकर्षण से। चित्रा के वक्ष वही थे। बिल्कूल वही, जैसा कि उसने पहली बार देखा था। ऐंजिलो के पास ऐसे थे, जिसके लिये अनुमान - कल्पना की आवष्यकता न होती थी, जो कुछ भी था, सब मूर्त था। पर गीता ? गीता ? गीता?

तब देवन की दृष्टि में उसका षिषु आया। उसने हाथ बढाकर चित्रा की गोद से उठा लिया। अंक में गड़ाये वह कमरे से बाहर निकल गया—खुली हवा में।

बाहर आ, उसकी इच्छा होने लगी कि वह षिषु को उसी तरह अंक में छिपाये वहाँ से गायब हो जाए—लखनऊ से बाहर। किसी ऐसे गाँव में चला जाय, जहाँ कोई रोषनी न हो।

पता नही, गीता चित्रा भीतर क्या बातें कर रही थी। देवन ओम को सोच रहा था। वह क्यो चला गया ? देवन, पर अपने चिन्तन में कुछ पा नही रहा था।

भीतर से तीनों निकलकर देवन के पास आयी। षिषु सबका आधार बन गया। देवन की दृष्टि तभी चित्रा से मिल गयी, फिर जैसे वहाँ कोई और न था, केवल देवन-चित्रा थे।

देवन ने बच्चे को चित्रा के अंक में डाल दिया। और निरपेक्ष होकर देखने लगा, चित्रा-षिषु, और दूसरी ओर गीता जो अभी लड़की ही है, माँ नहीं।

स्व चले गये, तब ओम लौटा। चित्रा की दृष्टि को जैसे पकड़ते हुए उसने पूछा, "चले गये ? कैसे आये थे ? क्या बात है ?"

प्रश्न अनेक थे, जैसे एक प्रश्न अनेक प्रश्नों को जन्म देकर आगे बढ़ता था, जिसमें चित्रा बस, चुप खड़ी थी। और उसके पास प्रश्न थे, जिन्हे वह शायद ओम के सामने रखती, पर उसे चुप रहना पडा।

पर ओम न चुप रहा। वह बड़बड़ाने लगा, "सती सावित्री को मेरे घर की देहरी का श्राप नहीं लग जायगा ? और देवन-देवता जो हे। देवता बहुत ऊँचाई पर रहते है, वे इतने नीचे कैसे उतर आते है ?"

चित्रा उसके सामने से हट गई। भीतर कमरे में जा खड़ी हुई। ओम वहाँ भी पहुँचा और छाया की तरह उस के पीछे-पीछे लगा रहा।

तीसरे कमरे में झोलकर चित्रा ने उसकी छाया तोड़ दी। रोषनी बुझा क रवह अपने पल्लंग पर लेट गयी, फिर ओम से न बोला ही गया, न वहाँ वह रुक ही सका।

अन्धकार में चित्रा अकेली रह गयी। वह क्या-क्या सोच रही थी, उसे कुछ भी न पता था, फिर भी उसे वह अन्ध-स्थिति बहुत अच्छी लग रही थी।

प्रयास से उसने अपनी पलके मूढ़ रखी थी। एकाएक उसे लगा उसके सूने-अन्धकारमय कमरे में देवन आया है। उसके दायें हाथ में पिघलकर रोती हुई एक मोमबत्ती है। कमरे में रोषनी फैल जाती है। वह मोमबत्ती की लो की अपलक देखता हुआ चुप-मौन खडा रहता है। चित्रा उसे देखती है, पर केवल देवन को ही नहीं, समूचे भावचित्र को । और वह स्वयं ही अस्फुट स्वर में बोलने लगती है—देवन, तुम में अपना षक्तिषाली निजत्व है। तुझे कमजोर बना, अपने स्तर पर तुझे झुकाकर मैं तोड़कर नहीं चाहती।

चित्रा सहसा टूट गया। कमरे में ओम ने आकर बिजली जला दी।

देवन और गीता दोनो सो गये थे। रात भी बारह बजे से आने झुक रही थी। नीद में एकाएक गीता को ऐसा लगा, कि उसका बच्चा रो रहा है। वह उठी, पाया बच्चा सुख से सो रहा था। एक क्षण बाद, उसे आभास हुआ कि कही से बहुत ही मद्धम स्वर की कराह आ रही है। वह सो जाने के लिए प्रयत्न करने लगी, पर सो न सकी । उठ खड़ी हुई, बाहर का बल्ब जला दिया और जीने के दरवाजे की ओर बढ़ी, कराह उसी दिशा में आ रही थी।

वह देवन को जगाने बढ़ी, पर जगा न सकी। पर वह कराह के स्वर से अषान्त भी होने लगी। अवषं उसने देवन को जगाया। कराह की बात सुनते ही देवन के मुंह से निकला, "यहाँ कराह सुनती चलोगी तो कभी नीद नहीं आयेगी ! "

पर गीता ने उसे उठा कर छोडा। जीने पर रोषनी करते ही दोनो ने देखा—जीने की तीसरी सीढी पर गिरी, कराहने वाली बनश्री थी। तब तक उसका करहना बन्द हो गया था और वह बेहोष हो चली थी। देखते ही देवन गीता का दायों हाथ पकड़ने ऊपर खीचने लगा, वहाँ से भाग चलने के लिए।

पर गीता रो पड़ी और देवन हार गया। गीता वही सीढियों पर बनश्री के सर को अपनी गोद में रखकर उस पर पानी के छीटे देने लगी, और उस पर अपने आँचल से हवा करती रही।

कुछ ही क्षणों में उसे होष आया और वह गीता को देखकर निःशब्द रो पड़ी। गीता सहारा दिये हुए उसे ऊपर ले आयी। उसके पेट में अथाह पीडा हो रही थी। उस पीडा में वह बारबार कहती थी कि माँ को खबर न होने पाये, माँ को खबर न होने पाये।

लेकिन खबर इतनी बड़ी थी कि दबाते न बनी। वह ऐसी घटना ही थी कि जिसकी स्वयं की जिह्वा होती है। वह सब से बता गयी। माँ से तो रो-रोकर कह गयी।

पूरे हफ्ते तक बनश्री बीमार पड़ी रही। गीता ने उसकी बड़ी चिन्ता की। उसे सब से अधिक आश्चर्य और सन्तोश इस पर था कि उस घटना की कोई विशेष प्रतिक्रिया किसी पर भी न हुई थी ; न मिसेज घोश न बनश्री के भाई-बहनों पर, न देवन पर न आया पर।

और दसवे दिन गीता ने देखा, उस की प्रतिक्रिया स्वयं बनश्री पर भी न थी। वह फिर उसी तरह मेकअप करने लगी। आने-जाने लगी। घोशाल बाबू भी आये थे। उसके लिए उन्होने एक हार खरीद दिया था, वह फिर एक ही रात रह कर चले गये। एक दिन गीता आया से कह रही थी, इस दृष्टि से इस शहर का बहुत बड़ा चरित्र है। यहाँ सब कुछ जैसे सागर में खो जाता है, सब भूल जाते हैं, और सब घुल भी जाता है। जैसे सब असहज यहाँ अपने-आप सहज बन जाता है। गाँव, कस्बे और बनारसा के मुहल्ले इसे नहीं छिपा सकते। वहाँ यह सब उ बल कर बह जाता है।

आया ने कहा था, यहाँ तो सब भीतर ही भीतर सडता है रानी बहू। एक दिन देवन गीता पर इसी तरह झुँझला पडा था। यहाँ सेक्स से चरित्र नह जोडा जाता। दोनो निरपेक्ष है। इसे समझने की कोषिष करो।

गीता क्या समझे, क्या न समझे, अक्सर उसमें एक द्वन्द्व छिडता था। उसका हाल ढूँढने के लिए वह अपने को मथती, रामायण और काव्य-पुस्तके पढ़ती, पर वे सब उसका साथ न देते। वह रास्ते में अकेले ही छुट जाती।

इतवार था। सुबह न जाने कब देवन टहलने निकल गया। लौटा तो आते ही देखा, गीता बच्चे को अपने अंक का दूध पिला रही थी। देवन ने मानो वह देखा, जिसे उसने कभी न देखा था। वह गम्भीर स्वर में बोला "मैने कितनी बार कहा है कि बच्चे को अपना दूध न पिलाया करो। यह कोई गाँव नहीं है। उस अंग का मूल्य है ! "

"बच्चे से भी ज्यादा ! " गीता को कहना पडा।

"मुझसे तर्क न किया करो गीता, मेरे साथ चलना है तो मेरी गति से चलना होगा ! "

"गीता बेवकूफों की तरह हँस पडी। अपने को बदलने के लिए नहीं, देवन की षान्ति के लिए। बच्चे को आया ने ले लिया। बच्चा दूध पीते-पीते सो चला था।

गीता देवन के सामने आ खडी हुई, मुस्कराकर बोली, "डॉट चुके, अब समझाओ, मेरे अंक में प्रकृति ने दूध कर सागर क्यों दिया ?"

"नहीं ।"

"प्रकृति के प्रति विष्वासघात ?"

“कुछ नहीं, कुछ नहीं ! ”

देवन के स्वर में तीव्रता थी। गीता उसे ढो न सकी। उसकी गंभीर बड़ी-बड़ी आँखें सहसा आँसुओं से भर गयी।

पर उन आँसुओं को देवन न देखा सका। उसे गीता ने बड़ी सावधानी से अपने मुस्कराते से ओठो को दिखाया।

गीता अपने से विवश थी। उसके भीतर एक दर्शन था, संस्कार और भावनायें थी, वे सब न जाने क्यों गीता –माँ को इष रही थी।

आया को उस दिन गीता ने अपने पास से जाने दिया। उस ने गीता को समझाया था कि सच, बहूजी ! यहाँ बड़े घर की औरतें अपना दूध कभी भी नहीं पिलाती। आपने तो इतने दिनों पिलाया भी है।

आया को सामने बैठाकर गीता इसी वाक्य को उसने अनवरत सुनती जाती थी और उसके सत्य में अपने को बाँधकर, खूब जकड़ कर अपने असत्य से आगे बढ़ जाना चाहती थी।

पर जैसे ही वह षिषु को अंक में ले उसे पेश दूध पिलाने लगती थी, उसके मन का बाँध टूट-टूट जाता था। वह षिषु के संग नदी की धार में बह जाती थी।

दूसरे सप्ताह में एक दिन गीता को लेकर देवन फिर ओम के यहाँ गया। उस दिन ओम उनके बीच से कही गया नहीं, पूरे समय घर ही रहा।

देवन से उसकी कुछ औपचारिक बातें भी हुई। पर वह गीता से न बोला। चित्रा से भी झुझला-झुझला कर बातें कर बैठता था।

उस दिन न जाने क्यों, कैसे गीता यह भाव लेकर लौटी कि उसका निरादर हुआ है। और उससे भी अधिक उसके देवन का। उसके मन में यह भी भाव उठा कि ओम के सामने देवन अपने को हीन पाता है।

दूसरी ओर, चित्रा के प्रति उसकी भावनाओं में अपूर्व कृतज्ञता थी। उसका मन कहता था कि चित्रा वह नहीं है, जो वह बाहर है उसे होना पड़ा है, बल्कि वह उसका कवच है।

.9

शीतलराय अपनी पत्नी के साथ गीता के घर आयें। जाते समय वे अपने साथ गीता देवन को भी ले जा रहे थे। देवन तैयार न था, पर गीता का मन था कि वह चली जायें। कुछ 'डी हेविन' से उसका मन ऊब गया था, और कुछ उसे उस पुराने घर के प्रति ममता थी। विशेषकर उस हवेली का आँगन उसे बहुत मोहक था—बिल्कूल बनारस वाले आँगन की तरह। 'डी हेविन' में कोई आँगन थोड़े। छत और बारजे के बीच बहुत थोड़ी सी खुली जगह थी, जिसे गीता ने जबरन अपने नये घर का आँगन मान रखा था। उसने बनारस में बहुत सुना था—'आँख बिनु मानुख, आँगन बिनु घर—दोनो नाहि कबहूँ सुखकर।

गीता का मन रखने के लिए उनके साथ देवन भी पिता के घर गया। रात का खाना खाकर वह अकेले अमीनाबाद पार्क की ओर बढ़ा और निर्लक्ष्य घूमते-टहलते वह न जाने किधर चला गया।

रात को फिर न लौटा। गीता निश्चिन्त थी, देवन 'डी हेविन' गया होगा। वह सन्तुष्ट भी थी, देवन के मन पर अधिक भार न पड़े। पर देवन की रात 'डी हेविन' में न कटी, कहीं ओर कटी, जहाँ देवन का द्वन्द्व था।

वहाँ चित्र न थी पर ओम था।

बहुत लम्बी अवधि के बाद देवन गया था। सब लोग उसे पाकर आश्चर्य में थे। उसके आगमन पर क्लब के मंत्री ने 'राम्बा' का विशेष बैड बजवाया था। यह उसका सब से प्रिय नृत्य था। उसकी 'सिम्फनी' के प्रति उसकी अपार ममता थी।

पर वह नाचा नहीं।

ओम एक मोटी ओरत के साथ था। उसी के साथ वह नाचता भी था और नाच के बाद षराब भी पीता था।

देवन ओम की मेज पर जा बैठा। पता लगा, चित्रा के सर में दर्द था और वह घर रह गयी थी।

रात के एक बजे थें। वह क्लब से भाग कर ओम के घर आया। बरामदे में खड़ा हो र उसने देखा, भीतर, रोषनी हो रही थी और षायद भीतर चित्रा जग भी रही थी।

देवन ने कई आवाजें दी, पर उसे कोई उत्तर न मिला। फिर वह बरामदे में चुपचाप टहलने लगा।

सहसा उसने देखा, बैठक के कमरे में कोई आया है, और बार-बार अपने को छिपाकर वह षीषे के पीछे से झाँक रहा है। देवन रूठ गया था और वह मौन, अलक्ष्य, बस अपने आप में टहल रहा था।

दरवाजा खुला। चित्रा बाहर आ खड़ी रही, पर उसे बिना देखे टहलने वाला एक ओर गुमसुम खड़ा रहा। फिर दोनो खड़े रहे—निःस्पन्द चुप।

चित्रा लौटकर बैठक में गयी और सर थामें वही सोफे में जा धँसी। तब देवन भी अन्दर गया। सामने जा खड़ा हुआ। बैठ गया। चित्रा की आँखें जैसे दर्द से मुदी थीं।

देवन बोला, "सर—दर्द है !"

देवन ने उटकर छत का पंख खोल दिया। और चुपचार अपनी जगह बैठ गया।
चित्रा ने आँखे खोली। कुछ क्षण वह सर झुकाये रही। फिर बोली, "गीता कहाँ है?"

देवन चुप था। उसने भी अब सर झुका लिया।

चित्रा फिर बोली, "रात के दो बज रहे हैं। गीता अकेली होगी।"

"तुम्हारे सर में दर्द है?" देवन बोलो।

"नहीं तो!"

"फिर क्यों जग रही हो?"

"तुम्हारे सर में दर्द है क्या?" चित्रा ने उसे देखा।

देवन चुप था।

"तुम क्यों जग रहे हो?"

चित्रा के प्रश्न ने देवन को हिला दिया। उसके भीतर कुछ मथ गया। तब उसकी दृष्टि में एक सत्य और भी कौधा। चित्रा की उँगलियों में पुखराज और नीलम की दोनो अँगूठियाँ नहीं हैं। कलाई की घड़ी भी गयाब है। चित्रा के आनत मुख पर न जाने क्या भाव थे। सर के बाल बिखरे से थे पर उनके बीच का सीमंत आज सूना न था। बीच में उसका थोडा सा भाग सिंदूरी था।

"यह सिंदूर कब से?" देवन के मुख से जैसे एकाएक फूट गया।

चित्रा ने सर उठाया। मीठे स्वर में बोली, "जब से गीता को देखा।"

देवन का चेहरा सुर्ख हो आया, फिर सफेद सा होने लगा। उसे लगा, जैसे उस पर व्यंग्य किया गया है। वह अपने को बँधने लगा।

चित्रा कहती गयी, "गीता इतनी सरल है कि मोह लेती है। उसे देखकर औरत होने को जी कहता है।"

"तुम औरत नहीं हो क्या?"

चित्रा से कुछ न बोला गया। वह शून्य-भाव से देख रही थी। देवन का सारा मुख तमतमाया हुआ था, चित्रा से पायी हुई सत्य की अनुभूतियों उसे दंष गयी।

वह जैसे अपने—आप पर क्रोध करके बरस पडा, "इतना व्यंग्य मत करो चित्रा! गीता मोहती है या नहीं, पर तुम जैसी सैकड़ो औरतें....."

देवन का स्वर सहसा टूट गया।

उसने फिर से जोडा, "मैं तुमसे कुछ माँगने नहीं आया हूँ। तुम मुझ पर व्यंग्य कर सकती हो, गीता पर नहीं!"

फिर कुछ सूख गया।

तब भी उसने गीता किया, "किसी भी मानो में गीता तुम से पीछे नहीं है! क्या समझती हो तुम अपने को? अपनी हैसियत भूलती हैं?"

देवन उठकर दरवाजे तक चला आया। चित्रा उसी तरह निर्विकर बैठी रही। वह कुछ भी न समझ सकी, देवन ने क्या—क्या कह डाला। शायद देवन स्वयं ने भी कुछ न समझा। कुछ था, टूटा पर जुड़ा — जुड़ा सा और बीच उसके बीच में भी बहुत सी जमी हुई परते थी। और सब

परतें भूखी थी ; इतनी भूखी कि उन में से बिना गति की, लव शून्य आवाजें हो आयी ; जैसे खाली पेट की विवष आँते।

चित्रा भी उठी, बिल्कुल सहज ढंग से। चेहरा उसका बरस आया था, हरियाली थी उस पर। देवन के दायें कंधे को थाम, वह बोली, “सच, मेरे सर में बेहद दर्द था, और पिछले कई दिनों से लगातार था, अब चला गया।”

देवन अपनी दृष्टि को आग्नेय बनाना चाहता था, पर वे उतनी ही टंडी पड़ रही थी।

चित्रा ने कहा, “मैं जीत गयी देवन !”

देवन बरामदे में बढ़कर, घर से बाहर निकलने लगा। चित्रा सामने आती हुई बोली, “चलो, मैं आज तुझे घर तक छोड़ आऊँ !”

“नहीं चाहिए !”

“तुम्हारे ‘चाहिये’ को मैं भी कुछ जानती हूँ !”

“वह देवन और था !”

चित्रा को हँसी आ गयी, पर वह हँस न सकी। किस पर हँसे ? कहाँ कैसे हँसे ? जिन पर, जहाँ हँसा जाता है, या तो वह कोई बहुत दूर का हो, या बिल्कुल अपना हो।

देवन चला गया। चित्रा उस ओर खड़ी देखती रही। कमरे में लौटी। इस बक्स को खोला जिसमें पिछले दिनों देवन की लायी हुई सब साड़ियाँ, कपडे और उसकी भेंट की हुई वे दोनो अंगूठियाँ, कलाई—घडी और गले के हार काट के टप्स बगैरह—सब सँजो कर रख दिये गये थे।

खुले बक्स को देखती वह भावशून्य बैठी रही, बैठी रही। तब उसने देवन के साथ अपने खिंचे हुए सब चित्रो को चुना, और उन्हें बड़े लिफाफे में बन्दकर बक्स में गाड़ दिया। बक्स बन्द कर उसमें सब से मजबूत लाता लगा दिया और उसकी कुँजी को अन्धाकर में फँक कर गायब कर लिया।

दूसरी शाम को देवन गीता को बुलाने गया। गीता उस समय आर्या दादा के घर थी। उनके घर पहुँच कर सब से पहले देवन ने अपने षिषु—सागर को देखा। आर्यादादा की गोद में था वह। उसे छीनकर अपने अंक में उसने इतनी ममता से चिपका लिया, जैसे वह वर्षों बाद मिला हो।

भोजन के बाद रात को वे लौटे सके। देवन तब से बराबर अपने षिषु को अंक में लिये रहा। घर में जितने बल्ब लगे थे, उसने सब को जला दिया।

गीता से विनय—स्वर में बोला, “तुलसी तले घी का दीपक जला जो।”

पूरा घर रोषनी से भर गया था। देवन की इच्छा थी कि रात भर उसी तरह उजाला रहे। गीता देवन को समझने की कोषिष करती चल रही थी। उस कुतुहल और विस्मय का सुख भी मिल रहा था।

सागर और उसकी माँ दोनो को अपने पार्श्व में ले देवन पलंग पर लेट। गीता देख रही थी। देवन के बाल बिखरे हैं, आँखों नीद और थकान से बुझी—बुझी सी लग रही थी।

सागर सो गया, तब गीता ने उठकर देवन के सर को अपनी गोद में ले लिया, और उसमें तेल मलने लगी। देवन ने सदा विरोध किया था, उस क्षण जैसे, उसे कुछ सुधि ही न थी।

आँख उसकी कुडुआने लगी, और उसमें से आँसू बहने लगे देवन ने सम स्वर से कहा, “बहुत दिन हुए तुमने सितार नहीं बजाया ?”

“बजाऊँ ?”

“सागर जग जायेगा ! ”

“मैं उसे गोद में लेकर बजाऊँगी ! ”

“नहीं, जाने दो ”

“मैं झाड़गं रूम में बजाऊँगी ! तुम्हे तो अच्छा भी लगता है, दूर से सितार की धीमी-धीमी गति आती हो, “रुक कर फिर बड़े मन से बोली, “इधर दो गीतों की मैंने काफी भी की है! ”

“फिल्मी ?”

“जी ! ”

बिना एक क्षण रुके वह झाड़गं रूम में बैठ कर सितार बजाने लगी। देवन आँख मूदे रहा। आँसुओ से आँखे डूब रही। एक सागर सो रहा था, एक सागर डूब गया था और तीसरे सागर की तूफानी लहरें देवन की आँखों में उठ रही थी। उन लहरों पर सितार का संगीत तिरता चल रहा था। तेज, बहुत तेज पुरवेया चल रही है, नदी में भी भयानक वेग है। खूब ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। किसी बच्चे ने अपने कागज की नाव उसमें छोड़ रखी है। नाव तो डूब गयी है, पर बच्चा नदी के कगार पर प्रसन्न खड़ा है कि उसकी नाव लहरों में तैर रही है। उसी में नाव डाल दी है तभी नदी में लहरें उठ आयी हैं।

अगले कई दिनों तक देवन ओम की दूकान पर जाता रहा। और उसने ते करा लिया कि इतवार को वे सब लोग कहीं पिकनिक पर चलेगे। फिर वह चित्रा के भी पास गया, जैसे चित्रा के प्रति उसका कोई भी व्यवहार उसे इतना असहज नहीं लगता कि वह उस से पूर्वाग्रह बनाता, उसने झिझक या दुराव पाता। चित्रा अवष उससे दया करने लगती, फिर उसे पाप-विश्वासघात अनुभव करके अपने अतीत की चित्रा से घृणा कर बैठती। देवन अपने को यथार्थवादी, समयी, षहरी स्तर का मानता है। गलत है। वह कुछ और है, अपने को मानता-समझता भी कुछ और है। यही अन्तर्विरोध उसे यह समझने ही नहीं देता, कि वह क्या है, क्या कर रहा है, सब का परिणाम क्या होगा ? उसकी गति कहाँ है ? तभी वह दया छीनने लगता है। पर वह षायद कभी दया में पला नहीं है। इया में पला है उसने —गीता को ?

नहीं, नहीं, मैं ऐसा क्यों कहूँगी ? यह नहीं हो सकता।

देवन ने मुझे दया दी है, मुझे उबारा है ओम के साथ मुझे भविष्य दिया है, और हमसब का उद्धार करना चाहा है गीता ने। गीता महान है ! हम सब के ऊपर उदाहरण है। उसने साक्षत् विश ही पी लिया है, जिससे मौत होती है। कितनी प्राणशक्ति है गीता में ! अतुल साथ, उदार संकल्प, अनोखे स्वप्न।

जिसने मुझे दया दी है, उसे मैं दूँ—यह विश्वासघात होगा। देवन की दया बहुत बड़ी थी। उसमें क्रिया थी, रचना —शक्ति थी। अगर उसे दया देने वाले में मेरी दया जुड़ेगी, तो अनेक

स्वप्न टूट जायेंगे। कई समाज बरबाद हो जायेंगे। कल्पना टूट सकती है, स्वप्न नहीं, क्योंकि वह किसी तपस्या की दया अनुभूति है।

देवन की कल्पना को मैं तोड़ लूंगी, जिससे उसका स्वप्न सत्य हो जाये। पाकर नहीं, अब घृणा पाकर। घृणा ?

पर घृणा तो जिसमें आती है, वह पहले उसी को तोड़ देती है, और उसे इतने नीचे से जाकर गिरा देती है, जहाँ गति नहीं होती।

उसमें से अपने को निकाल कर, बिल्कूल अलग कर—अपने को ही कुछ कर लूगी! मैं तो केवल व्यक्ति हूँ, देवन एक समाज है, उसकी पीढियाँ हैं, अजस्र धारा है—गीता षिषु और ऐसे अनेक।

पहले दिन उन सब की पिकनिक बनारसी बागी में हुई। दूसरी 'लॉ मार्टेन कालेज' के तालब पर। गीता को बेहद सन्तोश था। देवन का जैसे सब कुछ पट गया। विष था ओम, और वह बिखरता भी रहता था। चित्रा चुप थी, सहन करने की पूरी तैयारी के साथ।

तेईस अक्टूबर को चित्रा की वर्षागॉठ थी। वह पर्व केवल देवन के मनाने के लिए था, जैसे उसने कई वर्ष पहले उस तिथि को स्वयं उस रूप में मान लिया था और मानता चला आ रहा था। पिछले वर्ष उसने मनाया न था, अनुभव किया था और उस अनुभव में उसने गीता को एक रिस्टवाच भेंट की थी। उसे अपनी रूचि का कपड़ा पहनाया था।

बच्चे को उसने घर आया के पास छोड़ दिया गया था। गीता को लेकर वह ओम के यहाँ पहुँचा। चित्रा को बताया कि उसकी वर्षागॉठ है। स्वयं अपने हाथो उसने घर की सब बत्तियाँ जलायीं। आग्रह करके चित्रा को नये कपड़ों में किया।

ओम निश्चय बैठा रहा, जैसे वह किसी उद्बुद्ध दर्षक की भाँति सब देखने के लिये था। गीता उसके पास बैठी हुई जैसे समूचे दृष्य की साधारण जनता थी, जिसे केवल देखना ही था—महज देखने के लिए, बिचारने के लिए नहीं।

देवन चित्रा की लिए कही चला गया। ओम के सामने गीता निस्पन्द बैठी रही। अकारण ओम हँस पडा। गीता घबड़ा उठी।

ओम गीता के बिल्कूल पास आकर बोला, "देखा, वे दोनो कही चले गये। कितनी अच्छी हो, तुम कुछ सोचती नहीं ! कुछ मतलब नहीं लगाती.....यही वह कमरा था, पिछले वर्ष तुमने मुझे चुनौती दी थी—अपनी पवित्रता और आर्दष में देवन को बाँधकर मुझ से सब तोडने और अलग करने के लिए आयी थी। वह सब क्या था ? ताकि मेरा साया तुम पर न पड़े। जैसे मैं कोई डाकू था।

गीता घबड़ा कर खड़ी हो गयी।

ओम कहता गया, "और आज देखो, मेरा घर है, सूनी रात है, मेरे साथ तुम अकेली हो।"

गीता चीख कर रो पडी।

"चीखना, रोना कोई कुछ काम न देगा। जान बूझ कर तुम मुझे सौप दी गयी हो, अब मैं चाहे जो तुम्हार साथ कर सकता हूँ।"

गीता कमरे से निकल भागी। ओम ने उसे पकड़ा नहीं। साथ-साथ वह बरामदे में आ खड़ा हुआ।

“पर मैं इतना बुरा नहीं हूँ, तुम्हारे देवन से तो अच्छा ही हूँ। मैं चरित्र का कोई पुतला लिये नहीं घूमता ! जैसा हूँ वैसा ही रहता हूँ।”

गीता सिसक कर रोती रही।

ओम ने अपनी आवज गिरा ली, “अब जाओ अपने घर। आज मैं तुम से कहता हूँ फिर यहाँ कभी न आना। जाओ घर बच्चा रो रहा होगा! चली जाओ।”

और गीता को एक रिक्शे पर बिठाकर वह सर झुकाये उसी कमरे में लौट आया। न सोचा न वह परेषान हुआ।

करीब डेढ़ घंटे के बाद वे दोनों लौटे। ओम के सामने से जब वे गुजरे उस समय वह गिलास को ओठो पर लगाये आँख मूदे रहा। और वे दोनों जब उसके सामने आ खड़े हुए, तब वह उठ खड़ा हुआ।

देवन के मुँह से निकला, “गीता कहाँ गयी ?”

ओम ने तो पहले ध्यान नहीं दियचा । ध्यान दिया तो वह व्यंग्य से मुस्करा पड़ा। पर बोला तब भी नहीं।

तब चित्रा ने पूछा, “सच, गीता कहाँ है ? बताते क्यों नहीं ?”

ओम ने फोरन झाड़ दिया, “घर जा घर !मैं ओम हूँ।”

घूर कर उसने देवन को देखा। वह कमरे में से बाहर मुड़ रहा था। उसकी दृष्टि को घुमाकर तब उसने चित्रा पर गाड़ दी।

“वर्श गॉठ की बधाई ! ”

“बको मत।”

चित्रा वहाँ से चल दी। ओम फूट कर हँस पड़ा। जहाँ वह कपड़े बदल रही थी, वहाँ भी वह पहुँचा। धीरे से बोला—“वर्शगाँठ पर न सही, मुहब्बत की नयी गॉठ पर सही, बधाई क्यों न लोगी ?”

चित्रा चुप थी।

“क्या-क्या भेट की है ? दिखाया नहीं। ”

चित्रा ने उसे विरोध की दृष्टि से देखा, पर उससे कुछ बोला न गया, बस वह सुलग कर रही गयी। ओम उसके पीछे पड़ा रहा। जैसे उसे किसी उततर की अपेक्षा थी। पर चित्रा के पास जैसे कोई उत्तर न था। बस, केवल प्रश्न थे।

फूलती हुई सॉसो में देवन लौटा। सीधे ओम के पास जा खड़ा हुआ, क्रोध से बोला “गीता को क्या कहा है ?”

“वह कम था।” देवन भावत्रस्त था, “तूने जो बेइज्जती आज मेरी की है, उसका कोई जबाब नहीं है।”

बहुत ठंडे स्वर में ओम बोला, “जबाब है, मेरे पास नहीं, तुम्हारे ही पास है।” देवन उसे आग्नेय दृष्टि से देखता खड़ा था।

ओम ने उसी स्वर से कहा, "अपने चारों ओर लम्बे-चौड़े षीषे रखो और बीच में खड़े होकर मेरी कही हुई बातों के ऊपर इसी तरह क्रोध से चीखो, षीषे में तुम्हारी ही परछाइयाँ तुम्हें जबाब दे देगी।"

"होष में बाते करो, नहीं तो ! " देवन में क्रोध से अपना आँठ भी लिया। ओम मुस्कराया। आवेष में देवन आगे बढ़ा। सहसा बीच में चित्रा आ गयी। देवन का हाथ पकड़े वह बरामदे में बढ़ी। उसके साथ-साथ रिक्षे में बैठी 'डी हेविन' चली आयी।

षिषु आया के अंक में रो रहा था। गीता पलंग पर रो रही थी, औधी निस्सहाय-सी देवन वहाँ एक क्षण रूक कर हट गया। आया के अंक से षिषु को लेकर वह उसे बहलाने लगा।

चित्रा को देखते ही गीता चुप हो गयी। पर उसके मूक आँसू रह-रह कर बरसते रहे। वह क्यों इस तरह रो रही थी, उसे बाँधने के लिए जैसे वाणी न थी, और आँसू उसे कह रहे थे।

चित्रा बिना कुछ बोले गीता के पास बैठ रही। जब गीता का मन हल्का हुआ तब वह बिदा लेकर चली गयी। न कुछ बोली, न समझाया-बुझाया, न कुछ स्वयं ही हिली, बस आयी और चली गयी। इसका प्रयोजन वह खुद तक न समझा सकी।

उसी रात गीता को बुखार चढ़ा और वह बेसुध-सी हो गयी। देवन के पास बच्चा टिकता ही न था, बस उसका मुह देख-देख रोता था।

अनेक विकृत, अपरूप, अस्पष्ट स्वप्नों को वह देखती रही। सुबह चार बजे उसका बुखार कुछ-कुछ उतरा। नीद आ गयी उसे। तब देखा,—अथाह, बहुत दूर तक फैला हुआ एक सरोवर हैं, षान्त-गम्भीर, मानो उस पर कभी कोई लहर ही नहीं उठती। पूर्णमासी की रात हैं जैसे ही चाँद उस सरोवर के बीचो-बीच आता है, तब किसी किनारे से संगमरमर का बता हुआ एक विषाल भवन धीरे-धीरे तैरता हुआ, चाँद के ठीक नीचे आकर रूक जाता है। भवन के सूने फर्ष पर एक षिषु खेल रहा है। खेलते-खेलते वह अबोध सरोवर में गिरने लगता है। फिर एकाएक अंधेरा हो जाता है।

चीख के साथ गीता जग गयी। अपने सागर को बाहुओं में कस लिया। देवन सरहाने बैठकर उसके माथे को सहला रहा था। गीता ने संकेत से उसे अपने पार्श्व में खींच लिया। सागर और देवन के बीच उसने अपने को ऐसा कस लिया मानो अपने से उन्हे बाँध रही हो।

दिन को बुखार उसी तरह उतार पर था। आर्यादादा उसकी दवा कर रहे थे। न जाने क्यों उस समय बुखार सहसा तेज हो गया, जिस समय पिछले दिन उसका आक्रमण हुआ था।

इस तरह अगले तीन-चार दिनों तक बुखार का दौरा जारी रहा। देवन ने दफ़्तर जाना छोड़ दिया। बार-बार उसके मन में यह भाव उठता था कि गीता मर जायेगी। ऐसी औरतें मर ही जाती हैं। ऐसी औरतें केवल करुण स्मृति के लिए होती हैं। इस भाव को वह अपने में बहुत दबाता था, पर ये भी थे कि उतने ही सर उठा कर आते थे। तब देवन कल्पना भी कर बैठता था—तब वह अपने पेश जीवन को उसकी स्मृति में काटेगा। अपने ऊपर करुणा का एक ऐसा कवच धारण करेगा कि वह सब की समवेदना, सब की आषक्ति को निस्संग रूप से भोगेगा।

एक शाम को चित्रा आयी। गीता का बुखार उस समय उतरा-सा ही था। वह पलंग पर तकिये के सहारे बैठी थी। नीचे पालने पर सागर खेल रहा था।

चित्रा की दृष्टि जैसे ही गीता से मिली, उसकी आँखे अनायास ही डूब गयी। गीता माने उसके स्वागत में उठी, पर वह उठ कर उठी नहीं, कटे वृक्ष की तरह चित्रा के पैर पर जा गिरी, और चिमट गयी।

चित्रा ने पूरी शक्ति से उसे खींचकर अपने अंक में भर लिया और स्वयं कॉपने लगी। गीता के समक्ष वह अपनी हीनता और उसे अपनी अतुल श्रद्धा कैसे अर्पित करे। पूजा के मार्ग पर तो गीता फँस गई। कितनी उल्टी बात हुई। फिर भी चित्रा रोई नहीं। उसने गीता की दृष्टि से अपने को जोड़ लिया। उसक जलते माथे को अपने अंक में ले और उस पर अपनी कँपती हथेलियाँ रख, वह अपनी अन्तर की मौन पूजा से गीता को आष्वस्त करने लगी। गीता का बुखार, उसका सर दर्द, उसमें से निकल कर मुझ में चला आये—इनका पात्र मैं हूँ—गीता नहीं। गीता और है—गीता अलग है—गीता का क्षेत्र यह नहीं।

चित्रा बोली, “जिन्दगी बस को हराती है गीता रानी, केवल उनसे हार जाती है, जो उसे कुछ महत्व ही नहीं देते।”

कुछ क्षण चुप रही, “मेरी बड़ी बहन थी। मामा की लडकी। बहुत अच्छे घर—घर से षादी हुई। सुहागरात पर, जब पति—पत्नी मिल, तो पति ने साफ कह दिया, “मेरे जीवन में पहले एक लडकी है, मैं तुम्हे दया दे सकता हूँ, प्रेम नहीं। वह मामा के पास लौट आयी। जहर खाकर मर गयी।”

फिर चुप हो गयी, “मेरे क्यो ? मरने का पाप अपने ऊपर क्या ले ? जिये, खूब जिये, जहाँ से मौत आती है, उसे दिखा—दिखा कर, उसके सामने सीना तानकर जिये।”

गीता के ओठो पर मुस्कराहट फैल गयी। पालने पर सागर खेलता—खेलता सो गया था।

चित्रा बहुत सरल ढंग से बोली, बच्चो जैसी, “मुझे मेरा बचपन नहीं याद है, शायद बचपन नहीं था। होष है, कि मैं कन्वेन्ट में पढ़ने चली गयी और तुरन्त औरत हो गयी।”

गीता अपने सहारे उठ बैठी। बहुत हल्का हो गया था उसका जी। चित्रा जैसे कोई खुली हुई खिडकी थी ; जिसने गीता के धुँएँ को पी लिया। चित्रा की इधर—उधर की बातें, जिसमें न कोई सूत्र थे, न विधान, पर जैसे सब संगत थें। आकाष के बिखरे—बिखरे टूटे—आकृतिहीन धुँएँ जैसे बादल, अपने में लक्ष्यहीन दिखते हैं, पर उनका कही लक्ष होता है। अव्यक्त—अज्ञान।

धीरे—धीरे नित्य का समय बीत गया, उस दिन गीता को बुखार का दौरा न हुआ। वह चित्रा से कृतज्ञ हुई। देवन आया। भरी आँखों वह दोनों को देखता रहा। कभी दोनो को एकात्मक करके, कभी एक को हटाकर और कभी दोनो को रख कर।

चित्रा चलने को हुई तो गीता उसे विदा देने के लिए फिर उठी। इस बार वह सीधी उठी रही, शरीर निर्बलता से कपें रहा था, पर वह मुस्करा रही थी। चित्रा ने देवन का दायाँ हाथ पकड़, उसे गीता के कंधे पर रख दिया, “सँभालो न ! खेड क्या हो?” यंत्रवत उसने गीता को सँभाल, पलँग पर लिटा दिया। चित्रा ने अपने सत्य को भोले स्वर में कहा, “अपने दृष्टिकोण में जियो, अपने को तबाह न करो !”

देवन छू—सा गया, झुझला कर बरस पड़ा, “मुझे शिक्षा देने मत आया करो।”

कई क्षण चित्र इस प्रतीक्षा में खड़ी रही कि देवन कुछ और बरसेगा, पर वह सुलग कर रह गया।

गीता को नमस्ते कर जैसे ही वह मुड़ी उसकी आँखे भर आयी। जीने पर अकेली उतरती हुई आगे का रास्ता देखने के लिए ज्यो-ज्यों वह आँखो को सुखाती जा रही थी, आँखे उतनी ही गीली हो रही थी।

जीने के बीचो-बीच वह खड़ी हो गयी। तब तक गीता की स्फुट बोल सुनाई दी—‘जाओ देवन !.....उसे पहुंचा आओ न ! कैसे अकेली जायेगी ?’

तेजी से चित्रा सड़क पर उतर आयी। देवन तब तक पास चला आया था। दोनो चुपचाप बढ़ने लगे। पास के चौराहे पर चित्रा रूक गयी, और एक ऐसी नई दृष्टि से उसने देवन की ओर देखा कि वह स्वयं सहम गयी। पर लक्ष्य पर कोई अनुभव न हुआ।

चित्रा ने उस क्षण निष्चि कर लिया, उसे वह पाप उगलना होगा जो भीतर ही भीतर अमृत से विश बन गया।

तेजी से उसने देवन को नमस्ते किया और उसी क्षण वह आगे बढ़ती गयी। कुछ दूर बढ़ कर उसने देखा, पीछे-पीछे देवन अब भी आ रहा था।

“क्यो आ रहे हो ?”

“गीता की इच्छा है ! ”

एक गहरी दृष्टि से चित्रा उसकी आँखों में देखती रही !

कस्णा से बोली, “कितना शुभ होता अगर तुम गीता की सब इच्छा समझते ही ! ”

एक क्षण रूक कर व्यंग से कहा, “मुझे पहुँचाने चले है। जैसे रास्ते में मेरा हरणा हो जायेगा। रात-रात भर क्लब में नाचने वाली, न जाने कितने पुरुशो में घूमने वाली को कुछ.....।”

देवन ने बीच ही में डाँट दिया, “चलती हो कि सड़क पर लेक्चर पिलाती हो ।”

चित्रा आँसुओ को पी गयी। स्वर बदल कर बोली, “तम्हारे आत्मसम्मान की भावना कहाँ खो गयी ? ओम के घर तुम मुझे छोड़ने जा रहे हो न ? ओम.....ओम.....ओम ! ”

कँप कर उसका स्वर टूट गया, फौरन सम्हाल लिया, “अब भी ओम का घर तुम्हे प्यारा है ?” एकाएक उसकी वाणी करुण हो आयी, “दूध की धुली, निश्पाप पत्नी घर बीमार है। मुझे पहुँचाने चले है।

देवन बिना उसे देखे, चौराहे की ओर बढ़ने लगा। चित्रा भाग कर रिक्शा पर बैठ गयी ! वह बार-बार रिक्शे के पीछे से देखती रही, जैसे उसकी दृष्टि में देवन अब भी उसका पीछा कर रहा हो।

थोड़ी देर जगकर ओम सो गया था। चित्रा को रोना आ रहा था। वह ओम से छिपाये पड़ी थी। उठी। बंगल के कमरे में गयी और रो पड़ी। जब जी भर गया तो देवन गीता को जैसे अपने सामने रख वह धर्म स्वर से कहने लगी— मैं सब के लिए बुरी हो सकती हूँ सब कुछ बन सकती हूँ यहाँ नहीं ! यहाँ नहीं ! तुमने मुझे प्यार से भी महान सत्य करुणा का दिया है। मैं उसके आगे झूठ नहीं बनूगी। जो विश मेरा है, उसे मैं ही पीऊँगी। मैं औरत कहाँ हूँ, उसकी

छाया हूँ। इसे मैंने तब जाना, जब मैंने गीता को देखा। गीता सत्य, मैं छाया । वह पत्नी में रोमांस। पतनीत्व में रोमांस न जोड़ो देवन। वह बाँधेगी, मैं तोड़ूंगी, फिर अन्त क्या होगा ? शून्य, अपरूप घृण्य। ओम मुझे कभी भी त्याग देगा, हम में आधार नहीं है। तुम गीता अलग नहीं हो सकते, क्योंकि गीता जो है, वह भूमि है, भाव है, आदर्श है पाथेय है।

उसके ओठ भावों में ठीक उसी तरह कँप रहे थे, जैसे, चित्रा को याद है, ज बवह कन्वेन्ट के जूनियर कैम्ब्रिज में पड रही थी, बाइबिल पाठ के समय उसके ओठों पर एक अव्यक्त कंपन हुआ करती थी।

10

माँ मुझे बनारस ले आयी है—मेरे अतीत से मुझे जोड़ने। उसकी दृष्टि से मेरे अतीत से मेरा बचपन था—सुखद—षान्त मधुर—स्वस्थ और आकर्शक। मेरे अनुसार वह सब भ्रम है, वह एक ऐसा भागा था। जो अपूर्ण, अस्वस्थ और अविकसित था ; आज की दृष्टि से। 'आज' मुझे ससुराल में मिला, 'गत' मुझे पीहर में दिखा।

माँ मुझे देख कर प्रायः रोती है। अपना माथा ठोककर कहती है। 'हाय' ! मेरी गित्ती को क्या हो गया ? कैसे, क्यों पीली पड़ गयी ? औंटे हुए दूध जैसा रंगा था राम, क्या मार गया ? जब वह माँ हुई थी, मैं दो बार लखनऊ में उसे देख आयी थी—सूरजमुखी जैसे खिल आयी थी मेरी बेटी ! सींक से कोई छू दे तो खून निकल आता । कहाँ उड़ गया सब ? मैं क्या खिलाऊँ ? किस डाक्टर बैद्य को दिखाऊँ। मुआ। कोई बीमारी ही नहीं बता पाता ? और यह लाइली जो है, वह भी तो नहीं कुछ बातती। हँसती है तो बस हँसती ही चली जाती है। उल्टे मुझे ही बेवकूफ बनाती है। कि मुझे क्या बीमारी है ? दोनो समय पेट भर खाती हूँ, सांस भर पचाती हूँ, नींद भर सोती हूँ । तो बीमार कहाँ हूँ। सब तेरा बहम है माँ।"

पर माँ कि रोती ही रहती है—अकारण, अलक्ष्य ! जैसे दुनिया की माँ का यही काम है। काम भी नहीं, मानो एक सत्य को पकडना है— बेटी हो तो झट से दूल्हन बनो, झुक जाओ—दूल्हन हो तो फोरन माँ बनो, देर लगी तो बस षंका—चिन्ता ! तब और झुको, और ! फिर माँ बन जाओ और माँ बनकर सदा रोओ !

मैं माँ को क्या बताऊँ कि मैं कहाँ बीमार हूँ ? मुझे स्वयं भी तो नहीं पता है। नहीं तो मैं ऐसी क्यों लगती, कोई उपाय न कर लेती।

पिछले दिन माँ मुहल्ले की दायी को बुलाया था। उसने अजीब हाथों से मेरी अँतरी—पसली को दवाया था। मुझे इस मूर्खता पर हँसी आयी थी। तभी मिसेज घोघ की वह बात याद आयी—नर्स—मिसेज पाल सिंह के बारे में। अजीब है यहाँ के लोग। कोई भी मध्यम मार्गी नहीं है, सब के सब चरम सीमा के है।

बनारस क्यों नहीं उसी तरह हो जाता ! यह गली मेरी यह जन्म भूमि चौड़ी खुली हुई सडक क्यों नहीं हो जाती ?

अब बनारस पसन्द नहीं आता है बनारस क्या है, बस गलियाँ ही गलियाँ है—गलियाँ जुड़ गयी है—जहाँ जीवन बँध कर चक्करों में घूमता हुआ बीत जाता है। और यह गदौलिया की गली तो मुझे और भी नहीं पसन्द है इसमें से कोई कार तक नहीं गुजरी है।

पर मुझे यह अपना जन्म घर बेहद पसन्द है—विशेषकर इसका आँगन। अब आँगन की अपेक्षा छत का अपना कमरा भी नहीं अच्छा लगता। रहती उसी कमरे में हूँ लेकिन पहले की तरह नहीं, पहले को उलटकर।

और सोती हूँ माँ के कमरे में। उस कमरे में तो अब न जाने क्यों बहुत बुरे—बुरे स्वप्न दीखती हूँ। सागर तो सोते—सोते में चीखकर रो पड़ता है।

एक दिन पिता जी ने बहुत दुलार कर लाड़ से पूछा—गित्ती ! तुझें क्या हो गया है गित्ती? कई बार उन्होने पूछा । माँ भी आ गयी। तब मुझे एकाएक ऐस लगा, कि यहाँ मेरे देवन

की मान हानि है। मेरे प्रति उसकी सच्चाई और पति पत्नी सम्बन्ध के प्रति अविश्वास है। मैं छू गयी। मन उबल पड़ा। ठीक तो हूँ। क्यों मेरे मन में बरबस यह विशाक्त भावना भरी जा रही है कि मैं बीमार हूँ, अस्वस्थ हूँ। ऐसा कुछ होता तो देवन मुझे यहाँ आने न देते ! कीमती से कीमती दवाईयाँ हुई होती। अति आधुनिक उपचार हुए होते । मेरे लिए देवन द्वारा क्या नहीं हुआ होता !

तीन दिनों से मेरे सर में दर्द हो जाता था। बहुत रात तक माँ मेरे सर को दबाती रहती, पर नीद नहीं आती थी। एक रात मुझे अपने पर रूलाई आ गयी। माँ के अंक में अपने सर को गड़ाकर मैं सिसकने लगी। न जाने क्या वे सर पैर की बक गयी—मुझे स्कूल कालेज में क्यों नहीं पड़ाया ? प्राइवेट क्यों पढ़ने दिया ? घर में बाँध कर रखा था, न कहीं आने देती थी न जाने। न घूमना न कहीं उठना बैठना ! दिन रात चरित्र—चरित्र चिल्लाती थी, पिताजी आर्यसामाजी और तुम भक्तिन ! सत्यवान के किस्में !

सच, मैंने तो माँ को चिढ़ाने के लिये वैसे ही कह दिया था। कोई भाव थोड़े थे उसके पीछे, न कोई सत्य ही था । पर माँ ने उसमें न जाने कैसे भाव दूढ़ लिये। पिताजी से कह दिया। उन्होंने सत्य जोड़ लिया। मुझे एक दिन उन्होंने बुलाया। कहने लगे—'गित्ती, जब तू बच्ची थी कोई रंगीन चीज कुछ भी क्यों न हो—आग—फूल—साँप, सब के लिए तू टूठ पडती थी। इसका स्वभाव न गया। लखनऊ रंगीन शहर है। रंग आकर्षक होता है। मोहक नहीं, तू इसे अब भी नहीं समझती।'

कहकर पिताजी हँस पड़े। मैं भागी कहाँ से।

सरोज जो थी—मेरे मामा की लड़की ; प्रतापगढ़ में अध्यापिका हो गयी। हैं विवश होकर उसके पति ने अपनी दूसरी शादी कर ली है। सरोज में तब से भेट भी न हुई । कभी पत्र व्यवहार भी न हुआ। उसकी बेहद याद आती है, पर उससे मिलने को जी नहीं होता। डर सा लगता है।

मेरे अंक के दूध के सम्बन्ध में माता जी ने जब पूछा था, मैंने कह दिया। था—पुरु में हुआ था, बाद में अपने—आप बन्द हो गया। बाबा विष्णुनाथ का उसने मुझे कई दिन दर्शन कराया । लोलारक कुँड को दो बार झँकाया। भगवान ! इन बातों को अगर देवन सुन पाये तो क्या हो ? मुझ में भी अभी तक इतनी हिम्मत न आ सकी कि मैं मुँह खोलकर कह दूँ कि मुझे इन पर विश्वास नहीं है। मैं वह गित्ती नहीं जो पहले थी। जो लखनऊ के स्तर से बहुत आगे बढ़ गयी थी। मैं अब वह गित्ती हूँ— जो अपूर्व हूँ ; जो अपने से बहुत आगे बढ़ गया है। देवन के पाथेय से जो बिल्कूल नये, असीम क्षेत्र में पहुँच गयी है। उस क्षेत्र ने मुझे नयी दृष्टि दी है। मेरे अभावों को बतला दिया है।

.....गीता और देवन.....

.....

पिछले इतवार को एकाएक बीरू ने बताया कि सरोज दीदी आया है। मैं टाल गयी। सरोज के नाम को पीने लगी। पर जैसे उसका नाम इतना लम्बा और ज्यादा था कि मुझसे निगला ही न गया।

सरोज मुझसे मिलने आयी। खबर पाते ही मैं दौड़कर ऊपरी कमरे में चली गयी। सो जाने का स्वाँग कर मैं वही चुपचाप, जैसे बेखबर सो गयी। मैंने अपना सारा अंग छिपा लिया था। सरोज ऊपर आयी। कुछ क्षण मेरे पास खड़ी रह कर चली गयी। उस क्षण मेरी धमनियों में इतनी तेजी से रक्त दौड़ रहा था कि मैं कितनी रक्तवादी हो गयी थी। जब वह चली गयी, तब मुझे लगा, वह सारा अतिरिक्त खून साँस बन गया और मेरे फेफड़े उससे कस गये। वह सब क्या था, क्यों हुआ? मैं अब तक न समझ सकी।

सुबह शाम जब माता जी अपने भागवान की आरती उतारती है और मैं उस पूजा के सामने खड़ी होती हूँ, तब मुझे बरबा चित्रा की याद आती है।

वह भगवान की प्रतिमा बनती है। बाँह फैलाकर वह मुझे जैसे कुछ देती है। सतत देती रहती है। श्रद्धा में मेरी आँखें मुद जाती हैं। प्रणति में मैं झुकी हर जाती हूँ।

साँप में से अगर विश निकल जाय तो शायद साँप ऐसा प्रभुविष्णु मोहक—रतुत्य जीव संसार में और कोई न हो। चित्रा मोहक है—स्तुत्य है—प्रभुविष्णु हैं उस में कही भी विश नहीं है। विश उनमें है जो उन आँखों से उसे देखते हैं।

न जाने क्यों, चित्रा को बुआ कहने की इच्छा होती है। पर मैं उसे कभी ऐसा नहीं सोचूगी। क्योंकि बुआ के पीछे जो मेरे मन में एक चित्र बनता है। वह अजीब कारुणिक है—विधवा, अपकृत, पर जिस में ऐसी अतुल उदारता, पहली वर्ष गॉठ 'डी हेविन' में इतनी धानदार ढंग से मानयी जायगी कि लोग सोचेंगे।

लोग तो नहीं, केवल मैं आज सोचती हूँ— वह सब भावुकता थी—स्वप्न थे जिनेक बहुत ही अस्पष्ट आधार थे। देवन ने माँ से बचन ले लिया थे कि बेबी अपनी वर्षगॉठ के पहले लखनऊ चला आयेगा। देवन बनारस आयेगा और हमें लिए हुए लखनऊ लौट जायेगा।

मेरे सागर की वर्षगॉठ हो गयी। बीती नहीं, मनायी गयी। बीतेगी क्यों सागर अपनी माँ के आँचल में जो है। अब तक धरती रहेगी, सागर रहेगा ही—बल्कि सापेक्षिक है दोनों।

चित्रा का उस दिन मेरे सागर के नाम पार्सल आया था—कपड़े थे, बिस्कुट—टाफी थे, अग्रेजी खिलौने थे। कार्ड बोर्ड की ग्यारह पृष्ठों वाली एक रंगीन पुस्तक थी और सब के बीच अमलतास के फूलों का एक गुच्छा था।

देवन को वर्षगॉठ की तिथि भूल गयी होगी। दार्शनिक जो है। लग गया होगा किसी और धुन में! जहाँ लग जाता है। वही का हो जाता है। मुझ में अपनी रूचि स्तर पर लाने के लिए विकास दे रहा था, तो अपने को भूलकर। कितना उदार है देवन! मैं ने तो वहाँ देखा है, कौन किसको लेकर आगे बढ़ता है। बढ़ने के लिए संग तो बल्कि छोड़ देते हैं लोग—निस्संग बढ़ते हैं। अगर संग छूटता नहीं देखते तो उसके लिए भी वहाँ अनेक उपाय हैं। यह सत्य, अपनी रूचि, अपने स्तर के साथियों के प्रति है।

में वह देवन हूँ, जो अपने में से थकर बाहर आ निकला है। इस समय 'डी हैविन' षान्त है—कोई नहीं है। यहाँ ! न बेबी न गीता, न कोलहाल भरे उसके संसार की थकान। बस, मैं हूँ केवल — मैं और मेरा शरीर । शरीर में बोध नहीं है, क्योंकि मैं उस में निकल आया हूँ। मेरे किनारे का वातावरण ठीक उस षान्त तालाब जैसा है जिस पर अभी-अभी संध्या का सूर्य डूबा है। तब उसके नीर-तल पर एक घोघा निकला है। अपनी खोल से भी बाहर, जैसे एक ही सत्ता के दो रूप।

वह मैं हूँ, वह मेरी गीता है, और वह बेबी है—नहीं, हम देनो है नहीं, नहीं वह नन्हा सा 'स्नेल' है, हम उसकी खोल है, जिसकी उस 'स्नेल' से अलग कोई सत्ता नहीं है। वह नन्हा सा जीव ही सब कुछ है दिषा, गन्तव्य जीव्य—सब कुछ।

एक दिन जब कोई धीमर आयेगा और तालाब में जला डालेगा तो क्या होगा ? उस नन्हे से जीव का तो खेल होगा और हमारी?

ळम उस से अलग हो जायेगे। हम खोल नहीं है मनुश्य है.....एक नर है, एक मादा, एक पुरुश, एक प्रकृति, एक भोगी, एक भोग्य । हम फिर से बहेगें, फिर से मिलेगे और ऐसा मिलेगे कि हममें कोई न आयेगा।

पर ऐसा होगा कैसे ? कभी नहीं हो सकता। धर्म तो रहेगा ही, प्रकृति तो रहेगी ही, किसी भी रूप में रहे।

अकेले में सहन न कर सका, तब में अपने में जा मिला। एक पर एक कई सिगरेट जलाता रहा। मुझे प्यास लगी। चायी की सुधें हुई। आफिस की याद आयी। 'डी हैविन' से निकल भागने का जी हुआ, जैसे कोई स्वप्न में भागता है—वह दोडता है पर शरीर छटपटाता ही रहता है। और दौड का अन्त क्या होता है। कुछ नहीं, अडोल-स्थिर, वही का वही।

यह क्या हो गया ? विवर्त में एक तिनका आ गया था। तो तिनका पर विवर्त को ही तोड गया, खुद न टूटा, उसे ही वहा ले गया।

क्या किया गीता तूने मेरे साथ ? क्यों मुझ में आयी तू ? तुझे तो कही और जाना चाहिए था। किसी और को तू बहा ले जाती। मुझे क्यों ? मैंने क्या किया था तेरे साथ ? क्यों तूने मुझे छूकर भर दिया ? इस द्वन्द्व, इस चिन्तना, इस भाव को क्या करूँ ? सच मैं तो मर जाऊँगा घुटकर इनमें। मुझे मेरी जमीन चाहिए, तेरा आकाष लेकर मैं क्या करूँगा ?

मैं तुझे कुछ और देता हूँ। पर उसे तू लेकर कुछ और बना लेती है। तो, शक्ति तुझ में है, मुझ में नहीं । जैसे दिवालिया होकर कुछ देने बढ़ता हूँ, तो वह झूठा हो जाता है। धनी तू है, क्योंकि जो तू देती है। वह सत्य हो जाता है। और वह सत्य तुझ पर लौट भी जाता है। जैसे दर्पण की छाया, जो धूप में चमका कर सिकी दीवार पर डाली जात है। तेरा बेबी तेरा सागर, तेरा सत्य !

इसे मैं क्या करूँ ?

एक रात मैंने अपने को बाँधा। ऐंजिलो को लिए हुए मैं अपने जीने पर चढ़ कया। जैसे दरवाजे पर गीता तू मिली, गोद में अपने सागर को लिए हुए । मैं लौट पडा। ऐंजिलो को विदा दे दी।

न जाने कहाँ चित्रा रहती है। मिलती ही नहीं। जब मिलती भी है तो बस चुप रहती है। कुछ बोलती है तो बार-बार यही—'बनारस जाओ, गीता को बुला लाओ। चिट्ठी दी ? सागर की वर्षागॉठ आने वाली है। गीता आयेगी, तभी मैं तुम्हारे घर आ सकूँगी।

यह सब क्या है ? ये नियम क्यों बाँध जा रहे हैं ?

एक दिन आया ने कहा, बाबू जी बहू को जल्दी लिवा लाइये। मैं सोचने लगा, मैंरे स्वार्थ के लिए और लोग क्यों चिन्तित होते हैं ? सम्भवतः यह इसलिए होता है कि मनुष्य मनुष्य को कही भूलने नहीं देना चाहता। उसे सदा उसकी आवश्यकताओं की याद इसलिए भी दिलाई जाती है कि वह उसकी कमी महसूस करे।

मैं देखता हूँ, आया रोज गीता के लगाये हुए तुलसी के पौधे में पानी डालती है। बहुत ही हरा भरा पौधा है। इस में फूल भी आयो है, पर इसमें फल क्या लगेंगे ?

पिछलें कई दिनों से रोज संध्या को सोचता हूँ कि रात की गाडी से बनारस जाऊँगा, गीता को ले आऊँगा। पर मन जैसे कुछ पकड़ता ही नहीं। मन मेरा नहीं है। उसकी सत्ता ही मुझ से अलग है। वह फिसलता है और मैं उसे पकड़ना ही भूल जाता हूँ। गीता चित्रा बन जाती है ; चित्रा गीता ही जाती है और मैं सत्ताहीन हो जाता हूँ। ये सड़के मुझे स्टेप्शन नहीं ले जाती, भवर की तरह धूमने लगती है। तब मेरा क्या दोष ?

तब मे रात को अक्सर स्वप्न देखता हूँ, बनारस में कुमार गीता रानी की षादी हो रही है। मैं निमन्त्रित हूँ। मैं जाता हूँ। जो कुछ मैं उसे उपहार देने लगता हूँ, वह सब देते ही मेरी आँख खुल जाती है। फिर मैं स्वप्न की बलवती लज्जा से गढ़ जाता हूँ। प्रायश्चित से मेरा मुह रंग उठता है। तब मेरी हिम्मत पस्त हो जाती है। कि मैं किस मुँह गीता के यहाँ जाऊँ । गीता बडी है, बहुत पवित्र है, एक अनोखी षक्ति है उसमें। उसका अपना धरातल है। मैं उसे अपनी दृष्टि का विकास देता रहा, एक स्तर पर उसे उठा रहा था। आज मुझे सत्य लगता है कि वह बहुत आगे बढ़ गयी । उसमें इतना विकास आ गया है कि मुझे सब कुछ पिछडा-पिछडा और हीन सा लगता है।

मुझ पर कितना उपकार है उसका ! कितनी कृतज्ञता के बोझ से मैं लदा हूँ। जो कुछ मैं कह देता था, संकेत या इच्छा ही बनाता था, गीता के लिए वही पूजा हो जाती थी। उसने मेरे सन्तोश , मेरे अह के मानने में अपने को कभी न उभरने दिया। जैसे मेरे बिना वह अपनी सत्ता की कभी अनुभूति ही नहीं करती । यह प्यार नहीं है, आज मैंने समझा यह बस समझौता है। ये सब परिणाम है। विक्लपहीनता है सब।

तभी मैं गीता को नहीं बाँध पाता । बाँधने दौड़ता हूँ तो अंक में कुछ और आ जाता है। आँखे न जाने कहाँ चढ़ जाती है। घुट जाता हूँ।

अब मैं कल ही गीता को अपने पास बुला लाऊँगा। उससे दूर रहकर आज मैं उसे समझ पाया हूँ। मैं अब उससे स्पष्ट कह दूँगा — गीता ! मुझे प्यार चाहिए। वह प्यार, जो समान धरातल पर उतर कर दिया जाता है, जिसमें द्वन्द्व होता है। विरोध होता है। जहाँ 'नहीं' अधिक कहा जाता है, अस्वीकृति बहुत होती है। मुझे समझौता नहीं चाहिए गीता। मैं आज से इसे घोर अपराध समझूँगा। इसकी अपेक्षा, नंगी घृणा मेरे लिए श्रेयस्कार होगी।

प्यार के लिए एक इकाई होती है, एक दहाई —एक ही से कुछ नहीं होता। गीता ! तुम मुझ से अलग बनो। अपनी निरपेक्ष सत्ता बनाओ—मजबूत —अनोखी, जो सब को प्रभावित कर दे, मुझे तो रौद दे। मैं उसी को प्यार करूँगा। जो मुझे हराये। जो मुझसे हार जाये, मैं क्या करूँ उसके लिए ! उसे तो दया ही दी जा सकती है।

दया और समझौता, इन दो भूमिकाओं में ह मदद जायेंगे। मुर्दा होकर जीना पड़ेगा। ऐसी नहीं होने दूँगा। सागर बीच में आ गया है तो क्या ? हम मिलने के लिए उसे पार कर लेंगे। सागर पर भी तो पुल बाँध लिया जाता है।

बेबी नर्सरी स्कूल में भर्ती हो जायगा। गीता इसी यूनिवर्सिटी में एल0एल0बी0 पढ़ेगी। मैं उसे महिला छात्रावास में भी भर्ती करा सकता हूँ, फिर उसकी एक ऐसी अप्रितम सत्ता बनेगी। जिसे मैं जीतने चलोँगा।

जो सीधी है , जो बाहर भीतर एक सी है, पूर्णतः अपनी है, हरक्षण प्राप्य है, जिसमें एक भी ग्रंथि नहीं है, उससे क्या किया जाय ? उसे न जीतने में आकर्षण है, उसके प्यार के आग्रह में षक्ति।

गीता अपने साथ न सितार ले गयी है, न मेरे बनवाये खरीदे कपड़े। अपनी सारी किताबें भी छोड़ गयी है। केवल अपने सागर को ले गयी है।

केवल उसी की याद में डूब जाने के लिए, बहुत दिनों के बाद आज मैं षराब पीऊँगा। बेहोष कर लूँगा। तब मैं अपने भी सत्य को पहचानूँगा।

किसी होषियार से कहूँगा कि वह नषे की बेहोषी में मुझे पकड़ ले, मुझे नजदीक से देख ले। और जब मैं होष मे आऊँ तब वह मुझे मेरा बता दे। षराब पीने के बाद कोई झूठ नहीं बोलता। चित्रा को होषियार के रूप में रखूँ, तो केवल वही मेरे प्रति झूठ नहीं बोलेगी!

न जाने कैसी है गीता। चित्रा को भी तो तू प्रभावित कर गयी। पर मुझे क्यों नहीं करती ? सब झूठ है। सब झूठ बोलते हैं। छल करते हैं।

11

इस बार देवन को बनारस बिल्कूल न अच्छा लगा। गदौलिया की वह गली तो इतनी बुरी लगी, जैसे दूर देश का कोई पिछडा हुआ गाँव। उस घर के प्रति उस में न जाने क्यो एक दबी हुई उपेक्षा, अव्यक्त झुंझलाहट उठी।

एक सौतेली माँ देवन की थी। उसके विश चक्र में, देवन न आ सका, बल्कि उसे तोड कर वह अपने आप में स्वतन्त्र हो गया।

एक सौतेली माँ गीता की भी होनी चाहिए, वह जड़ है तो क्या ? जड़ में तो और षक्ति होती है। क्योकि किसी के प्रति उसमें राग नहीं होता। यह गली, यह घर, यह बन्द आँगन, इनकी एक सत्ता है, और यही सत्ता गीता की सौतेली माँ है— जिसके दो हाथ हैं—एक माँ के रूप में एक पापा के रूप में।

जो कुछ देवन के मन में था, उसे कोई न जान सका, सम्भवतः देवन भी नहीं। गीता के स्वास्थ्य को बिगड़ा देख, उस में समवेदना न जगी, क्रोध जगा। इस क्रोध को तब वाणी मिल गयी, जब गीता के पिताजी माताजी उस से शिकायती करने लगे, कि गीता को क्या हो गया ? किसी डाक्टर को नहीं दिखाया ? गीता को अभी लखनऊ न ले जाओ, कुछ दिन यहाँ और रहने दो।

एक-एक करके देवन सब से लड़ गया। जैसे सब को अप्रसन्न कर लेने ही में उसको शान्ति थी। कोई बहुत दिन का पुराना, भावों का वैर था, जो प्रतिकार की अपेक्षा करता था। देवन विवश था, अज्ञेय था, और जैसे वह प्रतिकार का भाव उसे मात्र साधन बना कर स्वयं कर्त्ता हो रहा था !

चूमे माता और पिता जी गीता को बनारस रोक रहे थे ; इसलिए अब देवन उसे आवष्य लखनऊ ले जायगा। उसका मन तर्क दे रहा था—गीता की अस्वस्थता का जिम्मेदार देवन नहीं ; उसका सागर है, जिस सीमा से निकल कर उसे गीता मिली थी, गीता को उसने अपनी अनुरूपता दी थी, उस गीता को वह उस गर्त में नहीं छोड़ सकता।

गीता के न माँ है, न बाप अकेला देवन है—यह गीता का विष्वास होगा। तो इस विष्वास को भोगना चाहिए। और इसका सुन्दरतम भोग वही माँ-बाप के सामने है।

जो भोगना ही है, उसे अपने अनुरूप बनाकर क्यो न भोगा जाय ?

पर इन भावों से देवन में कोई चित्र नहीं बनता था, वह बलात् एक चित्र की कल्पना कर लेता, और उसी चित्र के सहारे वह यहाँ तक पहुँच जाता था, कि गीता के माँ-बाप किसी तरह उसके विरोध में आते तो वह एक अनोखा परिणाम दिखाता—अनोखा ! प्रीतिकार बहुत सुन्दर।

उस अप्रीतिकार भाव में गीता को लखनऊ ले आना ; देवन को सुखकर लगा। 'डी हेविन' की गृहस्थी फिर प्राणवान हुई। तुलसी तले दीपक जला। घर का कोना-कोना धो बहार कर पवित्र किया गया।

आया बहुत रोयी। गीता से कहा, कि वह सदा उसके पास रहेगी। कानपुर वाले पर एक दुघर्टना हुई थी। घायल वह अस्पताल पड़ा था। आया ने उसके नाम पचीस रूपये मनी आर्डर किये थे। पिछले दिनों से उसके घर केवल एक समय भोजन बना था।

उसी रात मिसेज घोश आयी, दिन भर उनका पूरा परिवार कही बाहर गया था। घोश बाबू भी आये थे। गीता को देख, उन्होंने देवन के सामने कहा—‘कही पत्नी को इतने दिन पीहर में छोडा जाता है ? देखो, पीली, पड़ गयी न !’

दोनो को हँसी आ गयी। साथ ही दूसरे कमरे में सागर के रोने की आवाज आयी। वहाँ से गीता के जाते ही मिसेज घोश ने दवे स्वर से जैसे फटकारना शुरू किया, “किसी अच्छे डाक्टर को दिखाओ न ! गीता का कल एक्सरे करा डालो। उसमे कोई बीमारी घर कर रही है। दौड-धूप करो, षान्त कैसे हो ?.....बहुत भाग्य से ऐसी परिणीता मिलती है !”

उसी बीच, सागर को गोद लिये हुए गीता दिखाई दी। एकाग्र दृष्टि से देवन गीता के माथे पर देखने लगा , जैसे एकाएक उसकी दृष्टि बिना किसी अर्थ के गड़ गयी हो।

गीता को लिए हुए मिसेज घोश अपने घर चली गयी। देवन उसी मुद्रा में खड़ा रहा । उसकी दृष्टि में अब भी गीता के माथे ने उसे बाँध रखा था। चौडा-चौडा, पीला-सा माथ, केन्द्र में सुहाग सीमंत में सिन्दूर, स्वस्थ घुँधराले बाल, दोनो और कुचित अलकें, जो अब भी उस पीले माथ तक उड़ लेती है।

देवन ने सिगरेट जलाने के लिए हाथ बढ़ाया । तब उसे एकाएक ऐसा लगा, जैसे उस माथ से उसकी दायीं हथेली टकरा गयी। वह माथ पीला ही नहीं है, तप्त भी है। और वह श्रृंगार युक्त भी। जैसे उस सिन्दूर बिन्दू को कोई तपन नहीं है। जैसे कोई पुष्प है जिसका पौधा उस षरीर में है, जिसकी जड़ उस षरीर की आत्मा में है। गीता ! एक फूल ! फूल का पौधा, पौधे की जड़ षरीर और आत्मा।

देवन बारजे पर देखने लगा। पास चला आया, जहाँ देख रहा था, उसी पर दायाँ पाँव रखकर सड़क की ओर निहारने लगा।

रात को जब गीता सो गयी, देवन बहुत आहिस्ते से उठा। दायी हथेली में तेल लिये आया, झुककर गीता के सर में उसने डाल दिया। माथे को बायी हथेली से ढके रहा और सीधे हाथ की उंगुलियों की बेहद ढीली कर बिखरे बालों में घुमाने लगा।

गीता की आँख खुली, पर उसी क्षण अज्ञात आँसू से भर कर वे अपने आप ढँप गयी। और उसी तरह बन्द रही। गीता के जगे हुए दोनो हाथो ने देवन के झुके सर को बाँधा लिया, और उसे पलंग पर ला गिराया।

देवन ने बहुत धीरे से कहा, “गीता तुम बीमार हो न ! ”

गीता की पलकें हिली, और आँसुओ में पिघल गयी।

पर वह क्षण ही भर में हँस आयी।

“नीद आयी नहीं थी क्या ? ”गीता ने पूछा।

“तुम बीमार हो गीता। लगता होगा। षायद मेरे कारण तुम उसे अपने पर लगने नहीं देती। पर बीमारी तो लग ही जाती है — न इससे कोई बच सकता है, न इसे छिपा सकता है।”

“ठीक हो जाऊँगी इसमे क्या रखा है ! ” गीता मुस्करा आया, “पहले की तरह मोटी नहीं हूँ, यही तो अभाव है। देख लेना , फिर उसी तरह मोटी हो जाऊँगी। ”

“तुम्हारे वष में है क्या ? ”

“हाँ।”

“तो ऐसी हो क्यों गयी ?”

बड़ी देर तक गीता चुप रही। कभी आँखे बन्द कर लेती, कभी खोल कर एकाग्रदृष्टि से कही देखने लगती, जैसे दृष्टि के सहारे अपने को कही टॉग देती और उसे ही देखती। ऐसी देखती की दृष्टि ही वाणी बन जाती, नयन ही श्रवन हो जाते।

“क्यों हो गयी ?तुम्हीं जानों ।

यह कहकर गीता ने अपने को देवन के अंक में छिपा लिया । वही से दबे स्वर में बोली, “तुम्हे चिन्ता हो गयी, अब मैं अच्छी हो जाऊँगी।” बहुत देर तक दोनों चुप थे, जैसे मोन ही उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम था। गीता ने देवन के मस्तक को छूते हुए कहा, “अब सो जाओ।

बिना किसी प्रसंग के देवन बोला, “सुना है कि नहीं ?.....चित्रा देहरादून गयी है। जिस दिन मैं बनारस गया हूँ, उसी रात ।”

गीता इस सत्य को घूंट गयी, उसे आँठ पर नहीं आने दिया। और भी षक्ति से अपने में देवन को जकड़ लिया।

बँधी हुई कहने लगी, “चलो, कुछ दिनों के लिए कही टहल आया जाय। मुझे दक्षिण-यात्रा से न जाने क्यों बहुत मोह है, चलोगें ? बड़ी साध है मेरी ।”

“पहले अच्छी हो जाओ ! खूब अच्छी, उसी तरह, पहले की भाँति ।”

“उस से ज्यादा नहीं ? ”

दोनों हँस आये।

बारजे पर चॉदनी उतर आयी थी। सम गति से हवा चल रही थी, सामने, बिजली के तार तो स्थिर थे, पर उसके ही समानन्तर दूसरी और के तार रह-रह कर कँप उठते थे।

दोनों बारजे के पास आ खड़े हुए। गीता दोनों हाथों की बरसती हुई चॉदनी में भिगो रही थी। उल्लास से भरी हुई वह बारजे पर झुक गयी, जैसे वह अपने को सम्हाल नहीं पा रही थी। देवन उसके पार्श्व में खड़ा हुआ उस तार के खंभे को देख रहा था, जिनके सर पर खिंचे हुए सब तार कँप रहे थे।

आफिस में, मई का वेतन बॉटकर, जून की चौथी तारीख को दोनों नैनीताल चले गये। यद्यपि वर्षा आरम्भ हो चुकी थी वहाँ। एक-एक पत्थर धुल कर स्वच्छ हो गया था। हवा में प्रकृति के सौरी का भार आ गया था।

गीता अपने जीवन में पहली बार पहाड़ आयी थी—सो भी नैनीताल और वह भी अपने देवन के साथ, उसी की इच्छा से । अंक भरा है, नयन गीले है, स्वप्न साकार है, और चलने के लिए अपना राजमार्ग भी है—और क्या चाहिए।

धूप, वर्षा, बस्ती, पहाड़ , ताल या घाटी, गीता कही न थकती थी। किष्ती में घूमती हुई, ताल से ज बवह पहाड़ की ऊँची —नीची चोटियों पर बस्ती देखती , तब उसके मन में अमित—उत्साह से भरी एक साथ उठती थी — आगे—आगे देवन ही, बीच में सागर और पीछे—पीछे गीता हो, तीनों इन ऊँचाइयों पर पाँव रखते हुए चलें, चलते समय जायें।

दोनो एक दिन मैटनी षो देखने गये। पूरा हाल भरा था। जिस पंक्ति में उन्हे जगह मिली, उस परिधि में मख्यतः स्त्रियाँ अधिक बैठी थी। जो पुरुश भी थे, वे स्त्री के साथ थे। पर उस समूची परिधि में सागर अतिरिक्त कोई षिषु न था।

बैठते ही देवन को अच्छा न लगा। वह एक-एक दृष्टि निहारता था, और तब तक निहारता रहा, जब तक चित्र न आरम्भ हुआ।

बीच ही में वह हाल से निकल आया। सागर का रोना-हसना ये दोनों पक्ष उस दंष कर गये। वह आया को लाना क्यो भूल गया ? वह सागर को लिए रहती । और देवन-गीता पहाड़ पर विहार करने वालो की तरह असीम सुख भोगते। पर सागर है कि हरदम बीच में रहता है। यह कौन है ? क्या है ? उपयोगिता क्या है ? षायद यही कि सागर सदा बहता रहे,, और उसके दोनो किनारे उसकी संबा को बस चरितार्थ करते रहे।

नैनीताल से लौटते समय गीता ने देवन से प्रस्ताव किया कि वे पहले बनारस चलेंगे, तब लखनऊ । वहाँ पिता जी और अम्मा मुझे देख लेंगे कि अब मै कैसी हो गयी हूँ, देवन ने किस सम्मोहन षक्ति से मुझ में अमित प्राण डाल दिया है। न जाने क्या बीमारी थी, न जाने क्या दबा थी, मुझे तो कुछ पता ही न लगा। बनारस में सब को आष्वर्य में डाल दूँगी। माँ से कहूँगी, लो अब फिर से सारे कपडे बनवाओं, उस बार के सारे कपडे तंग हो गये न ! सच, वहाँ सब आनन्द से पागल हो जायेंगे। देवन तुम उन लोगो से अकारण लड़ कर आये थे न, वे तुम्हे पलकों में रख लेंगे।

लखनऊ न आकर वे बनारस गये। एक दिन के लिए गये पर तीन लग गये। इस बार,गीता को , वहाँ सरोज की बड़ी याद आयी। उस से मिलने का बहुत जी हुआ। कई बार उसके घर गयी। अन्त में प्रतापगढ तार दे उसे बुलाकर छोडा।

बहुत बदली हुई सरोज उसे मिली। उसका स्वास्थ्य तब से बहुत गिर गया था। मुख पर प्रौढता आ गयी थी। पर अब वह कटु न थी, अपेक्षाकृत कोमल हो गयी थी। ईष्वर पर उसकी भक्ति में उस अपार श्रद्धा हो चली थी। जैसे तब उसका आध्यात्म सुशुप्तावरथा में था, अब जग गया।

लखनऊ आकर देवन को कभी-कभी ऐसा अनुभन होता था कि वह कही पीछे छूट गया है। किसी ऐसे रास्ते पर वह अंजाने मुड गया, जो उसे आगे ने ले जाकर पीछे बढा ले गया है।

यहाँ आकर देवन के दो टुकडे हो जाते थे। दोनो टुकडे विरोधी तत्व के होते हुए भी एक-दूसरे को समझा बुझा लेते थे। तब उसकी इच्छा होती थी। वह एक न होकर दो टुकडो में ही रहे। क्योकि एकीकृत होकर वह अपने-आप से लडता था और घुटता हुआ आत्मदंष सहता था। और तब वह बहुत दृढता से जोडने के लिए अपने दोनो टुकडों को अलग-अलग करके देखता था। एक टुका, जो राजनीति में एम0ए0 है, पैसे का धनी है, बहुत रंगीन मोड़ो से जिसे गुजरना पडा है ; जिसे केवल पार्थविकता में प्रतीत है, वह टुकड़ा, जैसे उसका नही है, कुआरा ही बिक गया है। और उसका मूल्य उसे नही मिला है, उल्टे उस को ही मिला है, जिसने खरीदा है यह टुकडा दिवालिया है। और दूसरा टुकडा, जिसे माँ की ममता नही मिली है, प्रतिक्रिया में पला है पर व्याह गया है, माँ जैसी प्रतीति और प्यार देने वाली पत्नी मिली है—वह

अपने मे कृतज्ञ है, अनके भावो से भर गया है, पर अभिषाप यह है कि इस में अपने प्रति अपनी कोई दृष्टि नहीं है—पहले है—की छाया से यह अन्धा पड़ गया है।

उस दिन सुबह से ही वर्षा हो रही थी। देवन उदास बैठा था। गीता आयी बॉह के घेरे में उसे बॉध लिय और चुपचाप उसकी आँखो में देखने लगी, जैसे वह देवन की सारी उदासी पी रही हो।

एक बिन्दू पर आकर दोनो हँस आये।

बडी—बडी आँखो में बहुत कुछ घोल कर गीता बोली, “सितार बजाऊँ.....मल्हार.....मेघ मल्हार ।”

“नहीं ।”

“कहो तो कोई गीत गाऊँ। फिल्मी या कोई और ? ”

देवन बोला नहीं, पानी के बँधे हुए तार को देख रहा था। तार एक—एक करके आते थे, पर न जाने कैसे टूटते जाते थे—एक से दो, दो से भी अनेक।

गीता ने षिषुवत् पूछा, “क्यो देवन। रूठे हो क्या ? ”

वह मुस्कराता हुआ हँस पड़ा और मनोयोग से गीता को गुदगुदाने लगा। हँसते—हँसते गीता की आँखों के काजल बह गये। पास ही सोता हुआ सागर जग पड़ा।

गीता ने भक्ति स्वर से कहा, “मुझे बताओ, अब मै क्या करूँ ? विकास पाने के लिए सतत कोई योग होना चाहिये न !क्या सोच रहे हो ? ”

देवन की दृष्टि गीता पर पड़त ही जैसे अपने—आप में निस्तेज हो गयी। पर उतने ही वेग से शरीर मे उन्माद भर आया। वह फिर गीता को गुदगुदाने लगा और उसी बीच देवन हँसी में डूबकर कहता गया, “अब कुछ नहीं ! कुछ नहीं, कोई विकास नहीं, तुम स्वयं विकास हों। कौन कहता है तुम पिछड़ी हो, तुम में अपेक्षा है। अपूर्ण हो तुम । कौन कहता है यह ? ”

गुदगुदी बन्द करके जब दोनो का उफनता हुआ मन —प्राण स्थिर हुआ, देवन ने गम्भीरता से कहा, “इस तरह से तो सब में कुछ न कुछ अपेक्षित होता है, सब अपूर्ण है।”

सागर गोद में था। और गीता का मन बेहद हल्का था। वह षान्त दृष्टि से बरसते हुए बादलों को देख रही थी, जो बहुत ही छोटे क्षेत्र में उसके कमरे से दिख रहे थे।

षाम को घर लौटकर देवन बहुत थका—थका सा था। दायें हाथ में सार टेके वह चुपचाप सौफे में धँसा रहा । गीता आयी ; जूते के तसमें खोलने लगी। देवन हिला नहीं। पैर से मौजे भी उतर गये। तब उसने दोनो पैरो को भी मोडकर सौफे मे भीच लिया।

गीता वही चाय ले आई। उसके लिए सिगरेट जला दी।

चाय पीते—पीते देवन ने कहा, “एक स्कीम सोचता हूँ गीता ! ”

गीता जिज्ञासा से चुप ; उसे तकती रही।

“सोचता हूँ तुम इस युनिवर्सिटी में एल0एल0बी0 कर डालो ! ”

“एल0एल0 बी0 ! ” गीता कुछ कह न सकी !

“सुबह को यहाँ 'ला क्लासेस लगते है, कर डालो अच्छा रहेगा। ”

गीता हँस आयी, “वकील क्यो बनाओगे ?.....स्त्री नहीं रहने दोगे क्या ? ”

“स्त्री तो हो ही ।”

“लेकिन तब तो वकील हो जाऊँगी। “गीता मुस्कराती रही।

“सागर को तब तक सुबह आया सन्हाल लेगी। मैं रहूँगा ही, या सबसे अच्छा होगा, उसे किसी उम्दा नर्सरी स्कूल में रख दूँगा !”

गीता वहाँ ठहर न सकी, भगी, आया के पास गयी और सागर को अपने अंक में भर लिया। फिर कमरे में लोटी।

और उदास मौन बैठी रही।

“क्या सोच रही हो ? ” देवन ने पूछा ।

“कुछ नहीं । ”

देवन कहता जा रहा था—वकालत की प्रशंसा कर रहा था, युनिवर्सिटी में पढ़ने के पक्ष को मजबूत करता जा रहा था, और उधर गीता आज पहली बार देवन से अपने बॉध कर स्वयं की उपेक्षा करती जा रही थी। उसका मन विरोध से भरने लगा, जो अपने में ही सुलग कर राख होते जा रहे थे। अज्ञात न जाने कब के कुचले, घृणित भाव, सर उठा—उठा कर सामने आने लगे, जिन्हे गीता विश की तरह पीती गयी। एक को भी न उबरने दिया। भावों में उसने अपने माँ का कंधा जगड़ लिया और उसके चौड़े वक्ष पर वह अपने सर को पीटने लगी।

जैसे शरीर का सारा रक्त गीता के मुँह पर आ गया था, और तप्त होकर वह भाव की रेखाओं में फट कर निकल जाना चाहता था।

अवष गीता फूटी, पर अव्यक्त—अधूरी, “मुझे नहीं चाहिए !”

“क्या ? ” देवन ने पूछा।

“कुछ नहीं ! ”

तेजी से गीता वहाँ से हट गयी। आया के पास चली आयी। ठंडे पानी से वह अपने मुँह धोने लगी, आँखों में बार—बार पानी के छीटे देने लगी।

देवन पास आ खड़ा हुआ । छाया की तार गीता के पीछे—पीछे लगा रहा। उसे कमरे में रोककर बोला, “मैं यही चाहता था, तुम कभी मेरा विरोध भी तो करो ! मैं चाहता हूँ।”

गीता रोककर उबल पड़ी, “तुम कुछ नहीं चाहते। जो कुछ चाहते भी होगं उसे जानते ही नहीं । सच, कुछ नहीं है।”

फिर आँसू पीती हुई बोली, “पता नहीं, तुम क्या चाहते हो देवन ? ”

देवन उसके सामने आना चाहता था, पर वह अपनी आँख चुराती रही। आया के पास आई, तो आया को आभाश न होने दिया कि वह रोई है, घर में कही कुछ हुआ भी है।

रात को फिर वर्षा हुई । न जाने क्यों सागर बहुत देर तक रोता रहा।

किसी विधि सोता ही न था। अन्त में उसे लिये हुए गीता दूसरे कमरे में जा लेटी, और ईश्वर से यह प्रार्थना हुई सागर को अंक में सुलाये, स्वयं सो गयी, कि हे प्रभू ! सुख की नीद मेरा देवन सोये सागर सोये, उनके जागरण को मैं जागूँ। उनके द्वन्द्व को मैं भोगूँ, उनके दुखों से मैं निकलूँ।

कोई स्वप्न देखते-देखते वह जग गई। वर्षा बन्द हो चुकी थी। बाहर धुली हुई चाँदनी फैली थी।

देवन के कमरे में रोषनी थी, षायद बुझाना भूल गया था। वह कमरे में गई। एक क्षण देवन को निहारती रही। रोषनी बुझाने बंदी।

सहसा देवन की आवाज आई, "रहने दो इसी तरह।"

कातर दृष्टि से वह देखती रह गयी। देवन आँख मूँदें पडा रहा। वह पायताने आकर बैठी, देवन का पाँव सहलाने लगी।

"मुझे जलील मत करो गीता।"

उसने तेजी से सर उठाया, पर आँखें न खुली। और उसी गति से अपने सर को उसने तकियें पर गिरा दिया।

गीता राकर बोली, "मुझे क्षमा करना देवन ! आज जैसी मैं कभी भी न बोलती थी, न जाने कैसे मेरी वाणी मेरे संयम को तोड़ गई।"

गीता सिसकती रही, पर देवन सब से अलग था, वहाँ कोई भी प्रतिक्रिया न थी। सब कुछ गीता में घट रहा था। वह चाहती थी, बहुत थोडा सा मान था उसका, कि देवन उसे देख भर लें, ब सवह पिघल जायगी। वहीं सो जायगी—ताकि नयी सुबह अच्छी हो, आज के विश को वह अपने अमृत स्पर्ष से षिव बना दे।

पर देवन जैसे सो गया। गीता बैठी रही। बाहर की चाँदनी न जाने कब काले बादलों में खो गई। फिर तेजी से वर्षा होने लगी। गीता को एकाएक अपने तुलसी के विरवे की सुधि आयी। वह पानी में भीग रहा था।

गीता बाहर निकली, चुप अँधेरा था, जिसे पीटता हुआ मूसलाधार पानी बरस रहा था। उसी में पिल क रवह अपने गमले को उठा लायी। उस की जड से सब पानी गिरा दिया। दो पत्तियाँ तोड़कर उसने मुँह में डाल ली। उसके रस से मुँह की ज्वर सी साँसे धीरे-धीरे षान्ति प्रद हो गयी और उसके भीतर की सारी कडुआहट पूजा की सुगन्धि में धुल गयी।

सुबह होते-होते गीता की आँख लगी, पानी की बूँदे अब तक न टूटी थी। देवन उठा। गीता के कमरे में आया। बेबी उठकर अपने आप खेल रहा था, माँ बेखबर थी।

देवन ने बेबी को चूमने के लिए मुँह बढ़ाया तो उसने किलकारी मार कर पापा जी की जुल्फों को कस लिया। तभी गीता जग पड़ी। देवन हँस रहा था, बेबी खेल रहा था, गीता संभ्रम से मुस्कराने लगी। जैसे सब हर गया, सब गल गया।

12

तुलसी के बिरवे में फूल आ रहे थे। बड़े ही अनुपम-सौन्दर्य के फूल थे—भूरे-भूरे काले सुनहले सिर और बाँधे हुए। हरी-हरी जवान झकझोर पत्तियों से पौधे भर की टहनियाँ, षाखाये तने —सब पट से गये थे। और सब के ऊपर, सब के चरम विकास, सब की कलेगियों पर फूल के गुच्छे उत्तर रहे थे।

एक और, सुबह की धूप उतर रही थी। दूसरी और चम्बेली की लतर पर उड़ती-टटोलती हुई एक तितली तुलसी के फूल के किनारे-किनारे चक्कर काटने लगी थी।

आया बैठी सब्जी काट रही थी। गीता से अंक में सागर था, अपलक वह तितली को देख रहा था। गले में टाई की गॉठ बाँधता हुआ देवन आ खड़ा हुआ।

तब आया बोली, “बाबू जी हम सब का एक फोटू खिचवाइये, आप हो, रानी बहू हो, बीच में राजा भइया हो सब के पीछे मैं रहूँ।”

उल्लास से गीता बोली, “और इसी जगह फोटू खिचाया जाय, यही छोटा सा, नाम का आँगन, चम्बेली की लतर, फूलों से लदा हुआ यह तुलसी का विरवा।”

देवन मुस्कराया ! बेबी को चूम कर चला गया। और उसी षाम को, ठीक उसी तरह सब का एक सम्मिलित चित्र खीचा गया। उसी क्रम में और भी कई चित्र खिचे। अकेले सागर का, अकेली गीता का, अकेले देवन का।

गीता दौड़ी हुई मिसेज घोश को पकड़ लायी, साथ प्रतिमा जिया को भी । सब के साथ फिर एक सम्मिलित चित्र खिचा।

षाम होते-होते, जब सब चले गये, अकेली गीता रह गयी, तो उसके मन में एक और भी इच्छा उठ रही थी, चित्रा होती, तो उसके भी साथ एक सम्मिलित चित्र होता । इस भाव को लेकर सोचती रहना, गीता को अत्यन्त प्रीतिकर लग रहा था।

सब चित्र अच्छे आये थे। गीता के मन में एक दूसरा भाव उठा। वह अपने परिवार का एक चित्र बनारस भेजे—बीरू के नाम, दूसरा प्रतापगढ़ सरोज के नाम, और तीसरा दिल्ली—षकुन जिया के पास।

पर वह सरोज के पास न भेज सकी। अन्तर ने मना कर दिया। देवन ने चित्र के साथ बनारस एक पार्सल भेजा, बीरू के लिए कपड़े थे उसमें।

षकुन जिया के पाँच बच्चे हो गये थे, मुन्ना, चुन्ना और छोटी दो बच्चियाँ थी टूल और फूल। लगातार तीन दिनों क परिश्रम में गीता ने सब के लिये कपड़े सिले, खिलौने मँगाये, कई गुडियाँ बनायी और उनका पार्सल षुकुन जिया के नाम किया।

उसी रात देवन ने बताया, चित्रा आ गयी। कल रेडियो पर उसके संगीत का कार्य क्रम है। दूसरे सप्ताह में उसे एक रूपक में भाग लेना है।

गीता चुप रह गयी। सागर को अपने अंक में छिपाये हुए वह षकुन जिया की सुधि करने लगी। मन को बनारस ले जाकर वहाँ के घर में अपने को बन्द कर लिया। जिस कमरे की आलमारी में उसकी पुस्तके बन्द थी,

जिस स्थान पर माँ के भगवान प्रतिष्ठित थे, उन सब स्थलों से वह अपने आप की बाँधने लगी।

पर कही कुछ बँध नहीं रहा था। भीतर जैसे बडी जैसे तेज हवा वह रही थी। सेमर के पेड़ में उसके पके हुए फल। हवा लगते ही फल चटख कर टूट रहे हो ओर उसके भीतर की सारी रूई, उसका भुआ और उसके एक-एक रेषे बिखर रहे हो। गीता ऐसा देखने लगी। बहुत बचपन में उसने ऐसे सेमर के पेड़ को आँधी के बीच देखा था।

सुबह गीता के उठने के पहले ही देवन उठ गया था। संभवतः टहलने चला गया। धीरे-धीरे नाश्ते का समय बीत गया। दस हो गया। तब वह दौड़ी, रेडियो खोला, उसमें से कुछ आवाज आयी कि सहास देवन आ गया।

छूटते ही बोला, "सुना न ?"

गीता ने सर झुका लिया, निष्चेष्ट वह कमरे से बाहर निकल गयी। कमरे में सागर बेहतर रो रहा था। देवन सोफे पर बैठ कर सिगरेट फँकता रहा।

आया उसे उठाने के लिए दौड़ी। गीता ने उसे रोक दिया, स्वयं फिर से चाय बनाती रही। चाय लेकर जब तक वह कमरे में गयी, सागर का गला रूँध गया था। चाय रखकर वह फिर जल्दी से लौट आयी। रसोईघर के सामने खडी हो गयी, कुछ क्षणों का और अन्तराल बनाने के लिए।

तब वह अपने-आप पर क्रोध से भर गयी। झपटकर कमरे में घुसी सागर को अंक में भर कर रो पडी, उस कमरे में नहीं, अपने कमरे में आकर। कपडे बदलकर देवन सामने आया। तब तक सागर हिचकियाँ भरते-भरते सो गया था। गीता का आँचल उसे ढके था, उसके सागर को भी, और उसके अन्दर न जाने कितनी नग्नताओं को।

देवन ने स्वर को मीठा बनाकर कहा, "तुम्हें पूछ रही थी।अगली बार तुम उसके साथ रेडियो स्टेशन जाना। 'लिसनर' न सही आज के अखबार में तो उसके प्रोग्राम का समय था। मैं बताना भूल गया तो क्या ? अखबार रोज पढ़ना चाहिए और सुबह ही सुबह। जो समय के साथ नहीं चलता वह पीछे छूट जाता है।"

गीता की इच्छा हो रही थी, वह आँचल के तार-तार कर दे और इतनी जोर-जोर से चीखे कि उसके स्वयं के कान बहरे हो जायँ।

पर दूसरी ओर नसकी नारी, जो आँचल में छिपी थी ; जिसके स्वर गीले थे, आँखे भरी थी, कंठ गल रहे थे, अपने को दिखाना नहीं चाहती थी। जो अति व्यक्तिगत है, जिसमें निजत्व की सत्ता है, वह उसी का है, और किसी का नहीं।

देवन चला गया, आया से कहता हुआ अपने घर की दीवारों को सुना गया—दोपहर का खाना वह नहीं खायेगा, शाम को चाय पर भी उसका इन्तजार न किया गया।

गीता अपने को छिपा, सहज में बदल कर आया के सामने आयी। वह नीचे सड़क पर देख रही थी।

“क्या है आया ? ” गीता ने हल्के स्वर से कहा , “क्या देख रही हो ? ”

“कभी—कभी अपने करम को सोचती हूँ बहू जी !हँसी आती है !”

गीता मुस्करा आयी, “चलो अच्छा है, रूलाई तो नहीं आती। जिसे अपने पर रोना पड़े ; उसकी सोचो आया ! ”

“मैंने तो बहू जी, सोचना—फोचना छोड़ दिया, मुआ, जितना ही सोचो उतना ही रोओ !”

“तभी तुम्हे हँसी आती है।”

गीता तुलसी के फूलों को देखती हुई बैठ गयी।

आया बोली, “कभी—कभी साहब को न जाने क्या हो जाता है, अच्छा नहीं लगता, इतने पड़े लिखे लोग.....।”

आगे कुछ पी गयी वह।

फिर बोली, “मेरा वष चले तो ओम के घर आग लगा आऊँ ?”

“क्यो ?” गीता घबडाकर खड़ी हो गयी, गम्भीरता से बोली, “क्या बक रही हो ?

“बकती नहीं मैं बहूरानी ! ”

“काम करो अपना ।”

“नाराज न हो बहू ।”

गीता की आँखें बरस आयी। भागकर वह कमरे में चली गयी। सागर को गोद में उठा लिया । जगकर वह मुस्कराने लगा। पर गीता उसे मनाती रही, जैसे वह रो रहा हो।

दोपहर को आर्यादादा आये। गीता ने कुछ आभास न होने दिया। उन्हें एक—एक करके सबचित्र दिखाती रही। उसी बीच आया ने कह दिया,

“सरकार, यहाँ आज कोई खाना नहीं खा रहा है। सब तैयार है पर।”

गीता ने घूर कर उसे मूक बना दिया।

आर्यादादा ने बहुत पूछा, पर गीता ने कुछ न प्रकट होने दिया। जो आया से प्रकट भी हुआ था, उसे वह झूठ बना दिया।

आर्यादादा ने बहुत पूछा, पर गीता ने कुछ न प्रकट होने दिया। जो आया से प्रकट भी हुआ था, उसे वह झूठ बनाती रही।

दूकान पर आकर आर्यादादा ने पता लगाया तो देवन अपने कमरे में न था। संभवतः काफी हाउस गया था। बड़े बाबू को बुलाकर वे वही प्रतीक्षा में उनसे बातें करने लगे।

कारोबार में मंदी चल रही है। मालिक का जी नहीं लगता । ग्राहको—खरीदारो और मिलने वालो से एक तो कम मिल पाते हैं, और जब मिलते भी हैं, तो ढंग से बात ही नहीं करते, जैसे गरज औरो की हैं, इनकी नहीं।

दो बजते—बजते देवन लौटा । आर्यादादा ने कुछ न कहा। उसी रेक्षे पर उसे बिठा कर वे ‘डी हेविन’ आये। वहाँ जैसे कुछ न हुआ था। सब कुछ पहले जैसा था। आया झूठ थी, आर्यादादा का भ्रम निर्मूल था।

एक साथ बैठकर सब ने भोजन किया। फिर लोग अपने-अपने काम पर चले गये। तीसरे दिन षाम को देवन ने प्रस्ताव किया कि वे दोनों चित्रा के घर चलेंगे। गीता ने कहा कि वह घर ओम का है, चित्रा का नहीं। और उसके घर वह कभी नहीं जायगी।

देवन ने पूछा, "क्या सौगन्ध कर लिया है?"

"सिद्धान्त भी ! "

"क्यो ?" उसने पूछा ।

"सब भूल गये ? इतने जल्दी ?" गीता ने भी पूछा।

"जो बीतता चलता है, हम उसे लादते नहीं फिरते।"

गीता चुप थी। अपने को दबाती रही। देवन अपनी बात को दुहराता रहा, जैसे वह गीता को कुछ बोलने के लिए कुरेदता चल रहा था।

"जो बीत गया, हम उसे लादते नहीं।"

"मुझ पर तो लदा रहाता है.....बीतने के साथ मैं भी बीती हूँ—और वही मैं हूँ—वही मेरा निष्चय है — भूल है— आगे क्या ? "

"तो सब तरह से उल्टी हो मुझ से ! " देवन ने जैसे अपने से कहा।

गीता गिडगिड़ा उठी, "ऐसा क्यो सोचते हो ? ऐसा न कहो। "

"जबान पर भी ताले लगा दो, तब कुछ नहीं कहूँगा। बन्द कर दो मुझे किसी कमरे में।"

भाव-षून्य दृष्टि से गीता देखती रही, पर किसी लक्ष्य से नहीं, लक्ष्य हीन। कुछ क्षणो बाद बोली , " जो चाहो, कहो, जहाँ-जहाँ गति हो, वहाँ जाओ। कैसा ताला ? कौन बन्द करेगा तुम्हें ?"

स्वर भीग आये। उन्हे सुखाकर कहने लगी, "जहाँ तक हो सकेगा, मैं वही तक साथ दे सकूँगी। पर मैं यह नहीं चाहती कि तुम भी मेरे साथ वहीं रुक जाओ। जो मेरी सीमा है, नहीं है वही मैं हू। जो सहज है मेरे लिए, असहज भी है तो क्या—वही होगा—वही हो भी ; मुझे स्पर्धा नहीं। मैं तुम्हे रोकती कहाँ हूँ ?"

उस बीच देवन कमरे से बाहर भी गया, फिर दरवाजे को पर करते हुए बोला, "मैं तो बँधा हूँ ; तुम्हे क्या पता। "

गीता का स्वर और भी गम्भीर हो आया, " पुरुश तो हो, तोड क्यो नहीं देते ? जो बाँधे नष्ट कर देना चाहिए ; क्योकि वह असत्य संसार है,

घृण्य —स्वार्थी। "

हीनता के धुँएँ में देवन का माथा चकरा गया। उसे कुछ न मिला , तो यही कहने लगा, "तुम्हे तो बस रोना ही आता है। "

कुछ सुनने के लिए वह रुका नहीं। चला गया। सागर के माथे पर अपने तप्त मुख को रख, गीता बुदबुदा उठी—ओ सागर भइये ! तू अपने पापा को मारता क्यो नहीं। वह कहते है कि मुझे रोना ही आता है। बेटे ! तू ही बता, इसमें मेरा क्या दोश है। तेरे नाना-नानी का है न ! "

बिना षब्द के सागर बातें करता रहा। वे षब्द ऐसे थे, जिसमें नैसर्गिक वाणी थी, ऐसी वाणी जिसमें गीता के लिए दृष्टि भी थी।

रात के लिए साढ़े नो बजे रेडियों से वह रूपक आने वाला था, जिस का नायिका चित्रा थी। देवन ने पूछा था, पर गीता रेडियो स्टेसन जाने के लिए तैयार न हुई।

देवन चुप रह गया। दो बार उसने कपड़े पहने । कई बार वह जीने से उतरा—चढा, पर अन्त में वह भी न गया।

सौफे के सिरहाने रेडियों खोलकर वह बैठा रहा, और बिना कुछ बोले सिगरेट पर सिगरेट सुलगाता रहा। नौ बजकर बीस मिनट पर सामने गीता आ बैठी। फर्ष की कालीन पर सागर खेल रहा था।

घड़ी देखकर देवन ने आया को पुकारा।

कहा , “बेबी को ले जाओ यहाँ से ।”

न जाने कैसे गीता को वह स्वर चोट कर गया। वह सागर को गोद में लिए बाहर चली गयी, लौटी नहीं। साढ़े नो बजे नाटक शुरू हुआ। पर पाँच ही मिनट बाद अकेला देवन रेडियों की आवाज से उकता गया।

रेडियों बुझ गया। और एक नंगी आवाज उसके चारो ओर फैलने लगी —जिसे वह देखता नहीं था, अनुभव करता था ; जिससे लड़ा नहीं जा सकता था, केवल हारकर भागा जा सकता था।

कमरे से वह भागा। रेडियों बुझाकर टंडा पडा था, पर जैसे उसमं से नाटक स्वयं बोल रहा था, कुछ अपने आप हो रहा था—आवाज के साथ, जिसके पीछे द्वन्द्व थे, कार्य थे, चरम सीमा थी।

जितनी तेजी से भाग क रवह बाहर आया, उसी गति से वह अपने में मथ उठा—सब मर जाये तो अच्छा है—वह खुद मर जाये तो कितना अच्छा हो।

उस रात गीता, सागर को अंक में लिये लिये सो गई। सुधि तब हुई, जब वह एक स्वप्न देखती—देखती जगी। देवन पलंग पर सो रहा था। गीता पूरे स्वप्न को सुधि में कसे हुए कामना भरी दृष्टि से सोने वाले को देखने लगी। पर वह अपने स्वप्न के लिए देवन को जगायेगी नहीं, केवल उसे अपनी अनुभूति में, प्राणो से बाँधे रह जायगी—वह सो रही है। उसके अंक मे इतना दूध भर आया है कि उसे सागर नहीं समा पाता। अंक से दूध की दो धारायें बहकर धरती पर आती है, फैलकर एक दूसरे से मिल कर धार बन जाती है। पलंग के नीचे एक गडढा है, धीरे—धीरे दूध से वह गडढा भर जाता है।

गीता अकथ स्वप्न को अपने भीतर जितना बाँधती जा रही थी, उतनी ही षान्ति उसे मिल रही थी। बाबरी सी गीता , कई बार झुक—झुक कर पलंग के नीचे उस दूध—भरे गडढे को ढूढती रही।

सुबह आया को देखकर उसका मन एक बार फिर ललचा आया कि वह अपने स्वप्न को उससे कहे। पर वह अपने को दबा गई।

देवन आफिस चला गया। गीता मिसेज घोश के यहाँ गयी। वह कुछ अस्वस्थ थी। प्रतिमा सरहाने बैठी हुई उनके माथे पर कुछ लगा रही थी।

कराहती हुई माँ जी बोली, "सुना बहू ! बनश्री के बारे में ! यह फिल्म में जाना चाहती है। हम सबसे उपर उठकर वह न जाने क्या-क्या कर रही है ! तुम उसे समझाओ बहू ! "

षाम को बनश्री मैटनी षो देख कर लौटी थी, तभी गीता से उसकी भेट हुई।

गीता के कुछ कहने-पूछने से पहले ही बनश्री प्रीति भाव से कहने लगी—"इस षहर से तो मेरी तबीयत उकता गयी है—छोटी जगह है। कलकत्ता —बम्बई जैस जगह होनी चाहिए—वहाँ किसी का धर्म नही लगाया जाता । खुलकर लोग जीते है। "

गीता चुप सुनती रही। बातों-बातों मे वह चित्रा के बार में कहने लगी। उससे मेरा परिचय है रेडियो पर सिनिमा में, क्लब और संगीत-नृत्य समारोहो में उसका प्रायः साथ रहता है।

गीता की भूमिका ही बदल गयी। वह कुछ कहने को थी, अ बवह उल्टे पूछने को आ गई। प्रश्न तो अनेक थे, पर उसके गले से उपर नही उठ पा रहे थे। उनके लिए कोई वाणी ही न थी, जिनमें बँध कर वे बाहर आते। निर्विकल्प, सब पी गयी वह —घोट गई।

माता जी के लिए प्रतिमा दवा लेने जा रही थी। गीता भी साथ चली।

रास्ते में प्रतिमा ने यूँ ही पूछा, "तुम्हे यह जगह कैसी लगती है ?"

गीता पुस्करा दी। कुछ न कह सकी।

स्वयं उत्तर देने लगी, "मुझे तो यहाँ सब मिलार सन्नाटा सा लगात है। प्रातः काल से दो बजे तक रात की पूरी आवाज इतनी सूनी, खाली — खाली सी लगती है, जैसे इसके पीछे मनुश्य नही, छाया है, जो मनुश्य के रूप में चारो ओर लक्ष्यहीन घूमती डोलती है।"

छवा लेकर लौटती बार गीता की दृशिट सामने बिजली के खम्भे पर पड़ी। चाक से गहरे अग्रेजी अक्षरो में देवन और चित्रा का नाम लिखा था और उसके संग एक भददी सी बात भी। वही बात वह आगे के सात खम्भों पर पढ़ती गयी। सातवाँ खम्भा 'डी हैविन' के ठीक सामने पडता था।

प्रतिमा को उसके घर पहुँचा कर, वह तेजी से सडक पर उतरी। अब वह तार के भी खम्भो को देखने लगी। वे सब सूने थे।

जीने के पास खडी हुई वह एक-एक बिजली के खम्भे को फिर से गिनती हुई सोचने लगी —उन लिखावटों को वह कैसे बिगाडे ? दिन है, सडत्रकख आने- जाने वालो से भरी है। रात होगी तब उस पर बिजली की रोषनी फैली रहेगी। पर तब तक न जाने कितने लोगो की आँखे पढ़ लेंगी।

आवेश से वह भर आई। खम्भे की ओर बढ़ी, पर मिटाने की हिम्मत न हुई, जैसे पूरे षहर की आँख उसी पर लगी हो। भागकर वह कमरे में गयी। उसे चारो ओर से इस तरह बन्द कर लिया कि कही से बिजली का खम्भा न दिखाई पड़े, सडक की छाया न आये ! वह रात की प्रतिक्षा करेगी—रात के अन्धकार पक्ष की, उसके सन्नाटे काल की, जिसे प्रतिमा जिया छाया का दोलन कहती है।

रात बीतने को आई, पर खम्भो की बिजलियाँ न बुझी। गीता उठी। पानी से आँचल को भिगो लिया और सूनी सडक पर उतर कर आयी। दौड़कर सात खम्भो को पार कर गई। सारा

ऑचल काला पड गया ; और उस में कही भी चाक को सफेदी न मिली। सब मिट गया, सब धुल गया।

आवष्टत मन से वह उपर आयी। पर कुछ उसके भीतर कुरेदने लगा। वह मिटी हुई लिखावट वे दो नाम उन पर दो पंक्तियाँ, जैसे गीता के ऑचल से उड़कार पूरे वातावरण में विखर गये। पूरे षहर पर छा गये। सब मुहल्ले, सब सड़कें, हर घर, और सब को जोड़ने वाले वे बिजली के खम्भे —सब पर वह चाक की लिखावट फैल गयी।

कई दिनों तक गीता उस अनुताप से जलती रही। पर किसी को आभास न होने दिया। सब कार्य चलते थे। अगृहस्थी का हर कोना एक चक्र में घूमता था, उस गति में वह निरत होकर पूरी षक्ति से जलन के सब धुँए को पीती गयी।

एक रात, बहुत देर से देवन घर लौटा। गीता उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी आकर यह वह सौफे पर सर डाल कर बैठ गया। गम्भीर मुख से इतनी कटुता, इतने अविष्वास की रेखाये उभर रही थी कि गीता उसके सामने पड़ने की हिम्मत न कर पा रही थी।

कपड़े तक नहीं बदल रहा था, बस मौन बैठा था। सिगरेट भी नहीं जला रहा था। अधिक समय बीत गया, गीता सिगरेट की टिन पर मैचबाक्स संभाले उसके सामने रख आयी।

कुछ क्षणों बाद वह फिर देवन के पास गयी। पास बैठी और उसके भयानक मौन को जैसे पीने लगी। उसके द्वन्द्व और ताप को अपने में ओढने लगी।

“क्या है, मुझे भी बताओ न।”

गीता सर झुकाये रही। देवन सिगरेट पी रहा था। गीता हिम्मत बाँध कर बोली, “कुछ ओत ही बात करो देवन !.....चलो सौ जाओ में नीद ला दूँगी।”

कुछ क्षण चुप रह कर फिर बोली, “जो विश और अमृत है, उसे मैं भी पीऊँगी। तुम में मैं सदा हर पल निहित हूँ—कार्य में ; कारण और परिणाम में भी।”

देवन अब तक चुप था, गीता को आश्चर्य हुआ। वह और समीप चली आयी। एकाएक वह हँस आया और उसी गति में उसने गीता को अपनी बाहुओं में इस तरह जकड़ लिया, जैसे वह उसके टुकड़े—टुकड़े कर देना चाहता हो।

उसके मुँह से कुछ अजीब सी बदबू आयी। गीता का सर चकराने लगा तो सहसा उसे षराब के नाम की सुधि हो आयी। पर वह नाम यह बदबू देवन का वह रूप, ये तीनों उसके लिए नये थे, निरपेक्ष थे। वह हार गयी लेकिन उन तीनों को एक अर्थ में न बैठा सकी।

कुछ क्षणों के बाद उसके अपने—आप अर्थ मिल गया। दिमाग में तीनों एक होकर जुड़ गये। उसकी धरती घूमी, पर वह निष्चय रही। न जाने किस आपद काल की षक्ति से उसने देवन को अपनी बाहों से बिस्तरे पर सुला दिया और उसे सँभाले बैठी रही।

देवन अपने आप कहने लगा, “कल ओम से कुछ बाते हो गयी। चित्रा को क्या तुमने देखा नहीं। उस से अब मिलोगी तो देखना वह कैसी हो गयी है। तुम्हे बहुत याद करती है। रेडियों पर उसकी बड़ी प्रषंसा है। तारीफ में अनेक पत्र आये हैं।”

गीता से कुछ न बोला गया।

“चुप क्यों हो ?” देवन ने स्नेह से पूछा।

“बोलू मैं ? गीता के मुँह से निकला, “जिसके नाम रात षराब पी थी ?”

“बात क्या है ? ओहो ! इसी पर चुप बैठी हो ?” कुछ क्षण चुप रह कर बोला, “यू ही हो गया कल । पार्टी वालो से किसी तरह बच न सका। यहाँ तो रोज पीने की सभ्यता है। मैंने तो न जाने कितने दिनों बाद पी है।”

गीता का मुख रक्त से भर गया, “तो रात ही क्यों ? हमेशा क्यों नहीं ।” देवन चुप रह गया।

भरे कंठ से गीता बोली, “तुम सत्य से भागकर षराब के नषे में षरण ले सकते हो, पर मेरी गति कहाँ है ?”

“क्या मतलब ? ”

गीता रो पडी। पर क्षण ही भर बाद सम्हल गयी। कसकर बँधा अपने की , और देवन के बायेंक कंधे पर झूल सी गयी।

“जहाँ तुम भटक रहे हो देवन, वहाँ हमारी कोई गति नहीं है।”

“क्या बकती हो ? कुछ समझती भी हो ? ”

देवन उठ खडा हुआ । आफिस जाने की तैयार करने लगा। गीता हारो नहीं, “कुछ—कुछ समझती हूँ देवन ! इतनी मूर्ख नहीं हूँ। देष काल ने मुझे भी समझ दे दी है। समझने लगी हूँ, तभी दुखी हूँ। वैसे, इस समझ को आग लगे। ”

कहते कहते वह फिर रो आयी। वहाँ से हट गयी। और सीधे मिसेज घोश के यहाँ चली गयी।

एक घंटे बाद लौटी, जब आया उसे बुलाने गयी। आया को साथ लेकर वह भोजन करने बैठी। रानी बहू को उदास देखकर वह मन बहलाने लगी।

“रानी बहू ! यह नबाबों का षहर था न ! नबाव तो नहीं रहें, मगर उनकी आदते षैतान के रूप में अब भी रही है।”

आया तो हँस दी, पर गीता चुप रही। उस बीच आया की लड़की गोविन्दी, किषनु, मुन्नू और हरिइवा के साथ ऊपर चढ़ आयी।

आया की की थाली में सब बच्चे टूट पड़ें। गोविन्दी खडी रह गयी। गीता ने उसे देखा और ममता से भर आयी। जहाँ मातृत्व अभिषप्त है, वहाँ उसमें भी आगे एक सीमा है। उसे कौन अभिषप्त कर सकता है ? माँ आया है ; प्रकृति से, पर वह बाप बन गयी है। गोविन्दी कुमारी है प्रकृति से लेकिन, वह जैसे माँ हो गयी है।

आया को संग लेकर जब उसके सब बच्चे चले गये, गीता को पूरा घर सूना सा लगने लगा। सोते हुए सागर के पास गयी और जी हुआ कि उसे जगा दे। वह रोने या हँसने लगे, सोये नहीं।

जगाया हुआ सागर रोया नहीं, जगकर उसकी गोद से चिपका रहा और मामा, बुआ, पापा आदि रटता रहा।

उसी बीच जीने से आर्यादादा की आवाज आयी। और उसके साथ ही आर्यादादा और षीतल राय जी ऊपर आये।

अपना माथा ढक कर , आदर से उन्हे ड्राइंग रूम में बिठाया। स्वयं स्टोप पर चाय बनाने दौड़ी। पर आर्यादादा ने रोक लिया।

उन्होंने बताया कि वे लोग देवन की ट्रेडिंग कम्पनी से आ रहे हैं। देवन के पास कोई लेडी टाईपिस्ट थी— ऐंजिलों। उसे नौकरी से हटा दी है। कोई चित्रा थी, देवन से मिलने—मिलाने के लिए वह ऐंजिलों बीच में सूत्र सी थी।

कम्पनी की दशा इन्ही चक्करो में गिरने लगी थी।

पूरी बात का प्रभाव गीता पर तीखा हुआ। वह अनादृत सी हुई। अपने को सम्हालती हुई वह कह उठी, " यह सब मुझे क्यों सुनाया बताया जा रहा है ?"

"आवश्यक था। यह बनारस नहीं गित्ती ।" आर्यादादा ने कहा।

"बहुत होषियारी से अपनी गृहस्थी देखनी होगी।"

षीतल राय जी कह उठे, " रानी बहू ! तुम हमारे परिवार की लक्ष्मी हो। बहुत पुराना खानदान है हमारा। "

"पिता जी, मैं लक्ष्मी होती तो मुझे आपके घर से निकाल कर यहाँ क्या आना पड़ता ? जैसे वे हैं, मैं तो वैसी भी नहीं हूँ, बल्कि उन्होने मुझे कुछ बनाया भी है।"

घर से आया लौटी। चाय के लिए गीता एक बार और आग्रह करने लगी। पर वे लोग थोड़ी देर बाद चले गये।

गीता तब क्षुब्ध थी ; अब चिन्तित भी हो गयी। देवन इस रूप में उसे याद आने लगा, जैसे उस पर अत्याचार हुआ है। मान—हानि के साथ उसके व्यक्तिगत जीवन को छुआ गया है। गीता पर भयानक दया दिखाई गयी है। अधम रूप में उसे ग्रहण किया गया है।

भाव—त्रस्त हो वह पास के मकान में गयी। ट्रेडिंग कम्पनी में उसने फोन किया। देवन मिल गया। गीता ने उसे घर बुला लिया।

उसने देखा, देवन पर कोई प्रतिक्रिया न थी। अपनी प्रतिक्रिया का प्रक्षेपण वह क्या करती, सब पी गयी और मथ उठी अपने में।

नित्य की भौंति वह टहलने के लिए गंज की ओर गया। और उसी समय रात को लौटा भी, जो उसका क्रम था।

गीता के सर में पीडा थी। भीतर कुछ मथ रहा था और उसे तोड़कर निकल जाना चाहता था। पीडा की अन्विति में वह कामना कर रही थी कि वह बीमार हो जाय—ऐसी बीमारी नहीं कि वह मर जाय, ऐसी बीमारी कि वह बेहोष रहे।

उधर देवन बड़ें कनोयोग से कह रहा था, "मेरे एक साथी हैं। अभी—अभी षादी हुई है। खूब पियानो बजाती है। उतना ही अच्छा गला भी है।

घर अपने हाथों कॉफी बनाती है। बस पीने में मजा आ जाता है।"

गीता को अनुभव हो रहा था, पूरी एक भीड़ का घोर उसके कानों को बधिर बना रहा है ! और उसमें से केवल एक स्वर कभी—कभी ऊपर उठ आता है—'मैं यह कहता हूँ, मैं यह कहना चाहता हूँ।"

..13

मनोयोग से गीता पत्र लिख रही थी। कुछ सोचने के लिए उसने सर उठाया, तो देखते ही हतप्रभ हो गयी। सामने पैअ में हाथ डाले चुपचाप ओम खडा था।

घबडाकर गीता उठ खडी हुई।

ओम गम्भीरता से बोला, “डर रही हो मुझ से ?”

“क्यो?डरूँ क्यो ?”

“पहले तो डरती थी – याद है न, जब व्यवहकार आयी थी ! ”

गीता चूप थी।

“अब इसलिये नही डरती कि सब दिवाला बोल गया ! ” ओम की आवाज कटु हो आयी, “मेरे। तब क्या डर था, डरो अब। मै तुम पर दया जो करता हूँ — ‘पिटी’ ! ‘पिटी’।

“होष मे रहो ओम ! ” कहती हुई गीता तड़प सी उठी, “यह मेरा घर है इसकी मर्यादा है, सीमा में रह कर बात करो ! ”

“तो अपनी मर्यादा सुन लो ! और मेरी सीमा भी ! “षब्दों को पीसतें हुए वह बोला, “ अपने देवन को बाँध कर रखो, नही तो विधवा होना पड़ेगा ! ”

गीता को कुछ विश दंष कर गया। कॉपने सी लगी।

“जो नीचे होते है, वही अपने को बड़ा सिद्ध करना चाहते है। —मै कार लाया हूँ। कार पर बैठकर मेरे घर चलो और वहाँ आँख खोलकर देखो अपनी सीमा ! मर्यादा कहाँ है ? क्या है ? जो भीख माँगे वह मर्यादा को भूल जाय। ”

गीता तीव्र प्रतिषोध की दृष्टि से उसे देख रही थी, पर उस से कोई षब्द तक नही फूट पा रहा था।

आवेश में ओम चला गया। गीता बेसुध सी अपने सब कमरो में अनायास चक्कर लगाने लगी। कई बार जीने पर चढ़ी उतरती। अन्त में उस दीवार के पास गयी, जहाँ किसी दिन उसने एक मन्दिर बनाया था। वहाँ की दीवार से उसने अपने सर को टकरा दिया। माथे का खून आँचल तक वह आया। फिर भी उसे रोना न आया, न घाव का दर्द ही मालूम हुआ। माथे की चोट को आया ने देखा, वह रो पडी। देवन ने संवेदना प्रकट की, पर जिज्ञासा न हुई। गीता को तब रूलाई आयी।

रात को उसे बहुत तेज ज्वर चढ़ आया। और पल्ले पर गिरकर वह अधीर हो गयी। उसी दषा में उसने देवन को बताया कि ओम आया था, और वह यह कह गया है कि अपने देवन को सीमा में रखो।

षेश वह सब कुछ पी गयी।

लगातार दो दिनां तक ज्वर उसी तरह चढ़ा रहा। आया ने एक क्षण के लिए भी न साथ छोड़ा।

तीसरी षाम को गीता बोल सुनायी पड़ी। पहले वह षिषुक्त मुस्कराती रही।

अजान स्वर में बोली, “बीमारी को कोई गति नही होती ! गति भी उससे उकता जाती है।”

सामने प्रमिता जिया बैठी थी। गोद में सागर खेल रहा था। गीता षान्त थी। जो कुछ भीतर घाव कर गया था, वह जैसे इस ज्वर की तपन में धुल सा गया। वेदना उसे नयी दृष्टि देकर अब डटकर जीने के लिए कर रही थी। अकस्मात बीमार ने उसे रोककर सब से निरपो रहने के लिए कुछ अमूल्य क्षण दिये। चिन्तन को अनुभव मिले — एक अनुभव यह भी था — इस भयंकर दौड़ की गति जानने के लिए कोई रुके, तब अन्दाज लगाये। पर वह रुकावट नहीं, जैसे राह चलते-चलते कोई राहगीर रुक जाता है। नहीं, बीमार होकर रुके। उसकी विवषता में सब स्पष्ट हो जायगा— जैसे एक रुक गया है, और संसार उसे पीछे छोड़ता हुआ कितनी तेजी से आगे भाग रहा है।

रात को सागर सो ही न रहा था। आया को देख-देख कर चीखता था। देवन टहल कर लौट कर नहीं। अवष गीता ने उसे पास सुला लिया। अपने तम की जलन षिषु को न लगे, उस ने अपने को कई तह के कपडों में ढक लिया।

किसी डाक्टर को साथ लिए हुए देवन लौटा। पर स्वयं पहले गीता के सामने न गया, डाक्टर को भेजा।

कुछ क्षणों बाद सामने आया। गीता ने डाक्टर को बता दिया कि उसका बुखार अपने आप उतर जायगा। उसे दवा की अपेक्षा नहीं।

माथे की चोट से पट्टी हटा दी गयी। घाब ठीक हालत में था। डाक्टर ने आदेश दिया कि मरीज के साथ बेबी नहीं सो सकता। पर बेबी को समझाये कौन ? माँ को भी कैसे विष्वास दिया जाय कि वह बीमार है। अरे ! मरीज तो सब है, और और सभी डाक्टर भी बनते हैं, तभी परिणाम कुछ नहीं निकलता। मरजी अपनी दवा स्वयं जब करने चलेगा तभी कुछ हो सकेगा। यह भीतरी बीमारी है, इस पर बाहरी दवा कभी कारगर नहीं हो सकती। घड़ी में, रात के ठीक दस बजे। देवन ने उसे दवा देकर, कमरे की रोषनी बुझा दी। ड्राइंग रूम में गया और वहाँ प्रकाष करके चुपचाप बैठ गया। उस कमरे की रोषनी पर्दे के दोनो किनारो से दो समानान्तर रेखाओ में गीता के कमरे के फर्ष पर बिछी थी।

दोनों तकियों को दुहरा समेट कर, उसी पर सर टिकाये, गीता उन्ही दो समानान्तर रेखाओ को देख रही थी। ये रेखाये कभी नहीं मिलती। क्यों ? दोनो के बीच में समान अन्तर है ; इसीलिए नहीं, बल्कि दोनो में समान धर्म है —ऐसा धर्म नहीं, जो पदार्थ में होता है—खीच कर मिला लेने बाला। ऐसा धर्म जो अहं वष मिलने नहीं देता।

किसी प्रेरणा से गीता उठ बैठी। नीचे खडी हुई और उस प्रकाष की ओर खीचने लगी, जिसकी वह रेखाये देख रही थी।

पदार्थ की भौति वह खिचने लगी। निर्बलता के कारण वह दीवार के सहारे चल पर पर्दे के पास आयी। सहसा प्रकाष भरे कमरे में प्रविष्ट हुई।

उस क्षण वह अपनी सारी निर्बलता, सारे असाध्य को जीतकर देवन के हाथो पर फट पड़ी। पूरी बोटल अंक में गाड़ जी। टूटते स्वर में कहने लगी, 'यह मेरा विश तुम क्यों पाते हो ? मेरे लिए अपने को न मिटाओ। यह विष्वासघात होगा, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं। अब मैं स्वयं

मिट जाऊँगी। अपने विश को मैंने पा लिया। मूल मैं हूँ। बीच में मैं ही फैल कर समानान्तर बनाती हूँ। मैं सब को तोड़कर अपने आप सिमट जाऊँगी। ”

पागलो सी वह देवन के पैरो पर गिर पड़ी। स्वर और भी कौपने लगे, “तम्हारी अचल सत्ता के लिए मैं मिटूँगी, तुम क्यों ? देवन तुम क्यों ? कारण कार्य दोनों मैं हूँ। जी मैं हूँ, उसे मैं भोगू, तुम क्यों ? इतनी स्वार्थिनी मैं नहीं हूँ !

देवन अभियोगी की तरह दाये हाथ की दो उँगलियों को वह अपनी बन्द आँखों में गड़ाये रहा।

गीता उठ खड़ी हुई। षराब की बोतल उसने सामने की मेज पर रख दी, और सिसकती हुई दीवार के सहारे जा लगी। निःशब्द रोती रही और बच्चों की तरह दीवार के सहारे वह अपने कमरे में चली गयी, एक बार मुड़ कर भी न देखा।

कुछ क्षण तो रोती रही। फिर उसे दबाकर वह उसी तरह तकिये के सहारे दो रेखाओं के बीच काली जमीन को देखने लगी—पून्य अन्धाकर युक्त।

सहसा उसे लगा, जैसे ओम के ‘पिटी’ ‘पिटी’ शब्द की अनवरत प्रतिध्वनियाँ सारे कमरे में खिच गयीं। उठकार उसने कमरे में रोषनी कर दी। रेखाओं को धर्म मिल गया, वे एक ओर होकर खो गयीं।

सुबह गीता का बुखार उतर गया था। पर उसे तोड़ देने वाली कमजोरी अनुभव हो रही थी। जैसे वही आधार है, वही उसका प्राप्य है। उसे आधार मान कर वह अपने को तोलने लगी। उठी, दीवार का सहारा छोड़ दिया। किसी को न पुकारा। बाथ—रूम में गयी। आकर कपड़े बदले और आड़ने के सामने खड़ी हो गयी।

बाहर से तो वह स्वस्थ है। आँखों में रक्त है। मुँह भरा हुआ है। ग्रीवा, भुजायें सब अनुकुल हैं। तब भीतर क्यों इतना असाध्य हो रहा है। यह बला की बीमारी क्यों।

उससे कुछ न सोचा गया। यह अनुभव अवश्य हुआ कि जो उसका असाध्य है, निर्बल और आहत है, वही उसकी शक्ति है, वह जिधर चाहता है गीता उधर ही मुड़ जाती है।

जहाँ देवन सो रहा था, वह मुड़ी हुई उधर ही गयी। पलंग पर बैठी, और उसके बिखरे हुए बालों को सहेजने लगी।

धीरे से बोला, “बुखार उतर गया ?”

“लो, देखो।, “अपने पूरे, मुख को देवन की बन्द आँखों पर रख दिया।

“मैं ठीक हूँ, दो—चार दिनों में बिलकूल ठीक हो जाऊँगी। अभी मैंने तौला है।”

रुककर बोली, “उठो, मैं बेड—टी लाती हूँ।”

भावों में भरी हुई चली गयी। चाय लेकर लौटी। ज बवह पी चुका, तब गीता बोली, “जीवन का सब से बड़ा लक्ष्य जीना है देवन। इसे यहाँ आकर मैंने पाया है ! मुझे यह भी लगा है, कि हम बदल गये हैं, पर जीते पुराने ढंग से हैं। हमारा जीना हमें नहीं बाँध पाता। उसे बाँधने के लिए, हमें इस तरह जीने के मोह से अलग होना पड़ेगा। ”

आया की गोद में सागर रोया। गीता खिची हुई बाहर चली गयी। सागर को गोद में लिए लौटी।

देवन सौफे पर बैठा सिगरेट फूक रहा था।

गीता खड़ी-खड़ी सागर के कंधे को चूमने लगी। वह खिलखिला कर हँसने लगा।

माँ सागर की वाणी में अपने को घोलकर कहने लगी, "पापा जी छे नमस्ते कल ले भइये ! कह दे कि पापा जी, ओ पापा जी । छेव करो, बाथलूम जाओ, कपले बदलो, नाछता कलो और गुनगुनाते हुए अपने काम पल जाओ। हम तुम्हे बाँधेगे नही। जो बाँध लखे, जीवन के लिए उछाह न दे, वह कैछा लाजा बेटा ! कैसी मम्मी ! कैछा कौन ? हम ऐछे नही है पापा जी ! "

कहते-कहते गीता का कंठ भर आया।

गीता वही बैठ गयी। देवन बाथरूम को ओर चला गया।

सागर फर्ष पर खेलता रहा। न जाने कैसे-कैसे वह सोफें के पास से वही बोतल खीच लाया।

गीता ने बोतल सम्हाल ली। देखा बोलत में षराब खाली हुई है। देवन ने तब भी पी है।

तब मै असत्य हूँ। मेरा सत्य बनावटी है, क्योंकि वह देवन को बदल न सका। प्रेम भ्रम है, वह देवन को प्रभावित न कर सका। इन सब के परे जो सत्य है वही तीव्र है, वही षक्ति मय है। मै देवन के साथ-साथ हूँ, पर यह कितना अकेला है।

गीता श्रीहत् थी। इस आदमी के अकेलेपन के पीछे जो प्रेरणा है वह कैसी है। और उसे पीने के लिए गीता की औरत को किस अगस्त मुनि भाँति बनना पड़ेगा।

सागर को वही छोड वह अपने कमरे में चली गयी और औधी पड़ रही। एक षून्य उसमें भर रहा था। पर एक षून्य में वह मुक्ति भी पा रही थी।

सागर को गोद में उठाये हुए, देवन गीता के पास आया, खड़ा-खड़ा सोचता रहा। फिर देखा। ठीक से लिटा कर उसे षाल से ढक दिया और पूरे पलंग पर मच्छरदानी गिरा दी।

डाक्टर के पास गया। एक टोकरी फल लेकर लौटा, आया को सब कुछ बताकर वह आफिस जाने की तैयारी करने लगा।

जाने के पहले वह फिर गीता के सरहाने आ खड़ा हुआ। गीता के मुख पर एक नया मुख देखा नयी, आकृति देखी। जैसी पीली चाँदनी। चाँद का पीला मुख। रक्त से षून्य सफेंद मुख, भाव विहीन दो बडी-बडी कजरारी आँखें, जिन पर नीद और थकान बरस रही है।

डसके मन में भाव आया कि बोतल की षेश षराब वह उस थके मुह पर उडेल दे और एक साँस मे सब पी ले। एक घरे विस्मृति में वह उसे लिए हुए चला जाय। वही छोड आये उसे, और स्वयं कही ओर भाग कर भर ले, या खो जाय।

अर्द्ध निद्रित पड़ी थी। कभी आँख खुल जाती। कभी अपने आप मुंद जाती। पर जितने क्षणो के लिए मुदती उतने में वह एक न एक स्वप्न की टूटी हुई अधूरी आकृति देखती, जिसे वह पूरी बना लेती।

एक बार देखा। दिल्ली की षकुन जिया आयी है। गीता रो पडी और उसकी गोद में सर गाडे-गाडे सो गयी। एक बार देखा, प्रतापगढ़ से सरोज आयी है। उसी क्षण वह जग गयी।

कमरे से बाहर निकल आयी। जाकर हाथ-मुँह धोया। आया के पास बैठी। सागर को खेलाती रही। फिर मन में आया, वह श्रृगार करे। आज प्रतिमा जिया की भाँति सितार बजाये।

श्रृंगार करने बैठी। दर्पण में एक और गीता आ गयी। वह हँसने लगी। उस गीता पर, जो छाया है प्रतिबिम्ब है ; जिसे वह कभी नहीं पकड़ पाती, आदर्ष में दोलती भागती है। आदर्ष पत्नीत्व के लिए, मातृत्व के लिए, एक षान्त स्वस्थ नैसर्गिक गृहस्थी रचाने के लिए।

सत्य गीता अपनी छाया पर हँस आयी। पर छाया भी हँसती रही — मैं सुहागन आदर्ष हूँ, कल्पना नहीं। कल्पना पुरुश में बसती है। वह एक से विवाह करता है, सत्य के लिए — जो सत्य तुम हो, पुरुश पर जैसे लादी हुई । प्रेम के लिए वह एक और स्त्री सदा अपनी कल्पना में रखता है। वही अतृप्ति उसकी भूख है, दृष्टि है, जिसके बीच से वह देखता है।

दर्पण के सामने से गीता हट गयी। पलट दिया उसे । उकसा कुछ हँसता था कुछ रो रहा था।

थके, निर्बल हाथो से वह सितार बजाने बैठी। धीरे-धीरे उस में से मालकोश का गत उभरने लगा ओ ! देवन की कल्पना में बसी हुई ! मैं तुझे मारना नहीं चाहती, इसीलिए तू उसे न मारना जिसमें तू व्याप्त है। मैं तुझे श्रद्धा देती हूँ, चाहोगी तो उत्संग भी दूगी।

न जाने कब घु टने के बल सागर आया। माँ के दाये हाथ पर झूल गया। सागर को गोद मे उठा, वह बाहर चली आयी। उसे गुदगुदाती हुई हँस कर कहने लगी—“तू किछे कल्पना में लखेगा ? नहीं लखेगा ? बडे अच्छे लाजा बेटा ! राम राम कहो बेटे ! राम ! राम !”

टहलती-टहलती मिसेज घोश के यहाँ चली गयी। एक कमरे मे सब चुप-चाप बैठे जैसे रो रहे हो। घोश बाबू भी थें। गीता उल्टे पाँव लौटने को हुई कि मिसेज घोश निकली। आँखे तो सूखी थी, स्वर भारी थें — “वनश्री कही भाग गयी बहँ ! न जाने क्या हो गयी, आज पाँच दिनो से गायब है! ”

एक क्षण निष्पेश्ट रहकर फिर रो आयी। सब पीकर कहने लगी, “और कोई बात नहीं है, बस दो चीजो को सोचकर कलेजा सुलग रहा है वह कही बिक न जाये, कही आत्महत्या न कर ले ! ”

गीता भागी वहाँ से। उस से अपने को बाँध कर मन की षान्ति के लिए पीछे-पीछे मिसेज घोश भी चली आयी।

“जब वह चली ही गयी, वह फिर मेरे पास कभी न लौटे, लेकिन चाहती हूँ कि वह जिये।”

गीता ने कहा, “जीने के लिए ही तो वह गयी होगी। ”

“ऐसा ही हो, परन्तु.....।”

समूचा मुख सुख्य हो आया। अपने को सम्हालती हुई बैठ गयी।

आष्वस्त हो बोली, “गीता बेटी ! मेरी बड़ी साध थी कि मैं अपनी बेटियों को बहू रूप में पति के घर भेजती, उन्हे अपने घर बुलाती। प्रतिमा का विवाह किया, पर वह सुहागन होकर भी पति के घर न रह सकी। पति ने यह निर्णय दिया कि दुल्हन को दपेदिक है। और वनश्री, जो वनश्री थी.....।”

आवेग में कुछ न कहा गया। चुप होकर जैसे टंडी हो गयी और वह टंड वह सन्नाटा गीता में भरने लगा। तब उसने सागर के नन्हें वक्ष में अपने मुंह को इतनी तीव्रता से गडा दिया कि वह रो उठा।

और उसे चुप करने में व्यस्त बन गई। मन में, समूचे अस्तित्व से एक क्रान्तिमयी पर बेहद टंडी आवाज उभरी, जो भीतर ही भीतर एक धुमडन लिए चीखने लगी। जो साध्य है, अच्छा, कामना, और स्वप्न है उन्हे मारो नहीं माँ ! स्वयं मर जाओ। उनकी मुक्ति के लिए रोओ नहीं ; विष्वासघात होगा। अभुक्त है, तो और भी पवित्र रहेगे।

थोड़ी-थोड़ी उमस थी। दोपहर का सूर्य वर्षा के बादलों में खो गया था। हवा कही जाकर थम सी गयी थी। कमरे में पंखा खोलकर गीता देवन के लिए रूमाल सिल रही थी। एक दर्जन हो गया था, दूसरे दर्जन में लगी थी।

डोरे-सुई, मषीन कपडे के बीच उसने अपने को खूब जकड कर बॉध रखा था। मषीन रूकी, ध्यान बँटा नहीं कि वह अपने भँवर में फँस जाती थी। इसलिए वह रूई सूत में अपने को डालकर सतत् बॉधती चल रही थी। सूत उलझता तो उसे खोलने लगती गॉठ पडता देख, झट उसे तोड देती। और भी फँसान जब आती तो उसे अपने से अलग कर लेती।

दूसरी ओर आया बैठी, सागर को खेला रही थी। उसके कंठ से उसी के गीत का एक टुकड़ा बार-बार गुनगुनाया जा रहा था।

‘छाती चुराइली बेटी ; ढरे लोरवा,

अब सुनररी भइलू पराय रे।

जाहु हत जनिती धियवा कोखी रे जनमिहि

पिहित्यों मै मिरिच झराय रे।’

गीता देखते-देखते उलझ गयी। उसकी उँगली में सुई चुभ गयी। सूत उलझ गये।

स्वर में झट कटुता भरकर उसने कहा, “आया, जाओ यहाँ से।”

सागर को लिए आया उठी तो उसकी मुद्रा में हैरानी और विस्मय के रंग थे।

गीता बोली, “सड़क पर टहला लाओ, वारिष होने लगे तो भाग आना।

चली गई घर सूना हो गया।

हार कर गीता उठी। कमर सीधी करने के लिए उसने एक अंगड़ाई ली। आँखों में अन्धेरा छा गया। सारा ब्रह्मांड जैसे घूम गया और वह वही गिर पड़ी।

झट सम्हालकर उठी। दौडकर तुलसी के पौधे से हरी पत्तियाँ चुन कर उसने मुँह में डाल ली।

रहसा देखा, चित्रा आयी है।

सम्भ्रम से दोनो के हाथ जुडे। चित्रा के गिर गये, पर गीता के जुडे रहे-जुडे रहे, जैसे उन हाथों का वही जीव्य था, धर्म था।

चित्रा ने उन जुडे हाथों को अपने अंक में ले लिया। और अपने समूचे अस्तित्व से कुछ ऐसा उपक्रम करने लगी कि तरुण गीता माँ हँसे-हँस आये और संग में वह स्वयं हँसे।

“रूमाल बना रही थी ?”

गीता हिली तक नही ।

“एक रूमाल मै ले लूँ ?”

गीता ने सब उसके अंक में डाल दिया। और ऐसी सूनी दृष्टि से उसे तकने लगी, जिसमें स्पष्ट स्वर थे—“और! और मॉगो ! मॉगती जाओ । चुप न रहो। बोलो और क्या चाहिए ?”

बडी देर तक चित्रा निष्पेश्ट बैठी रही, और बार-बार अपने मस्तक पर रूमाल फ़ैरती रही ।

सम स्वर में बोली, “सहज आज मै तुम से एक बात कहने आयी हूँ। समय ने विवष किया है, और कहने की उसने स्थिति भी ला दी है। वह कोई बात नही, एक सत्य है जो हमारे बीच में घुटकर फैल गया है। जो अपनी सफ़ाई के लिए तुम से दया की भीख मॉगता है, क्षमा चाहता है।”

कहते-कहते वह रूक गई।

बल संजोकर बोली, “जिस घडी मैने तुम्हे देवन की पत्नी रूम में देखा था, मुझे स्पर्द्धा और ईर्शा हुई थी। जिस दिन तुमने अपनी आया के साथ मेरे घर जाकर ओम से अपने को तोडा था, तब मुझे में प्रतिषोध जगा था। उस जलन में पहले मैने अपने को देखा, अपना अतीत पाया , फिर ओम की पहचाना, बल्कि पहचानने की स्थिति मिली—तुम्ही ने दी, देवन से ओम को निस्संग बनाकर । फिर मुझे मे मेरी वेदना जगी, उसमें मैने तुम्हे और तुम्हारे देवन को पहचाना और तब मुझे तुम्हारे जीवन से मोह होने लगा। ”

चित्रा का स्वर भारी हो गया, “कुछ नही समझी ?”

“समझ रही हँ ।”

चित्रा बरस सी आयी, “ नही, नही समझती तुम ! मै आज कह डालूँगी अपनी मुक्ति के लिए।”

आवेग से कहने चली तो गीता ने उसके जलते मुख पर अपना हाथ रख दिया, “मै नही चाहती, न कभी सोचूँगी।

दोनों चुप हो गयी। अजीब-सा सन्नाटा वहाँ घर करने लगा, जैसे अस्तित्व ही सन्न हो गया हो।

चित्रा फूटी, “मेरा स्त्री नाम है, पर हँ नही, यह तुम्हे अनुभव करके मैने जाना है। तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारे आदर्ष, तुम्हारी मान्यताये मुझे नही मिली। मुझे उन अभावों की कभी अनुभूति भी न हुई। अनुभूति तब मिली जब मै खो चुकी। मेरा सब कुछ पीछे है—छूटा हुआ, तुम्हारा अभी सब कुछ आगे है। उस पर मै अपनी छाया नही पड़ने दूँगी।

एकाएक वह चुप हो गयी, जैसे स्वर और लहरा मे घूमते हुए संगीत को अचानक अपना सम मिल गया हो।

चित्रा !

आरक्त मुद्रा में निष्पेश्टा बैठी हुई, रोये हुए षिषु की भाँति लग रही थी।

गीता !

देवन की कल्पना, उसकी दृष्टि उसकी घुटन और भूख जैसे सब नगी होगर एकीकृत हो गयी और गीता में फैलने लगी। उसने देखा, जैसे सामने की स्थूल प्रभूविष्णु चित्रा पिघलकर छोटी होती जा रही है।

आवेग से गीता ने बढ़कर चित्रा को अपने कंधे से चिपका लिया और उसके भीतर का सारा तनाब टूटने लगा। उसके सर पर हाथ फेरती हुई वह बोली, "तुम मे अपार षक्ति है चित्रा । तुम दर्पण हो, जिसके भीतर से लोंग देखना चाहते है।"

"मै उसे अँधा बना लूँगी।"

वर्शा की बडी-बडी बूँदे गिरेन लगी। सागर को लिए हुए आया लौटी।

तेजी से चित्रा जाने लगी। गीता ने उसे बाँधना चाहा, पर वह रूकी नही । तेज वर्शा के बीच से वह पैदल भागने लगी।

गीता ने घूम-घूम कर उसे निहारा, पर जाने वाली तो भीगती हुई भी चली जा रही थी, चली जा रही थी।

कई दिन हुए देवन ने गीता से स्पष्ट कह रखा था कि उसके दफ्तर मे काम बहुत बढ़ गया है। इसलिए चाय पर खाने पर उसका इन्जतार न देखा जाये। जिसे जीना है वह अपने आप खा-पी लेगा।

अकेली ज बवह जाय पीने बैठती, तो वह आया को अपने पास बिठा लेती। कोई खिलौना पकड़ाकर, बीच में सागर छोड दिया जाता। तीन कप चाय बनाती । एक आया को देती। एक कप की चाय उँगली स्पर्ष कर उसे सागर के आँठो से चढा देती। जब वह नन्ही, पतली जिह्वा से उस रस का स्वाद लेने लगता, तब वह स्वयं चाय पीने लगती।

उस समय वह सोचती, देवन को अपने को कितना अकेला बनाता चल रहा है। यह क्या है ? क्या है ?

बार-बार उसके मन में यही बात उठती कि गीता माँ, तू अतिरिक्त रूप में उसके साथ गुँथी है, उस पर ऐसी लदी है, जो बोझिल है, अडोल और अव्यय है।

और चित्रा ?

वह जो अदभुत है !

वह तो मुझे उन्मेश देती है—अनोखी दृष्टि। मुझे एक अप्रतिम गरिमा और महत्ता देती है। तेरा जो अनादृत था, उसे तो वह समादृत कर गयी। मुझे आदर्ष जता गयी। मेरे पिटते टूटते हुए को वह सम्हाल गयी, अतिरिक्त स्वास्थ्य भर गयी।

यह कितना बड़ा दायित्व है ?

कैसा आदर्ष-स्वप्न है ? मै अब स्वप्न नही देखूगी, धोखा होता है।

बस, चलती चलूँगी — जो यथार्थ है, आज वही मान्य है।

स्वप्नों का दायित्व, इसको वहन कौन करेगा ? कैसे होगा ? चारो ओर तो अन्तविरोध है। मै अकेली ; झूठ हूँ ! जिसे मैने अपनी आत्मा से बाँधा संजोया ; जिसके मै में मेरा अस्तित्व गुंथा, वह 'मै' तो नही बदला। अजीव ही रहा । न जाने क्या चाहता है ? और उस चाह में वह निरन्तर अकेला होता चल रहा है।

नीचे, मिसेज पाल सिंह से देवन को पता चला कि उसके घर चित्रा गयी थी।

देवन प्रतिक्रिया से भर गया। गीता षत्रु है। सागर उसकी षत्रुता है। चित्रा उससे कहती है कि देवन ! तुम मुझ से न मिला करो। ओम हम दोनो क दुष्मन हैं मैं ओम की पत्नी हूँ। तुम गीता के स्वामी हो !'

देवन के मन में प्रतिक्रिया भरती गयी ; पर फूटी नहीं। मन पर विशदंष करके रह गयी। प्रतिक्रिया कहती थी कि चित्रा को पीस कर पी ले, गीता को भापडो से उडा दे। उससे जवाब माँगे— चित्रा क्यो आयी थी ? क्यो चली गयी ? बिना मुझ से मिलाये तूने उसे जाने क्यो दिया ?”

गीता ने स्वयं उससे सब बता दिया। चित्रा की पूरी बात वह कह गयी पर देवन पर जैसे कोई अनुभाव न हुआ। ठंडे भावो में वह सिगरेट पीता रहा।

गीता ने तब स्पष्ट जान लिया, उसका देवना पर कोई प्रभाव नहीं है। वह ऊब गया है, उनका मौन, हम दोनो की उपेक्षा है।

और यहाँ दोनो का आत्मसम्मान घटता है। उसकी गृहस्थी, उसके प्रति चित्रा की धारणा , सब कलंकित लगती है। स्वयं उसके देवन का स्वरूप बिगडने लगता है।

उस घडी पूरे चॉद की रात थी। कही बादल न थे। हवा थी, और उसकी व्याप्ति भी थी। समय आधी रात से आगे बढ़ रहा था।

गीता उठी। ठंडे पानी से आँखे धोयी। गला साफ किया। कुछ देर बिजली और तार के खंभो पर बरसती हुई चॉदनी को देखती रही। फिर अपने घर के सन्नाटे को देखने लगी। जिस बुरे की व्याप्ति थी, जो कुछ भी अभिषप्त था, एक-एक को वह अपने में समेटती गयी।

फिर एक अप्रतिम बल और उत्साह से वह देवन के पास गयी। अधिकार पूर्वक उसे जगा लिया।

बिराग से बोली, “ मैं ढाई बजे की मेल से बनारस चली जाऊँगी। ”

देवन निष्चेष्ट था, बल्कि ठंडा पड़ा रहा।

कुछ देर गीता भी चुप थी।

दृष्टि गिराती हुई कहने लगी, “ चाहो तो आया को रखे रहना, नहीं तो जबाब दे देना, जैसी सुविधा हो ।”

देवन कुछ फाड़-फाड़ कर देख रहा था, या देखना चाहता था, पर दृष्टि कही जम नहीं पा रही थी। या उसमें कुछ और व्याप्त थी, जो बहुत दिनों की थी तथा वह 'और' उसकी दृष्टि हो गयी थी। उसी दृष्टि को तोडकर वह देखना चाहता था।

उसने आहत स्वर से पूछा, “बनारस जा रही हो ? क्यो क्या बात है ?”

“कोई बात नहीं है, वैसे ही, जैसे बहू अपने पीहर लौटती है।”

“कि जाती है ?”

गीता सर हिला कर रह गयी। दोनो चुप हो गये और धीरे-धीरे एक मौन खिचता गया। जैसे 'कोई बात नहीं' के अन्तस् से वह बात सन्नाटे के रूप में फैल रही हो, जो एकांत सत्य थी, व्याप्त थी, कंठ तक फँसी थी।

“कुछ कहोगे नही ?”

देवन जैसे कुछ स्मरण कर रहा था, पर बॉध नही सक रहा था। गिरी वाणी से कहा ,
“माये जा रही हो ।ज्यादे दिन हो गये एक जगह रहते—रहते ?”

गीता फूट सी पडी, “ यह नही देवन !..... ” गले तक भर आये हुए को वह संयम से
पी गयी, बस इतना ही छलका , “ मै जा रही हूँ बस, और कुछ नही ! ”

देवन ने जाने क्यों मुस्करा आया, पर झट इसे गम्भीर बना लिया। फिर अपने को ढीला
कर निश्क्रिय हो गया। जैसे थककर ऊँघने लगा। जिस से आँख मूँदी रहे। दृष्टि मिले नही।

गीता ने “कहा सुविधा हो तो मुझे गाडी पर बिठा देना, नही तो आर्यादादा को संग कर
देना।”

‘यही अच्छा होगा ! ’

बेहद ठंडा था स्वर । गीता छू गयी। रोने को आयी। झट भागी वहाँ से बाथ रूम मे
गयी। निःषब्द रोती रही और नल खोलकर साथ ही साथ आँखे धोती रही।

हृदया थमता ही न था। अपना अभियोग, अपना निर्णया स्वयं का न्याय पूरा अस्तित्व
पिघल रहा था। पर गीता वेदना की एकांत सत्ता से विद्रोह कर रही थी। उसके हाथ, पाँव मुँह,
नासिका जॉंग कटि, वक्ष सब उसके साथ पर जैसे वही अपने साथ न थी।

वह चौके में गयी। रोषनी की और खडी खडी अपनी माँ, पापा जिया और अपने अध्ययन
की सुधि करने लगी। लेकिन यह सुधि तो पीछे रह जाती थी, आगे और अनेक सुधियाँ पंख बाँधे
फट पड़ रही थी।

“प्राइवेट शिक्षा कोई पथ है ! न वातावरण मिला न विकास न दृष्टि ।

सब अधूरा, सब सिमटा सिमटा।”

‘षरीर , आकृति, रूप विन्यास, औरत यहाँ देखी जाती है।’

‘तुम्हारी निरपेख सत्ता, तुम्हारी अपनी गरिमा, जिससे मै दमन चाहता हूँ विनय नही, सेवा
नही, पराजय नही।

‘घर आँगर, दीवारें पूजा पाठ यह सब क्या है ?”

अपनी आत्मा से विद्रोह करके गीता इन सुधियो से पीछा न छोड़ा सकी।

वही उसी प्रकाश और सन्नाटे में वह अपने को जकड़ कर बैठ गयी। मुँह को अंक मे झुका
लिया — झुकाती चली गयी। वक्ष की गहराई में समा गयी—तो मुँह छिपाने के लिए प्रकृति ने मुझे
वक्ष स्थल में इतनी गहराई दी है।

गीता के भीतर कुछ हँस आया। आत्मा गौरव से वह भर आयी। यह गहराई तो मेरा सागर
है। अनन्त है, जिसकी में हूँ—जिसकी यह ‘डी हेविन’ की गृहस्थी है— जिसका पति देवन है।

वह अपने आप में बँधती गयी। जो बिखर रहा था। अपने आप समन्वित होने लगा।

चौका जलाया । घी, चीनी, मैदा, दूध, मेवे और बेसन आदि सब साधनो की उस ने अपने
चारो और फैला लिया।

देखते ही देखते उसने कई तरह की मिठाइयाँ बना डाली । कई तरह के नमकीन ढेर कर दिये । उन्हे एक-एक करके नास्तेदान में भरा, आलमारियों में रखा । फिर भी जब कुछ सामान उचित बर्तन में रखने से बच गया तो उन्हे प्लेटो में सजा दिया ।

फिर उसे ध्यान हुआ, सुबह हो गयी है । आया आ पहुँची है । सागर उठ गया है । जिसे आज रोना नहीं आया । पलँग पर खेल रहा है । देवन सब देखता हुआ खडा है—अवष, निरपेक्ष ।

तभी आया को पता चला कि रानी बहू बनारस जा रही है । क्यों एकाएक — अकस्मात जा रही है । इस पर गीता ने उसे दबा लिया, “यह सब साहब के नाष्टे के लिए है । घर है तो बाजार न जाना । जो साहब कहेगे वही करना । वही मानना । कुछ अपनी न हॉकना ! ”

आया को जादू मार रहा था । वह अवाक् तो थी ही, पर न जाने क्यों तड़प रही थी ।

वह कही जा रही है ; गीता ने किसी और को कानो कान तक खबर न होने दी— घोश माँ और प्रतिमा जिया तक भी नहीं ।

तुलसी के गमले में नयी मिटटी डाल दी । और पानी देकर उसे धूप में खिसका दिया । तपो सूर्य को गर्मी के लिए आज्ञा दी । वायु को रोक लो ।

समूचा बिरवा फूल से झुका जा रहा था । फूल बैगनी रंग से काले हो गये थे, जिनके सूक्ष्म षिखर सुनहरे तपने जा रहे थे ।

देवन की और निहार कर गीता ने सर झुका लिया , “इस पौधे को इसी तरह पडे रहने देना । इसे किसी तरह की कोई अपेक्षा न होगी । ये स्वयं अपने धर्म हैं । ये देते ही है, कुछ लेते नहीं है ।”

गीता ने दृष्टि ऊपर उठायी ; यह सब बकवास सुनने के लिए वहाँ देवन न था । अकेली गीता थी । जो अपने आप से कहने लगी ये काले-काले फूल अपने भीतर फल है और अनेक पौधे है । ये फूल अपनी सत्ता मिटाकर दूसरी सत्ता देते है—तभी झुके है, तभी काले है ।

आया को लेकर वह रेटलेज रोड के सिरे पर गयी । वहाँ से लौटती हुई वह तार और बिजली के खंभो की परीक्षा करती गयी । अगले चौराहे तक गयी । दोनो और दीवारों पर ढूँढती फिरने लगी । जो कुछ जहाँ कही भी लिखी मिली, उसे वह अपना समझ कर छिप-छिप कर मिटाती गयी । जी न माना तो मिटे हुए को भी फिर देखती गयी । तब आष्वस्त हुई ।

ठीक दो बजे आर्यादादा आये । गीता ‘डी हेविन’ छोडने को हुई ।

देवन की सी षक्ति वह अपने में सँजो रही थी । किसी परोक्ष सत्ता ; और उसकी निश्टा में अपने को जकड़ रखा था ।

इसी गति में वह सागर को गोद में लिये देवन के पास गयी ।

विष्वास से चरन छूने को झुकी तो देवन तीव्र पर काँपते स्वर में चीख उठा , “ जलील मत करो गीता ! चुपचाप चली जाओ ! ”

जलते दिये की लौ की तरह वह मूक निष्चय खडी रही ।

विनय से बोली, “अपने सागर का तो नमस्ते ले लो ।”

स्वर एकाएक टूटने को हुआ तो झट उसने सागर के नन्हे हाथों को अपनी जुड़ी हुई हथेलियों के भीतर बाँध, सामने बढा दिया। और अपने मुख को सागर के गुँधराले बालों में छिपा लिया।

ताँगा चला। रोती आया भी चली। तब गीता घबडाने लगी। भीतर कुछ सर्व हो आया और वह कँपने लगी। मुँह से निकला, "आया माँ, जाओ 'डी हेविन' आगे नहीं।

ताँगा बढा चौराहे से जब 'डी हेविन' न दिखाई दिया तो वह बिजलली के उन काले-काले तारों को देखने लगी, जो 'डी हेविन' में प्रकाश ले जाते हैं।

गीता सैकिन्ड क्लास में बैठी। सागर आर्यादादा की गोद में खेलता रहा।

वह बार-बार चौकती सी प्लेटफार्म की भीड में कुछ जैसे ढूँढने सी लगती। चारों ओर इस जिज्ञासा में निहारती, जैसे वह किसी विदा देने वाले से मिलना चाहती हो। कुछ खो रहा है, छूट रहा है, पर भूल नहीं रहा है।

गाडी ने पहली सीटी दे दी। देखते ही देखते दूसरी भी। सहसा गीता की भाव दृष्टि में आया— कही देवन छिपा खडा है। आखिरी टी स्टाल के पीछे जो पानी पीने का नल है, जहाँ 'साफ मिटटी' लिखा हुआ है, उसके पास।

देवन मैं वहाँ नहीं आऊँगी, मेरी गाडी छूट जायगी।

तीसरी सीटी हो गयी।

तब वह दृष्टिछाया गीता के पास दौडी और खिडकी से लटक गयी। गीता ने अपने मन में उत्तर दिया। मैंने कहा था न देवन, मुझे दक्षिण की यात्रा बहुत प्रिय है। मेरा बहुत जी होता था, मैसूर घूमने के लिए, अजंता देखने के लिए, समुद्र तट पर खडी होने के लिए, मैं आज उसी यात्रा पर जा हूँ। तुम्ही भेज भी रहे हो।

धक्का देकर जब गाडी प्लेटफार्म छोडने लगी, तो वह बेहोष सी हो गयी। लगा, खिडकी से लटकी हुई छाया गीता स्वयं हैं और यात्रा करने चाला देवन है, जिसने लटकी हुई छाया से एकाएक अपनी खिडकी छुडा ली है।

.14

अपने को खूब थकाकर, विस्मृति में गाड़े हुए देवन 'डी हेविन' लौटा। जीने के ऊपर बिजली की रोषनी अभी बुझी न थी।

सम्भवतः देवन के फ्लैट में बाहर से ताला पडा देख कर मिसेज घोश ने बुझाया ही न था।

कुछ क्षण बन्द ताले को मजबूती से खींचे हुए देवन चुपचाप खडा था। फिर कुंजी निकाल उसे खोलने लगा। बडा ताला, बडी-बडी कुंजी, ऊपर बिजली की रोषनी, पर ताला खुल न रहा था। कुंजी ताले में जा ही न रही थी।

हाथो को जितना ही वष में करता, कुंजी उतनी ही फिसल कर कॉपती जाती।

जब देर होने लगी, तो वह बन्द किवाड़ को धक्के से खोलने लगा।

दौडी हुई मिसेज घोश आयी। देखकर खबडा गयी।

ताला खोल कर देवन को भीतर ला खडा किया।

कतार स्वर में पूछने लगी, "गीता कहाँ है ? कहाँ है गीता ?"

देवन ने झट एक कागज पर लिख दिया -बनारस गई ।'

सूने घर में जब देवन खडा हुआ, इधर-उधर जब दृष्टि घूमी तो उसकी सारी थकान, जो नीद के लिए थी सारी विस्मृति, जो षान्ति के लिए थी, धीरे-धीरे काफूर होने लगी। घर का सारा सूनापन उसके भीतर खिचने लगा।

लगा रहा थ, 'डी हेविन' से गीता और सागर कही गयी नही है। एकाएक वस्तुओ में , दिषि पलो में चुप खडे है। कोई आवाज उभर रही है। जो फैसला माँगती है।

देवन ने बहुत दिनों की बन्द एक आलमारी खोली। उस में एक चिर सचित और एकान्त इच्छा का साहित्य थां कुछ तस्वीरों वाली किताबें, कुछ मोटी-पतली अग्रेजी की पुस्तकें, षेश आलमारी में खाली बोतल और डिब्बे।

उस असंख्य पृष्ठो का साहित्य उसने क्षण भर में पॅलग र बिखेर दिया, जो उसके लिए स्थूल षरीर है, इन्द्रिया है और उनके माँसल उपभोग है।

गीता से पहले, जिस रात उसे नीद न आती थी, तब वह इसे पढ़ता-पढ़ता सो जाता था। आज देवन को वैसी ही नीद चाहिए। वही नींद वही विस्मृति।

उसे एक नई युक्ति सूझीं

टाइपरायटर उठाया। कागज भरा। और उसमें से एक किताब के कुछ पृष्ठों को टाईप करने लगा। पूरी किताब समाप्त होने को आई, तब उसे होष हुआ- उसे नीद तो नही आयी। वह सब कुछ तो नीद के लिए था । पता नही, नीद किसके लिए थी।

वह कमरे से उठकर बहार आया। सुबह हो रही थी। उसे अचरज न हुआ ग्लानि हुई - रात बीत जाने पर । जगी हुई रात।

घर से निकल कर बाहर टहलने के लिए निकला। सड़क पर आते-आते उसके पैर काँपने लगे। थकान से पूरे शरीर में जकड़न भर रही थी। फिर भी यह टहलना ही श्रेयस्कर समझता था।

कुछ दूर जाने पर उसे भूख मालूम होने लगी।

'डी हेविन' लौटा। गीता की बनायी हुई मिठाईयों नमकीन; और उनपर उसकी पतली-पतली उँगलियों के स्पर्श, धब्बे वह सब को देखता। न खोन के लिए संकल्प करता, पर खाता गया। भूख भर खा चुकने पर उसे होष हुआ—पेश नाष्टे को वह ऑफिस में बँटवा देगा। उसे दया नहीं चाहिए।

चपरासी के हाथ उसने दफ्तर भेज भी दिया और बड़े बाबू को लिख दिया— 'दफ्तर में यह सब बॉट दिया जाएं।'

आया पहुँची। देवन सोफे पर ही सो गया था। खडी सोचती रही। हिम्मत बाँध कर उसे षिषु की तरह संभाल, उसी सोफे पर ठीक लिटा दिया, और उस पर हल्की सी अंटी डाल दी।

बहुत धीरे-धीरे निःस्वर कमरो की झाडने-पोछने लगी। नाष्टे का समय हुआ, चाय बनाने लगी। पानी को कई बार खौलाया, टंडा किया, फिर खौलाया और बैठी-बैठी साहब के जाने की राह देखने लगी।

दस बज आये। फिर भोजन की बात सोचने लगी। दो सब्जियाँ तैयार कर ली ; और चुप बैठी रही।

मिसेज घोश आयी, प्रतिमा आयी। पर आया ने किसी से कोई विशेष बात न की।

न जाने क्यों, कैसे, नीचे से मिसेज पाल सिंह भी आयी। हेलो ! हेलो ! करती हुई साहब के कमरे में जाने लगी, आया ने उन्हे कमरे से बाहर खीच लिया।

अधिकार से कह दिया , "इस तरह आप ऊपर न आया कीजिए ।" उस निकलवा देने की धमकी देती हुई वह नीचे उतर गयी।

सर झुकाये वह चौके के सामने बैठी।

डेढ बजते-बजते देवन की आँख खुली। खुली क्या, उसे होष हुआ। दौडा पलंग पर जा गिरा और अंगडाईयों से अपने शरीर को तोडने लगा।

आया सामने पहुँची , "चाय लाऊँ ? या भोजन कीजियगा ?"

देवन सूनी, टिकी हुई दृष्टि से आया को आधार बनाकर देखता रहा—गीता खड़ी है, जिसके पीछे चित्रा खड़ी हँस रही हैं।

बिना कुछ बोले वह कमरे से बाहर चला आया।

समय देखा।

आया से पूछा, "क्या कहॉ ? "

"चाय बनाऊँ ?.....खाना वैसे तैयार है ! "

एक क्षण देखकर कहा, " मैंने तो कल तुम्हें जबाव दे दिया था, मुझे अब तुम्हारी नौकरी की कोई जरूरत नहीं ! "

आया को गीता याद आयी—'आया देखना, तो सासब कहेगे, उसे मानना जबाव न देना।'

आया सर झुकाये रही।

“जबाव क्यों नहीं देती ?”

“रानी बहू ने जबाव देना मना किया है। ”

रुक कर बोली, “मेरी नौकरी न सही, साहब बाबू ! मैं वैसे ही आया करूँगी। ऑगन धो दूँगी, कमरे झाड़ू-पोछ दूँगी। आपका भोजन बनाकर चली आया करूँगी।

“बको मत। ”

आया सामने से हटकर चौके में चली गयी। चाय तैयार कर, चुप-चाप देवन को दे आयी। उसी भौंति खाना भी खिला दिया।

अगली चार रातों और बीती। ‘डी हेविन’ की छाया से दूर, और घरों में, क्लब के फर्ष पर। मुहम्मद बाग।

लखनऊ क्लब।

लाल बाग।

नरही ! जेमखाना क्ल में एक रात उसने चित्रा को देखा। किसी पायलाट अफसर के सँग थी। वहाँ कही ओम न था।

और दूसरे बैड के बजते ही उसने देखा, उस व्यक्ति के साथ चित्रा बाहर चली जा रही थी।

दूसरे दिन, नौ बजते-बजते जब देवन आफिस जाने की तैयारी कर रहा था, उसके घर चित्रा आयी।

देखते ही देवन उददीप्त हो आया।

देवन से कुछ पूछा नहीं, गीता को ढूढने लगी। दो बार पुकारा भी। तब देवन से बोली, “गीता नहीं है क्या ?”

“पता नहीं, पुकारो न उसे ! ”

एक क्षण खड़ी रही। फिर तेजी से नीचे की ओर मुड़ी। देवन ने बढ़कर उसे पीछे से पकड़ लिया। कमर से उठाये हुए वह अपने ड्राइंग रूम में आया और उसे सोफे पर पटक दिया।

“क्या चाहते हो ?” निष्पेश्ट सी वह बोली।

“मौत ! ”

“मेरी ।” चित्रा ने कहा , “मैं स्वयं कर लूँगी तुम अपना हाथ क्यों रँगोगे ?”

“क्योंकि मैं अपनी भी चाहता हूँ।”

चित्रा उठने लगी। देवन ने निर्ममर्ता से उसे अपनी बाहूओ में जगड़ कर भीच लिया। जैसे वह अपने को बौंध कर तोडना चाहता हो।

कॉपते स्वरों में कह उठी , “इससे कुछ नहीं होगा देवन ! इस षरीर ने हमारा विष्वासघात किया। यह षरीर है, आकृति है, यह भूख देती है, और उस भूख को यह कभी षान्ति नहीं देती है। ”

“बको नहीं । ”

“मुझे घृणा हो गयी है इससे । यह शरीर मुझ पर बोझ—सा है । मैं चाहती हूँ, यह कही खो जाय । उतर जाए मुझ पर से ।”

देवन ने उसे ऊपर से नंगा कर दिया । एकाएक चित्रा के कानों में एक भयानक चीख सुनाई दी—किसी माँ की, किसी श्रेयस की । ऐसे भाव की जिसे कही शरण नहीं मिली है । शक्ति से चित्रा ने देवन के सामने शत्रु—सी खड़ी हो गयी । ऐसी घृणा, इतनी अपेक्षा अपनी दृष्टि में भरकर वह उसे तकने लगी कि देवन कँप गया ।

वह पहचानी न जा सकी ।

बेहद कटुता से कहा, “रूको, मैं फिर अभी आती ।”

सचमुच चित्रा लौटी । रक्षे वाले ने एक ट्रंक ऊपर ला दिया ।

“यह तुम्हारा ट्रंक है देवन ! इसे सँभालो !”

देवन खडा रहा । उसकी अनुभूतियों में धीरे—धीरे कुछ उददीप्त होने लगा । सामने बढ़कर उसने दीवार थाम ली ।

चित्रा कह रही थी, “बहुत दिन हुए, इस भरे ट्रंक की ताली मैंने कही फेंक दी । इस तोड लेना, आई हेट यू, एण्ड माई सेल्म मोर, एण्ड ऑल दैट, वहैर वी ऑर ।”

पर यह कहते हुए, चित्रा के मुख पर कही घृणा, कोई कटुता न उभरी, कुछ और ही झलक आया — वेदना, असीम पीडा, और उस पर करुणा का स्पर्श ।

मुख की उन रेखाओ के साथ, देवन ने ट्रंक को देखा । भीतर ही भीतर वह लड़खड़ा गया ।

दोनो हाथो से दीवार थाम ली ।

चित्रा पास आकर बोली, “ पुरुश, दीवार थामे क्या खडे हो ? मुझे मारते क्यों नहीं ? मुझे ढकेल कर अपनी सीडियों से गिरा क्यों नहीं देते ? हाऊ मीन आई एम, यू मस्ट हेट मी ! ”

देवन कुछ उत्तेजित हो आया । दायों हाथ भींचकर वह आवेष में घूमा, पर अपने—आप ही में टंडा हो गया ।

भाव—त्रस्त्र हो, वही सोफे पर बैठ गया । दोनो हथेलियों में अपने मुख को टिकाये बिल्कूल टंडी दृष्टि से अपलक उसे देखता रहा ; वह लौटने लगी तों देवन ने जैसे अपने व्यंग्य किया , “ और क्षमा भी चाहती हो न । ” नहीं ! कभी नहीं ! “चित्रा के स्वर में एक शक्ति थी ।

फूट कर देवन हँस आया, “ क्यों कि वह मेरे हाथ में है ! ”

“नहीं, वह किसी के पास नहीं है, मैंने खूब देखा है, वह सिर्फ गीता के पास है । ”

नीचे देखती हुई कहने लगी, “मैं बदला नहीं दे सकती । पर जो कुछ भी मुझ में पेश है, उसी का स्वर है कि तुम्हें जल्दी से रास्ता मिल जाय । मेरी भटकन तुम्हें मुक्ति दे । तुम्हें अपनी दृष्टि मिले ।

एकाएक उसे लगा कि देवन उसे बाँधने आ रहा है । वह फिर जग गयी । देवन पास आ खड़ा था ।

समने से चित्रा जाने लगी। इस बार उसके घुमें हुए पाँव थके-थके से थे। जीने से उतरती हुई वह अपने दोनो हाथों से दीवार का सहारा लेती चल रही थी।

सड़क पर उतरी। पाँव से लँगड़ा रही थी।

घूमकर देखा नहीं, सामने देखती चली गयी।

.....चित्रा और गीता.....

15

चित्रा

चित्रा का यह रूप सुनकर, देवन तुम में आश्चर्य नहीं होना चाहिए। तुम में एक स्वस्थ प्रतिक्रिया हो, क्यों कि विष्वासघात नहीं है।

अपनी करुणा की दृष्टि से देखों, यह कितना सहज है।

ओम और चित्रा ने आपस में तलाक ले लिया।

पर मैं यह कहूँगी, मैं ओम को तलाक देकर नहीं, बल्कि उससे पाकर जा रही हूँ। इसे मैं पुरुष की असीम उदारता मानती हूँ, जो उसी की क्षमता है। ऐसे भाव का कोई प्रतिकार नहीं हो सकता, फिर भी मैं इस कृतज्ञता को कभी भूल नहीं सकती। तुम सोचेंगे कि 'मैंने यह क्या किया?' पर जब तुम मेरे सम्पूर्ण को सोचेंगे, तो तुम्हें उत्तर मिल जायगा।

देवन ! तुम मुझे ढूँढने के लिए देहरादून और मसूरी की घाटियों तक गये थे। अब तो नहीं जाओगे। वे घाटियाँ अब सममतल हो चली हैं।

तुम ने मुझे बनाया, उद्धार दिया। पर मैंने तुम्हें बनाया नहीं, बहुत कुछ बिगाड़ा ही। देने के नाम पर छीन लिया। इन दोनों पक्षों को मैंने तब समझा, तब अनुभूति मिली, जब मैंने तुम्हारी गृहस्थी देखी, गीता को देखा।

तभी मुझ में मेरा जगा। कान्वेट की शिक्षा जगी। वे प्रार्थनायें सजीव हो आयी, जिन्हें 'होली मदर्स' गाया करती थी और जिन्हें हम बिना भाव के दुहराया करते थे।

देवन, मुझे भाव मिल गया।

मैं षीतल प्रदेश से आयी थी। ठंड में पली थी। मेरे किनारे के भावों ने मुझ में भरा था कि षरीर को पालो, षीतलता में षरीर को एक तरह बनाये रखो— तरुण—मॉसल—गौर, यही जीव्य होगा। यही धुरी होगी तुम्हारे घूमने के लिए।

पर अब मैं गर्म देख में जा रही हूँ—चलकर नहीं, उड़कर। उस दिन तुमने जेमखाना क्लब में उस पायलाट अफसर को देखा नहीं था ? उसी के संग जुड़कर मैं उत्तर दक्षिणी छोर पर जा रही हूँ। पर समुद्र के पास नहीं, उससे इधर दूर ही। जहाँ खूब गर्मी होगी, जिससे मैं जल्दी पा सकूँ। गर्म में इसीलिए जा रही हूँ, जिससे यह षरीर षीघ्र गल जाय, और इसके भार से मैं मुक्ति पा जाऊँ।

ओम के साथ तुम ने ही मेरा ब्याह रचाया था। हमारे बीच तुम्ही साक्षी थे।

पर, जब हमारा तलाक होने लगा और हुआ, तुम्हें कानो—कान खबर न मिली। यह सब मैंने ही न होने दी!

जो ब्याह का साक्षी था, वह तलाक का साक्षी क्यों हो ? जो भाव अपने रूप ही में पवित्र है, महान है, उन्हें अपरूप क्यों किया जाय ? चुपके से स्वयं ही क्यों न हो जाया जाय !

यह खबर तुम्हें उसके दूसरे दिन मिली होगी। जब तक मैं वहाँ से बहुत दूर उड़ आयी हूँ।

लोग तुम्हारे घर आ-आकर कहते रहे होंगे, 'देवन ! तुम्हें पता नहीं, चित्रा ने तो ओम को तालक दे दिया !' कहने वाले खत्म हो जायेंगे तो आवाजे स्वयं चल-चलकर तुम्हारे पास आयेगी।

'देन यू मस्ट पिटी मी, एण्ड योर सैल्फ, एण्ड दे होल सेट-अप !'

मैं तुम से क्षमा नहीं माँगती। एकान्त दया भी नहीं चाहती। तुम से केवल एक सत्य चाहती हूँ। भावों से तुम मुझे तलाक दे दोगे। तुम उन्मुक्त हो जाओ। अपने स्वयं के दृष्टिकोण में जियो। कभी भी जीने के लिए होष न खोओ। जो कुछ तुम्हें बाँधता था, भँवर में डाले था, बीच में सदा धुँएँ की तरह सुलगता था, वह जलकर अग्नि हो जाय ! भँवर वह कर धारा बने जाए।

उस ट्रंक के अनेक कीमती कपड़ों और तुम्हारे संचित उपहारों से कभी गीता का षरीर न छुआ जाय। उसे दिखा अवष्य दिया जाए, पर उन्हे उसके प्रयोग में न लाया जाय।

षहर में बेचारी ऐसी असंख्य औरते हैं, जो बेहद भूखी हैं, पहनकर भी नंगी हैं। वह ट्रंक उन्ही के नाम भेंट कर देना।

मुझे विष्वास हो आया है, अब तुम मेरी झूठी आसक्ति में ओम के घर नहीं जाओगे। मोहवष एक दूसरे का अनादर नहीं करोगे। गीता को अपने आधार से आत्मसन्ताप नहीं होने दोगे। मुझे गंदे-गंदे क्लबों और भूमिओ में नहीं ढँढोगे ! कभी जीवन से भागोगे नहीं, भागकर षराब में, भाग कर कटुता में, अहं के विकार में।

जो तुम्हें मिला है, वह अनन्य है, अमूल्य है ! आज तो वह किसी को नहीं मिलता। मैं तो उसके स्वप्न देखती हूँ, और देखती-देखती उसी की नीद में मर जाना चाहती हूँ-गोद में सागर है, और ऐसी बहू है, जो प्रेमिका है, पत्नी है और सब से ऊपर, कही माँ भी है।

"मान जा बीरू, इस तरह षरारत न कर ! जा कही बाहर खेल आ ! "

"नहीं जाऊँगा ; क्यो जाऊ ?"

"षोर करेगा, देखता नहीं, तेरे सागर को इतना बुखार आ रहा है, और तू सर पै चढ़कर लढ़ रहा है। षर्म नहीं आती ! "

"क्यो षर्म आये ? क्यो मेरे भइये को बुखार आ रहा है ?"

"जा भगवान से पूछ, वही बतायेगे !

"भगवान से क्यो पूछ ! मैं तुझी से पूछूँगी। नहीं बतायेगी तो मैं भगवान को कही फेंक आऊँगी।"

"नहीं मानेगा ?"

"नहीं ।"

माता जी आयी। और तना हुआ वीरू पिट गया। फिर भी वह निष्चल खड़झ रहा। मैं रो आयी। दायें पार्श्व में बीरू को चिपकाये मैं बाहर बैठक में चली गयी।

न जाने कहाँ में गाली सीख आया था। बेधड़क उन्हें गाली देने लगा।

"अरे पागल ! कोई जीजा को इस तरह गाली देत है ?"

पर वह तो विद्रोह पर तुला था, "बडें जीजा बने है ! कोई ऐसा जीजा भी होता है ?"

“क्यो क्या बात है ? क्या खराबी है, उन में ?और तुझे से क्या मतलब ? पढ़ना लिखना कुछ नहीं है तुझे । ”

“कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया, फिर प्रौढ़ स्वर में उसने कहा, “सब जानता हूँ जिया ! मुझे सब पता हो गया है ! ”

“सब झूठ है। जब ठीक मैं जिन्दा हूँ बीरू ! सब झूठ है।”

“सब झूठ है ?.....पिताजी भी पड़ोस में षारदा और विमला की माँ, सब भूठ है ? बस, तुम्ही सच्ची हो ! ”

मेरा माथा घूमने लगा, “क्या कहते हैं लोग ?”

“मैं क्यो कहूँ, मैं तो मारूँगा उसे ! लखनऊ जाकर मारूँगा ! ”

“हाय सच, पागल हो गया तू ! अपने पूज्य को इसी तरह पुकारते हैं ! उनके प्रति ऐसी भावना रखते हैं ?तुझे तो उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा । कितना प्यार करते हैं ? भूल गये लखनऊ से उन्होंने तेरे नाम कितने पार्सल भेजे हैं। और उल्टे तुम इतने पूज्य को गाली देते हो ?”

उसे वही बैठक में छोड़कर मैं माता जी के कमरे में लौट आयी, बुखार में डूबा हुआ मेरा सागर पलंग से उठ-उठ कर मेरी गोदी में भागता था।

“क्या कहता है बीरू ?” माता जी ने पूछा।

मैं चुप थी। माता जी कुरेदने लगी।

“क्या बताऊँ क्या-क्या कहता है। भोला सा बच्चा ही तो है, कुछ कहा नहीं जाता, बस रोने की जी होता है। अजीब-अजीब बातें करता है। यह सामने दीवार पर टँगी हुई उसके जीजा की तस्वीर है, इसके लिए कहता है, इसे हटा दो यहाँ से ! नहीं तो मैं इसे नाली में फैंक आऊँगा।

लेकिन उसका क्या दोश ? उसे जैसा लगता है कह उठता है अभी संसार नहीं देखा है न ! घर की चहार दीवारी में बन्द है—जैसे मैं बन्द थी। बस भावुक बन कर रही गयी हूँ। बीरू तो बच्चा है, बड़े लोग तो बच्चे से भी बदतर हो जाते हैं ! ”

“मुझे कह रही है ?

“पिताजी जो है, वे भी कह जाते हैं—आये देवन मेरे सामने। मुझे मुँह दिखाये। ‘क्यो ऐसा कहते हैं ? देवन ने उनके साथ क्या बुराई की है ? कब उनका निरादर किया है। ”

“अच्छा चुप हो जाय। बोल नहीं सागर चौक जाएगा। ”

“आर्यादादा को भी बुरा भला कह देते हैं। उन्होंने मेरी षादी करायी ! षीतलराय जैसे प्रतिष्ठित घर मेरे लिए ढूँढा , बहुत पुरा किया उन्होंने ? स्वयं अपनी नहीं सोचते। लाडली बेटी को घर में बन्द रख कर बी०ए०, एम०ए० तक पढ़ा डाला। ”

“अच्छा, चुप हो जा गित्ती। चुप हो जा ! मैं हाथ जोड़ती हूँ। पगली कही की, रोती है, बच्चे को गोद में लिए हुए ! ”

“तुम भी तो उस दिन षारदा की माँ से कह रही थी, कि उस बार मेरी गित्ती बिमार होकर आयी थी, बदन में जैसे एक बूंद रक्त नहीं रह गया था।

इस बार बच्चे की तबियत नही ठीक रहती। ”

“हाँ कहती हूँ, क्या यह सच नही है ?”

“सच तो है माता जी, लेकिन तुम क्यों कहो ? यह बात लग जाती है।

मुझे ! जैसे किसी का अनादर होने लगता है ! ”

रात हुई। पिता जी किसी अच्छे डाक्टर को ले आये। बाताय गया कि सागर को निमोनिया हो गया है। डाक्टर की नजर मुझ पर पड़ी, तो मुझे भी घोशित कर दिया—बुखार इन्हे भी है। इन्हे कम्प्लीट रेस्ट मिलना चाहिए इन्हे नीद आती क्या ?

तुरन्त पिता जी ने उठा, “डाक्टर साहब, कुछ न पूछिये ! बस, किसी तरह बच्चे को आराम कीजिए ! जल्द अच्छा हो जाये। ” फिर मेरे सर पर हाथ रख, जैसे मुझे चेतना देते हुए उन्होंने कहा, “देख गित्ती ! मेरे कमरे में चलकर तू आराम कर । हम बच्चे को देख लेगे।

“कैसे होगा पिता जी , सागर तो तुझे एक क्षण के लिए भी नही छोडता। पलंग पर चोक उठता है। देखिए इसी तरह अंक ही में षान्ति पाता है ! ”

डाक्टर ने कहा, “ एक नर्स बुला लीजिए। ”

सुनते ही माँ चौकी, “एक नर्स क्या होगी ? हम लोक नही है क्या ?”

कोई नर्स फर्स मेरे घर में नही आ सकती। बच्चो के लिए मै तो जिन्दा ही हूँ।”

डाक्टर ने बताया, “कोई बात नही, चाहे जैसे हो। बच्चे को आराम मिलना चाहिए ! वह गोद में किसी तरह से भी न उठाया जाय। बिल्कूल हिले—डुले नही। लेहाफ से खूब ढका रहे। अगर मजबूरी है तो बच्चे की माँ ही बगल में सोयी रहे ! ”

इंजेक्शन देकर डाक्टर चला गया। इसी तरह पिछले तीन दिन से क्रम चल रहा। जाड़े की रात है। दिसम्बर बीत रहा है। लोग कहते है, इस वर्ष सब से अधिक ठंड पड़ रही है। पर मुझे तो नही लगता । मुझे क्यों नही निमोनिया हुआ ? मेरा पाप मेरे सागर पर क्यों उतरा ? वह क्यों बीमार है ? मै इसकी बीमारी को पी जाउंगी। बुखार को अपने में ओढत्र लूगी। कफ और बलगम को इस फूल जैसे नन्हें से षरीर में न रहने दूंगी।

आज कही से सितार बनजे की आवाज आ रही है।

“मंगल ! अरे मंगल काका ! ”

“क्या है बेटी ?”

“वह सितार कौन बजा रहा है ?”

“षारदा की भाभी है। तिरलोकी की षादी हुई है पता नही तुम्हे ?”

“आगरे की लड़की है। खूब नाचती है।”

“अच्छा, ये दोनो रोषदान बन्द कर लो ! सितार की बोल यहाँ तक न आये ! अच्छा नही लगता काका ! ”

“तो रोषन दान क्यों बन्द करू। उसी को बन्द कराता हूँ! ”

हर सुबह को सोचती हूँ कि देवन को एक पत्र लिखूँ। पर क्या लिखूँ। समझ में नही आता ! हृदया कुछ उत्तर ही नही देता, माता जी कहती है, देवर को तार दो, बुलाकर देखो तो ?

सब सही है, पर जिस भाव से वह कहती है, मुझे प्रीतिकार नहीं लगता। तार इसलिए दिया जाये कि देवन की परीक्षा हो ! और इस भाव की परीक्षा कि हमारे बीच सम्बन्ध कितना है ? और परीक्षा भी इस आधार पर , कि सागर बीमार है—उसे निमोनिया हो गया है।

मैं यह कभी न होने दूँगी। परीक्षा कैसी ? और किसकी ? कुछ नहीं, कोई तौल नहीं ! सब अपने आप तुल जायेगा। न मैं पत्र दूँगर न तार।

मैं अपने विष्वासों में स्वयं को तोलूँगी। संघर्षों में अपने मान को जीवित रखूँगी। तो आर्दष है, उन्हे अपने स्वार्थ के लिए क्यों गिराऊँ ?

एक बन्द लिफाफा लिए हुए बीरू आया।

आवेश में कहने लगा, “ देखो जिया, यह लखनऊ का ‘लेटर’ है। मैं उसको लिखावट पहचानता हूँ। पढ़ों मेरे सामने, क्या है ?”

बीरू को डॉअना भूल गयी मैं। सच मैं अपने को भूल गयी। पत्र देखा ; पूरा पढ़ा बीरू न माना। पढ़कर उसे सुनाया। उसे विष्वास न हुआ, स्वयं पढ़ने लगा।

“यह अँग्रेजी में क्या लिखा है बताओ।”

पढ़ने को भूल कर मैं उसे दबाने लगी, “यही नवीं क्लास में पढ़ते हो, ‘डाइवोर्स’ नहीं पढ़ पाते ! और मेरे मुँह लगते हो पापा से कहूँगी, फिर मार पड़ेगी ! देखना !”

‘डाइवोर्स’ के क्या मतलब होते हैं ?” बीरू पर कुछ न असर हुआ। मैं डॉटने चली। वह भागकर अँग्रेजी षब्द कोष उठा लाया। ढूँढकर मतलब लगा गया—“तलाक से मतलब—पति—पत्नी का विधान पूर्वक सम्बन्ध त्गाग।”

मैं ठगी—सी उसका मुँह देखने लगी।

वह कहता गया, “यही औरत है, ओम वही आदमी है। चलो अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। जिया तुम भी उसे क्यों नहीं ‘डाइवोर्स’ कर देती।”

कँपकर मैंने उसके मुँह पर एक जोर का चॉटा मारा। स्वयं चीख उठी। माताजी दौड़ी आयी। भागा वह।

“माता जी, इस पैतान की बात तो देखो, अपने जीजा के लिए कहता है—उन्हें तालक दे दो!”

निर्दोश बीरू इस बार पिता जी के हाथो पिटा। मैं सर मार कर रह गयी। कितनी बुरी हूँ मैं, बीरू कुमार के विद्रोह का दमन मेरे हाथो हो रहा है। जो विद्रोह, क्रान्ति के भाव मेरी गति के लिए वह उठाता है—अपनी भोली पवित्र चेतना से, उल्टे मैं ही क्यों उसे दमन करती हूँ ?

पूरे दिन तक वह मेरे सामने न आया। मँगल काका ने बताया, उसने अपनी सारी किताबें फाड़ डाली हैं। अपने कमरे में चुपचाप अकेले बैठा हुआ, दीवार पर कुछ लिख रहा है।

षाम को मैं चुपके से उसके पास गयी। उसे अंक में बाँध कर रोने लगी — “मुझे माफ कर दे वीरू ! मैं मर जाऊँ पर तेरा विद्रोह बना रहे !”

“बको नहीं, भाग जाओ यहाँ से !”

“कहाँ भागू वीरन ! लखनऊ से भागकर तेरे घर आयी हूँ। अब तू भी भगा रहा है।..... मुझे न माफ कर, अपने जीजा को तो क्षमा कर। कितने पूज्य है तेरे! सगर भइये के पापा है।

पूरा पत्र नहीं पढ़ा ? ले फिर से पढ़। देख कितने स्नेह से हमें पत्र लिखा है। सागर को पूछा है, मेरे स्वास्थ्य को पूछा है। तुम्हें अपार स्नेह लिखा है। मैंने तो उन्हें आज तक पत्र न दिया। पर उन्होंने तो दिया।

बीरू बोला, “ झट लिखो तुम भी। लिख दो कि भइये को निमोनिया हो गया है, “कम इमीडियेटली”-(फोरन आओ)।”

“मैं क्या लिखूँ ! मैं रूठी जी हूँ !.....जब, तू मेरा इतना विद्रोह वीरन है तो क्या मैं रूठूँ भी नहीं ! तेरा आर्दष कुछ तो निभाऊँ ! ”

कितनी जहरीली दवा है ! कब से भइये के सीने पर मल रही हूँ ! डाक्टर ने कहा है, इस दवा को लगाकर हाथ को कई बार साबुन से साफ कर लिया जाये।

सागर को आराम मिला। अब वह सो रहा है।

वीरू पानी ले आया है और बार-बार साबुन से मेरा हाथ धुला रहा है। मेरी रक्षा की कितनी भावना है इसे !

बीरू किताब लेकर आया ! मेरे पास बैठकर मन ही मन पढ़ने लगा।

चित्रा की सुधि होती है। न जाने क्यों उस से गले मिलकर रोने की इच्छा होती है। कितना अभेद्य कवच था उसका। बनारस लौटने की बात मैंने उससे न की थी। उसने भी न बताया कि वह सदा के लिए लखनऊ छोड़ रही है। उत्तर से दक्षिण चली गयी। कभी भेट होती ! न भेट हो, तभी तो त्याग गयी। कितनी शक्ति है, तू कितनी स्त्री है तू !

सरोज जिया होती तो उससे बीती हुई बातें होती। उसने भी तो त्याग दिया। उसकी सुधि से भय लगता है। और वे जोड़ बनावटी होते हैं, जिनमें न जाने कितनी तरह के सूराख रह जाते हैं। एक सत्य तू है, अपनी जगह पर। एक सत्य मैं हूँ, जिसे जगह न मिले, पर व्यक्ति अवश्य मिलेगी।

वह यह भी कहती थी— मैं ऐसे जुड़े रहने से सदा के लिए टूट कर अलग हो जाना, अच्छा समझती हूँ, उससे एक तेज धार मिलती है।

सरोज ! वह तेज धार उसी को काट देती है, जिसमें बनती है। उसे तो खुराक चाहिए न !

“पढ़ते-पढ़ते, सहसा वीरू ने पूछा, “जिया, पहले तुम फिल्मी गीत बहुत गया करती थी।”

“पढ़ते हो कि फिल्मी दुनियाँ में रहते हो ? तब तो सारी क्रान्ति हवा हो जायेगी ! ”

वह हँस आया, “बता दो जिया ! ”

“देवन को बहुत पसन्द था ! ”

“उल्टी सीधी जो पसन्द थी, सब तुमने अच्छी मान ली।”

बीरू को डॉट दिकलाकर चुप करा दिया।

वह पढ़ने लगा। फिर वही माता जी के पल्ले पर सो गया।

सरोज ! चरम सत्य यह है कि जुड़ने और टूटने की बात पदार्थ पर लागू होती है। मैं पदार्थ नहीं हूँ ;— आत्मा हूँ ; जो अनेको में एक है, जो न जाने कब से चला आ रहा है !

16

संध्या समय, भगवान की आरती के लिए देर हो रही थी।

बीरू अपने स्कूल के मैदान में कोई मैच देखने गया था। गीता सागर के पलंग से बँधी थी।

पूजा के लिए अकेली माता जी थी। वह आरती, पर षंख कौन बजाता ? पिता जी बिल्कूल न तैयार थे।

संध्या से रात हो आयी।

मंगल और पापा जी के बीच सागर को छोड़, गीता आरती कराने आयी। षंख में साँस फूँकते ही, आँसुओ से गीता आँखें भर आयी। आँसू षंख पर बरस आये।

उसी बीच कमरे से मंगल की पुकार आयी—“बेटी ! दौड़ ।”

साँस को षंख ही में छोड़ वह भागी।

सागर अपनी बेहोषी में कराह के साथ, पूरे शरीर को कँपाने लगता था। गीता रोयी नहीं। सागर को अपने कलेजे से चिपका कर कुछ भीतर ही भीतर रटने लगी।

मंगल डाक्टर को बुलाने दौड़ा।

पिता जी सर थाम कर बैठे रहे। माता जी आयी। चरणामृत को सागर के ओठों पर स्पर्ष करा दिया।

पिताजी से बोली, “बैठ क्यों हो ? कम से कम लखनऊ तार तो दे दो ! ”

गीता ने झट हाथ हिला दिया, और आत्मविश्वास से सागर को बाँधे हुए मन के जप में और प्राण देने लगी— मेरे सागर की पीडा मुझ में उतर आये। मुझ में बसे। जो निर्दोश है, उसे इतना कष्ट क्यों ? उसके कल लिए मैं हूँ—मूल गीता —यह गीता, मैं.....सागर की माँ।

दौड़ा वीरू आया। मूर्तिवत् खड़ा रहा।

डाक्टर को लिये मंगल आया।

तब गीता रो पड़ी, जैसे दाता के सामने अवष भिखारी रोता है।

जाँच करके डाक्टर ने बताया, “घबराने की बात नहीं, डबल निमोनिया में ऐसा ही हो जाता है”

इंजेक्शन देने लगे। कमरे में सन्नाटा खिच रहा था, जिसके ऊपर सागर की मद्धम कराह उभर रही थी।

बाहर किसी के आने की आहट हुई।

बीरू देखने गया। लौटा नहीं।

तब मंगल गया।

लौटकर सूचना दी, “देवन बाबू आये हैं।”

पर जैसे कोई सुनने ही को न तैयार था, या किसी से सुना ही न गया। गीता ने इतना ही कहा , “मंगल काका ! जाओ बीरू को पकड़ लाओ ! ” तभी कमरे में चुपचाप देवन प्रविष्ट हुआ।

अपने को सबसे छिपाता हुआ, वह ऐसे कोण पर जा खड़ा हुआ, जहाँ से केवल सागर का मुख दीख पड़ रहा था।

मंगल ने एक कुर्सी ला दी। पर देवन खड़ा रहा।

जाते हुए डाक्टर ने कहा, "आधे घंटे बाद मुझे फिर इत्तला दीजिये !"

पिताजी ने कहा, "दो-एक डाक्टर को और न बुला लिया जाये !"

"अच्छी बात है !"

डाक्टर के पीछे, कमरे से देवन भी निकला। कुछ क्षणों बाद माता जी भी गयी।

ऑगन में देवन की बॉह पकड़ रोने लगी, "यह क्या हो गया बेटा ?"

देवन निरुत्तर था।

उससे यही कहा गया, "मैं दोशी हूँ, पर उसका प्रतिकार इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि सागर की इस बीमारी की मुझे सूचना न दी जाय।"

सामने से पिताजी गुजरे। देवन ने उनका चरण स्पर्श किया।

"आ गये इच्छा हुआ !" रुकते हुए पूछा, "किसी ने खबर दी थी ?"

इस से कुछ न कहा गया। सर हिलाया केवल।

माता जी ने कहा, "तुम आ गये, मेरी छाती भर गयी, और स्वयं चौके में चली आयी।

गीता अपने सागर में इस तरह डूबी हुई थी, कि देवन को न निरपेक्ष गीता दिखाई दे रही थी, न सागर। बोलना चाहा, स्पर्श करना चाहा, देखना चाहा, पर उसे ही कही से भी गति न मिल रही थी।

फर्ष पर घुटने टेक, पलंग की बॉह का सहारा लिये वह देख रहा था—यह बेहोष सागर है—इतनी दूर में—यह गीता है, उसकी माँ।

और मैं कौन हूँ ?

"कुछ बोलो गीता। मुझे देखो नहीं, पर मुझे कुछ आज्ञा तो दो—दया ही दो—पिटी—पिटी।"

ठीक आधे घंटे बाद गीता ने टेम्प्रेचर लियां एक कागज पर पूरी बात लिखकर उस ने मंगल काका को पुकारा।

बहुत धीरे से कहा, "दौड़कर जाओ।"

बीरू आया, "चलिये, आप को माता जी बुला रही है।"

देवन को माता जी के पास छोड़कर स्वयं गीता के पास लौट आया।

"जिया। एक बात कहूँ ?"

गीता चुप थी।

"मैंने जीजा को क्षमा दे दी !.....और तुम जिया ?"

गीता ने बीरू के सर को बाये हाथ से बॉध कर अपने अंक में दबा लिया।

रो आयी।

"अपने सागर भइये को देखो ! आशीर्वाद दो कि अच्छा हो जाये। तुम अच्छे मामा हो न

।"

पीछे देवन आ खड़ा हुआ। पर उन दोनों को आहट तक न हुई।

“बीरू ! अपने सागर भइये से कहो, हमें क्षमा कर दे ! ”

देवन को अब असहा हो गया ; उसने बढकर बीरू को पकड़ लिया । जैसे वह स्वयं लड़खड़ा गया और अपनी रक्षा के लिए उसने बीरू को धर लिया।

उल्टे अपने को धीरज देने लगा, “घबड़ाओ नही बीरू, तुम्हारा भइया जल्दी अच्छा हो जायेगा।”

डाक्टर को लिए हुए मंगल लौटा।

इस बार बच्चे को देखकर उन्होने एक नयी दवा दी। कहा, “जब बच्चा कराहे, या जब इसमे ‘कन्वलषन’ हो, तब-तब सारी रात, गुनगुने पानी में यह दवा पिलाओं जाये।”

“ऐसा क्यों है डाक्टर साहब? ”आर्त स्वर से देवन ने पूछा।

“एक और कप है, दूसरी ओर प्यास ।”

बडी ठण्डी रात थी। लकड़ी के कोयले की अंगीठी दहक रही थी। चारो ओर सन्नाटा खिचा था। सरहाने कुर्सी पर देवन बैठा था। पलंग पर गीता गड़ी बैठी थी।

देवन ने अपनी षाल उठायी, धीरे से गीता को ढँक दिया। वह निष्पेश्टा बैठी थी, जैसे वह उसका रूप और आकार था। देवन चुपचाप उसे ऊपर से देखता हुआ खड़ा रहा।

एक बजती कम्बल उठायी। हाथो में फैलाये हुए उसी के सहारे, उसने गीता को वही पलंग पर सुलाना चाहा, पर उसे जैसे वह कोई पत्थर की प्रतिष्ठित अपनी मूर्ति हो, जिसे मजबूत नीव मिली हो। काँपते स्वर में देवन ने कहा, “तुम न क्षमा करोगी तो मुझे सागर क्या करेगा ? मैं ही तो मूल हूँ।”

वह निःस्पन्द बनी से गयी। देवन ने उसे चारो ओर से खूब ढँक दिया। और सिरहाने खड़ा रह कर वह अपने मे कोई ऐसा बल उत्साह सँजोने लगा, जो उस पलंग से फूट रहा था।

सागर को एक घूँट पानी पिलाकर वह अपनी आँखें मूँद लेता, उतना पानी निगलने मे उसे अबोध षिषु की पीडा होती थी।

दायाँ हाथ सागर के ऊपर था, बाँये हाथ को उसने गीता के सर से केवल सम्पृक्त कर रखा था—डर था, कि चौककर वह जग न जाये।

रात का एक प्रहर बीता।

आधी रात हुई।

उस से भी आगे रात बीतने चली। गीता की नीद सिसकियों में डूबा हुआ कोई स्वर उभरना चाह रहा था, जो निःषब्द चीखता था, पर उसे वाणी न मिल पा रही थी।

देवन उसके फूलते-बैठते अंक को बहुत धीरे-धीरे थपथपा रहा था।

एक बार गीता बहुत षक्ति से चौकी और उसी झटके में वह उठ बैठी डरी हुई पहचानने सी लगी — यह मेरे सामने कौन बैठा जग रहा है ? इस तरह पहली बार उसकी—आरक्त, पर बुझी हुई आँखें, जिनमें बुझे हुए प्रश्न भी थे, देवन से मिली। उसने दृष्टि गिरा ली।

गीता के मुँह से निकला, “मैं सो गयी थी ?”

“देवन चुप रहा।

“सो जाओ तुम ! उठो यहाँ से ! ”

कई बार गीता ने दुहराया ।

तब देवन बोला, “मुझे सुलाओ नहीं, मैं जग गया हूँ । ”

दोनो बैठे रहे — मूक—निष्पेश्ट । दृष्टियाँ एकीकृत होकर सागर पर जमी थी ।

सुबह होने को आयी । दूर, मन्दिरों और षिवालयों के घंटे बनजे लगे । अजान हो रही थी ।

गली, मुहल्ले और राजपथ से लोग गंगा स्नाना के लिए जा रहे थे ।

सागर की कराह, उसकी ऐंठन, गिडगिड़ाहट सब षान्त थी । कभी—कभी उसके ओठ अपने आप खुलते ओर मुद जाते । जो ऐ घूँट गुनगुना पानी डाला जाता, वह अपने आप बाहर वह आता । जैसे नन्हें से सगार में ज्वार उठा रहा हो ।

गीता अपने में चीख उठी । सागर को अंक में भर लिया । गड़ी हुई बिल्कुल सागर के ओठों पर अपनी आँखे झुकायें देख रही थी—उसके ओठ हिल रहे थे ।

देवन उसके नन्हे पैरो में अपने मुँह को छिपाये रो पडा ।

षक्ति से गीता कहा, “रोते हो । हम क्षमा नहीं पा सकते । जाओं षहर के सब डाक्टर को बुला लाओ ! ”

देवन बाहर भागा । मंगल को लिए हुए सड़को पर दौडने लगा ।

अपने डाक्टर के साथ चार और डाक्टर आये ।

पर सागर तो चला गया था ।

वहाँ उसकी छाया षेश थी—ठंडी छाया ।

जी आँखें पिछलें हपते से बन्द हुई थी ; वे अनन्त में खुल कर रही गयी थी ।

रामायण की खुली हुई पौथी, गंगा जल, तुलसी के पौधे की एक टहनी, जिसमें दो— एक काले—काले फूल लगे थे ।

गंगा से लौटकर जब देवन घर में प्रवेश करने लगा, उसे अनुभव हुआ, घर की देहरी से लेकर समूचे घर के विस्तार में कुछ ऐसा घुट रहा था, जिसके करुण रूदन में स्वर थे, पर वाणी न थी । भयानाक भाव थे, पर गति न थी ।

आँगन में माता जी रो रही थी । दायें कन्धे से लिफ्ट कर वीरू रो रहा था । और उनकी गोद में गीता का सर गड़झ था, जिसका सही से भी मुँह न दिखाई दे रहा था ।

कही अपने—आप में छिपे हुए मंगल और पापा जी चुप हो गये थे ।

और देवन ?

उसमे न कोई उत्तर था, न कोई प्रष्न, न बल न प्रेरणा । वह सब को देखता ओर सब की दृष्टि में दया ढूँढता ।

पर घर के उस आँगन में कुछ ऐसा खो गया था । जलते—जलते कुछ ऐसा बुझ गया था, जो अपने निष्क्रिय अन्धकार में कोई गीत न दे रहा था ।

दो दिन बीते ।

तीसरे रोज देवन को लगा, वह नहीं है—उसकी संबा, उसका अस्तित्व उसका मूल्य और व्याप्ति इन सब तत्वों से भी बडा कोई तत्व खो गया है । वह एक—एक के पास खडा होता ।

कुछ प्रश्न नहीं करता, पर सब से उत्तर की कामना करता। सब में कोई ऐसा स्थान ढूँढता, जहाँ वह अपने को सापेक्ष बनाता, बाँधता और जी भर रोता। जब उसे कहीं ठोर न मिला, तो वह छत के ऊपरी कमरे में चला गया—गीता के मूल स्थान पर—उसके अतीत में।

खाली पलंग पर औधा गिर पड़ा। और उसकी दायी बाँह पकड़ कर निःशब्द रोने लगा।

जैसे वह गीता की बाँह हो, जो अजानुबाहू है। माँ की बाँह है, जो चौड़े गहरे अंक की भुजा भी है।

गीता ! और सागर की माँ ! मुझे क्षमा दिला, सागर का दूध तो मुझ से छिना गया था। क्षमा नहीं, मैं दया की भीख माँगता हूँ—क्योंकि तू माँ है, माँ—जी मूल है।

नीचे कहीं चुपचाप गीता रो रही है और उस में से कुछ ऐसा उभर रहा है, जो जीने से चढ़ता हुआ, कमरे की दीवारों को फाँद कर उसे जकड़ लेता है। और उससे उत्तर माँगता है। पर देवन तो शून्य था।

पलंग को छोड़कर वह अवष कमरे में चक्कर लगाने लगा।

जब दम घुटने लगा, वह आर्त स्वर से चीख उठा—‘गीता’।

और वही फर्ष पर बैठ गया—घुटनों में सर गाड़ कर।

दीवार के सहारे चलती हुई, गीता ऊपर आयी। और दीवार से टिकी खड़ी रह गयी।

देखने लगी— एक पुरुष फर्ष पर बैठा है—अपने घुटने पर माथा टेके—एक पुरुष उसके ऊपर खड़ा है—सूट पहने—दृष्टि मोटी किये हुए। देखने वाली स्त्री दीवार के सहारे खड़ी रही। और दूसरी स्त्री दीवार को छोड़े आगे बढ़ी—ट्रंक खोला। साड़ी के उस सूट को इस अन्दाज से पहना, जिसमें स्त्री से कवेल उसका शरीर अलग हो जाता है—शरीर की आकृति अपने एक-एक अंग विन्यास में भोग की तरह उभर आती है।

स्त्री, खड़े पुरुष के पास गयी।

कमर से बाँधने के लिए मुद्रा बनाने लगी।

तभी बैठा हुआ पुरुष चीख आया और बढ़कर अपने उस रूप को पी गया—जैसे धर्म प्रायश्चित को निगल जाता है। बेदना अन्धाकर को पी जाती है।

वह एक होकर दीवार से सटी गीता में जकड़ गया—कॉपने लगा—“मुझे नहीं चाहिए ! वह नहीं। वह चाहिए, जो तुम—अन्तस् में अनुभूति में, भाव में।”

गीता के झुके हुए सीमंत पर साँस भरता हुआ देवन कहने लगा, “सागर की माँ ! मुझे अपनी करुणा दो, दया—वह सारी ‘पिटी’ जो ‘डी हेविन’ में आकर तुम्हें किसी समय ओम दे गया था।”

गीता चित्रवत् मूक थी। बस, उसकी बिखरी हुई अलकें बह रही थी। उन्हे आँखों से छूकर देवन बोला, “मैं तुम्हारा वह देवन हूँ गीता ! जिसे अपना बचपन नहीं याद था। माँ कहती थी, जिसे अपना बचपन भूल जाता है, वह सदा भटकता है।सागर की माँ, मुझे अब मेरा बचपन याद आ गया।.....मेरी माँ का नाम गंगा—जली था, सागर की माँ।

गंगा जल और सागर।

तुम्हे जब पही बार देखा था—निरपेक्ष—तो मेरे खोये हुए बचपन के सारे अधिकारी मचल पड़े थे।”

षिषु की तरह देवन रो दिया।

लेकिन आवेष में उसका दायाँ हाथ धून्य में कँप रहा था और उसकी दसों उँगुलियाँ अपने-आप में भिच रही थी, जैसे वह कुछ फाड़ रहा हो—किसी विन्यास को, किसी शरीर के आचरण को, किसी आकृति के रूप और उसके समूचे वाद्य को।

और वह निश्क्रिय हो गीता की ओर देखने लगा।

गीता की उपस्थिति जैसे कही और थी।

“कुछ बोली गीता, क्या सोच रही हो ?”

गीता सर हिलाकर रह गयी।

देवन ने अपने को साधते हुए कहा, “चलो हम आज ही लखनऊ भाग चलें गीता, तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी अकेले नहीं रह सकता।”

गीता रोये हुए मुख पर बरबस हँसी-सी कुछ उभरने लगी, लेकिन एक ही क्षण में वह उभरती हुई आभा स्याह पड़ती गयी और गीता को लगा उसके मुँह में कही कालिख पुत गयी है।

उसने दोनो हथेलियों को बाँधकर उस में अपने मुख को गाड़ लिया। पर दृष्टि उसके सामने टँगी रही, जैसे उस मुख में दृष्टि नहीं थी, कही उसकी निरपेक्ष सत्ता थी, जहाँ से वह उल्टे गीता को देख रही थी।

गीता का स्वयं, उसका समूचा सत्य, सहसा वाणी पा गया, “जिसकी बाँह का सहारा लेकर मैं लखनऊ से यहाँ आयी थी, जब वही न रहा.....। स्वर काँप गया, पर टूटने न पाया, “जो फिर मुझे लखनऊ वापस ले जाता, वह तो सदा के लिए चला गया न ! सागर तो सूख गया.....वही हमें मिलाता था। हम उसी एक में मिले थे। वही आधार था। हमें आत्मा से मिलाने वाला वही है। वैसे क्या मिलना !.....और अब ? यह तो बहुत बड़ा पाप होगा। मेरे सागर का विष्वास टूटेगा। वह सोचेगा कि उन दोनों के बीच जब मैं न रहा तब वे दोनों लखनऊ गये। तब यह होगा कि जैसे हमारे स्वार्थ ने उसे मौत दी है।.....मैं यह सब नहीं चाहती देवन।.....अपनी शान्ति के लिए हम समार की आत्मा का अब क्यों अपमान होने दें ?” संभालते-संभालते गीता का स्वर टूट गया। और वह एक दृष्टि देवन को निहारती रही।

कंठ को तौलती हुई फिर कहने लगी, “व्यक्ति से भी महान भाव होता है। व्यक्ति तो उसके साधन मात्र है। सागर पुत्र ही न था—उससे भी ऊपर वह एक बहुत बड़ा भाव था। वह भाव, उसका अनादर अब न होने दूँगी।”

देवन ने बढ़कर अपनी पूरी शक्ति से गीता की दायीं दथेली बाँध ली, “यह सब क्या कह रही हो तुम ?”

गीता ने कुछ न कहा। वह निष्चेष्ट देवन की आँखों में देखती रही। देवन की दोनो बँधी हथेलियाँ जैसे अपने आप निर्जीव हो कर अलग छूट गयी।

गीता बोली, “मैं भी नहीं समझ रही रही हूँ देवन ! लेकिन ऐसा विष्वास होता है कि किसी दिन हमें इसका सत्य अवष्य मिल जाएगा। उसकी क्षण हम फिर से जी उठेंगे।”

उसी बीच, जीने से किसी के आने की आहट हुई, जैसे पिताजी या माता जी हों !

एकाएक गीता उठ खड़ी हुई। माथे पर आँचल को संभाला, झुककर देवन की दायीं बाँह थामकर उसे खड़ा कर दिया उसे। लिये कमरे से बाहर चली आयी।

जीने से माता जी लौट रही थी। नीचे पिता जी खड़े थे। वह भी आँगन की ओर मुड़ गये।

“देवन, तुम पुरुश हो, स्त्री तो मैं हूँ ! ”

देवन जैसे चीख-चीखकर रोना चाहता था, पर न जाने कैसी निस्तबधता उसे बाँधती जा रही थी।

गीता ने बहुत धीरे से कहा, “देवन ! ओ देवन !! तुम मेरा यह कंधा थामो.....यह बायों कंधा ! और मुझे इस जीने से नीचे उतार दो ! ” देवन ने कई क्षणों तक देखा। दोनों एक दूसरे को देखने लगे, जैसे दृष्टि ही में वाणी हो, और वह वाणी जो अनुभूति को बाँध ले।

देवन उसे सीढ़िया पर बहुत धीरे-धीरे उतारने लगा। गीता के पैर हर सीढ़ी पर काँप जाते थे लेकिन वह उतरती जा रही थी।